Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

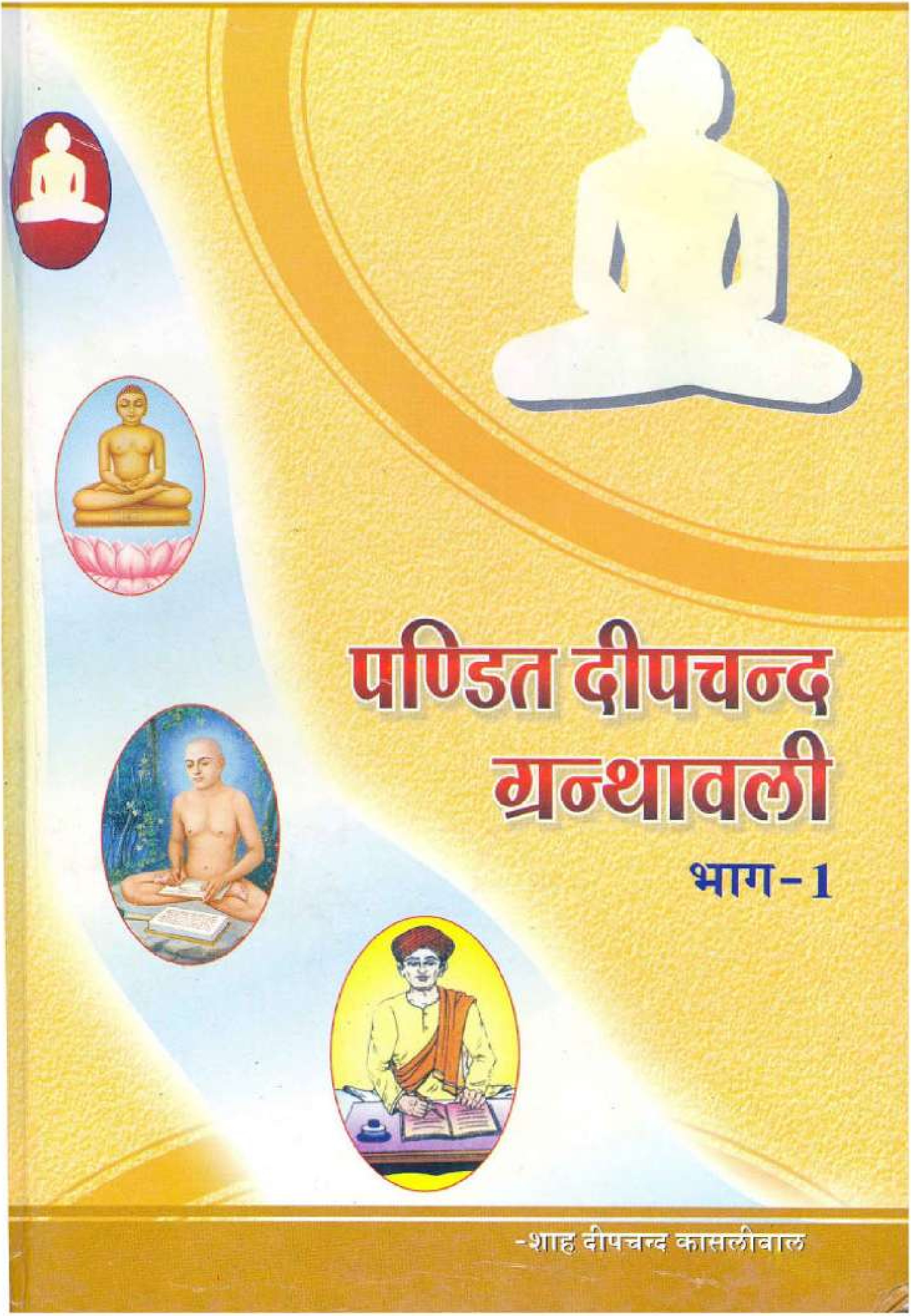

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पण्डित दीपचन्द ग्रन्थावली

भाग-१

❖ अनुभव-प्रकाश

❖ आत्मावलोकन

❖ चिद्विलास

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट

173/175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथमावृत्ति : २००० प्रतियाँ
(दि. २१ अप्रैल २००४)
पू. गुरुदेवश्री कानजी स्वामी की ११५ वीं जन्म-जयन्ती

लागत मूल्य : **४२ रुपये**
विक्रय मूल्य : **३५ रुपये**

प्राप्ति स्थान :

- **श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट**
  173/175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई-400002
- **पण्डित टोडरमल स्मारक भवन**
  ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015 (राज.)
- **श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट**
  पुरानी मण्डी, अजमेर (राज.)
- **पूज्यश्री कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट**
  कहान नगर, लामरोड, देवलाली, जि. नासिक (महा.)
- **आत्मसाधना केन्द्र**
  नीलवाला रोड, घेवरा मोड़, नई दिल्ली-41
- **श्री परमागमं मन्दिर ट्रस्ट**
  पो. तीर्थक्षेत्र सोनागिर, जि. दतिया (म.प्र.)

मुद्रण व्यवस्था :
देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर
मोबा. 9829083628

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been donated im memory of Pujya Shree Lalchandbhai Amarchand Modi by Rajesh & Jyoti Shah, London who have paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of Pandit Dipchandji Granthavali Part 1 (Hindi) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	28 March 2010	First electronic version

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकाशकीय

वर्तमान में १००८ भगवान महावीर स्वामी का धर्मशासन प्रवर्तमान है। भगवान महावीर स्वामी का २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव सम्पूर्ण देश-विदेश में अत्यन्त प्रभावपूर्वक मनाया गया था। इसी वर्ष ज्ञानतीर्थ सोनगढ़ में परमागम मन्दिर का भव्य प्रतिष्ठा महोत्सव पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी की उपस्थिति में मनाया गया। प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर ही दिगम्बर जैन संघ के प्राचीन तीर्थक्षेत्रों की सुरक्षा के लिए मुमुक्षु समाज को विशेष योगदान प्रदान करना चाहिए - ऐसी भावना के फलस्वरूप **श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थ-सुरक्षा ट्रस्ट** की स्थापना धर्मरत्न पण्डित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता फतेपुर के अथक् प्रयत्नों से की गई। ट्रस्ट के स्थापकों ने तीर्थसुरक्षा के साथ ही जिनवाणी की सुरक्षा का कार्य भी स्वीकृत किया। तत्पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री की ८७ वीं जन्म-जयन्ती दादर में मनाई गई, तब साहू शान्तिप्रसादजी जैन ने संस्था का विधिवत् उद्घाटन किया और पुनः पूज्य गुरुदेवश्री का मंगल आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

अपने पच्चीस वर्षीय संक्षिप्त कार्यकाल में प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक आक्रमणों से तीर्थक्षेत्रों का तथा जिनवाणी का संरक्षण करने में अपना गतिशील योगदान देकर समाज का मन मोह लिया और सम्पूर्ण देश में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट की सर्वोन्मुखी प्रगति स्व. पण्डित श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता की दूरदृष्टि और कार्यक्षमता का सुखद फल है। उनका स्वप्न साकार होते देखकर सभी को आनन्द होना स्वाभाविक है।

तीर्थक्षेत्रों की सेवा - तीर्थ हम सभी आत्मार्थियों के लिए आत्मोत्थान की प्रेरणा के स्तोत्रधाम हैं। तीर्थक्षेत्रों, अतिशयक्षेत्रों अथवा सिद्धक्षेत्रों के जिनमन्दिर, प्रतिमा, टोंक, चरण तथा अन्य धर्मायतन काल और प्राकृतिक प्रभाव के कारण कमजोर हों, तब उनका जीर्णोद्धार करना आवश्यक होता है। यात्रियों की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

सुविधा की भी समुचित व्यवस्था होवे तो वे पावनक्षेत्र पर अधिक ठहरकर वहाँ के वैराग्यप्रेरक वातावरण का लाभ ले सकते हैं। यह ट्रस्ट तीर्थों तथा प्राचीन जिनमन्दिरों के जीर्णोद्धार के लिए नियमितरूप से गतिशील है।

शिखरजी तीर्थ पर गत ३-४ वर्षों में ६ कि.मी. का पक्का रोड निर्माण व समस्त टोकों का जीर्णोद्धार कार्य भी अच्छी तरह सम्पन्न हुआ है।

तीर्थक्षेत्रों के व्यवस्थित और योजनाबद्ध विकास तथा सुरक्षा के ध्येय को लक्षगत रखते हुए तीर्थों के सर्वेक्षण की योजना क्रियान्वित की गई। अनेक तीर्थक्षेत्रों ने अपने विकास के लिए 'मास्टर प्लान' बनाकर वहाँ दिगम्बरों के हक के दस्तावेजों को व्यवस्थित बनाकर संग्रहीत किया है। संघ के इतिहास में तीर्थ सर्वेक्षण की यह योजना अभूतपूर्व रही है। इस कार्य में पण्डित ज्ञानचन्दजी विदिशा का महत्त्वपूर्ण अविस्मरणीय योगदान रहेगा।

जैन सम्प्रदायों में प्रवर्तते तीर्थक्षेत्रों के विवाद के सम्बन्ध में समाज में जो जागृति आई है, उसमें अपनी संस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान है। अंतरीक्ष पार्श्वनाथ (शिरपुर) के संदर्भ में सुरक्षा के जो प्रयत्न हुए हैं, उनमे अपने ट्रस्टी बा.ब्र. पण्डित धन्यकुमारजी बेलोकर का सिंहवृत्ति रूप योगदान रहा है।

विगत दस वर्षों से शाश्वत तीर्थराज सम्मेदशिखर में दिगम्बर जैन संघ और यात्रियों के हक पुनः हासिल करने के लिए सक्रिय आन्दोलन चल रहा है। इस भागीरथ कार्य को सिद्ध करने में हमें आंशिक सफलता मिल रही है। दिल्ली में डेढ लाख जैन समुदाय की रैली के उपरांत तीर्थ की टोंक पर पहुँचने के लिए ४ कि.मी. का पक्का रोड बनाना, पहाड़ पर डाक बंगले का संचालन, यात्रियों की व्यवस्था में अनेकविध अभिवृद्धि तथा माताघर का नवीनीकरण आदि योजनायें संचालित की जा सकी हैं। तीर्थक्षेत्रों की व्यवस्था और सुरक्षा के लिए दिगम्बर जैनसमाज को एकतापूर्वक शक्ति के संचयरूप ध्येय की प्राप्ति से अपने को नजदीक ले जा रहा है। भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के सहकार्यकारी के रूप में इस ऐतिहासिक प्रकरण में भागीदार होने का सौभाग्य अपनी संस्था को प्राप्त हुआ है। कमेटी के मंत्रीरूप में मेरी नियुक्ति होने से दोनों संस्थाओं द्वारा तीर्थक्षेत्रों की सेवा करने के महत्त्वपूर्ण सत्कार्य में विशेष शक्ति

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का संचय हुआ है। तीर्थक्षेत्रों की सेवा के लिए समाज को साहु अशोककुमारजी के प्रभावशाली नेतृत्व का लाभ मिल सका – यह गौरवगाथारूप है। समाज में तीर्थ सुरक्षा के भागीरथ कार्य हेतु एकता का वातावरण बन रहा है।

महाविद्यालय का संचालन – माँ जिनवाणी के आत्मप्राप्ति के मंगल संदेश जन–जन तक पहुँचाने का ध्येय मर्मज्ञ विद्वानों के अभाव में संभवित नहीं होता। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में **श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय** का प्रारम्भ किया गया है। आज इस महाविद्यालय ने सम्पूर्ण देश में अध्यात्म का डंका बजा दिया है।

निरन्तर अध्ययन–मनन–चिन्तन तथा एकमात्र स्वहित की रुचि इस महाविद्यालय की विशेषताएँ हैं। वस्तुत: तो इसप्रकार की आध्यात्मिक क्रान्ति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल उपदेश का फल है। उनकी पुण्य प्रभावना के उदय में लाखों श्रावक–श्राविकायें दैनिक अभ्यास करके आत्मसिद्धि के कल्याणपथ में संलग्न हुए हैं।

इस महाविद्यालय के विद्यार्थी श्री दि. जैन संस्कृत कॉलेज, जयपुर द्वारा राजस्थान विश्वविद्यालय की जैनदर्शन में शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करते हैं। यह परीक्षा बी.ए. के समकक्ष है। इस अभ्यास क्रम के उपरांत अपने विद्यार्थियों को श्री वीतराग–विज्ञान परीक्षा बोर्ड, जयपुर की प्रवेशिका, विशारद आदि परीक्षायें भी दिलवायी जाती हैं। संक्षिप्त में यह विद्यालय चारों अनुयोगों में पारंगत विद्वान तैयार करने की प्रयोगशाला है। हर्ष का विषय यह है कि अपने विद्यार्थी प्रतिवर्ष राजस्थान विश्वविद्यालय एवं बोर्ड की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते आये हैं।

विगत छह–सात वर्षों में महाविद्यालय में अधिक छात्रों को प्रवेश देने के लिए श्री मगनमल पाटनी ट्रस्ट मुम्बई, श्री वीतराग–विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट अजमेर तथा पूज्य श्री कानजी स्वामी ट्रस्ट देवलाली आदि का सक्रिय सहयोग भी संस्था को प्राप्त हो रहा है। इस महाविद्यालय का सफल निर्देशन प्रसिद्ध विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल कर रहे हैं। पण्डित टोडरमल स्मारक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ट्रस्ट का सम्पूर्ण सहयोग विद्यालय को नियमितरूप से प्राप्त हो रहा है एवं प्राचार्य के रूप में पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल की सेवायें प्राप्त हो रही हैं। बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील एवं पण्डित संजीवकुमारजी गोधा आदि की अनेकविध सेवायें संस्था को प्राप्त हो रही हैं।

अपनी संस्था की जयपुर की समस्त गतिविधियों के स्थापक स्व. श्री नेमीचन्दजी पाटनी का सहयोग जीवनभर संस्था को प्राप्त रहा है। आज आपका वियोग संस्था, महाविद्यालय एवं मुमुक्षु समाज की अपूरणीय क्षति है।

अभी तक महाविद्यालय के माध्यम से समाज को ३३१ शास्त्री विद्वान, जिनमें ४४ जैनदर्शनाचार्य भी हैं, प्राप्त हो चुके हैं तथा वर्तमान में १७७ विद्यार्थी अध्ययनरत हैं।

विद्यार्थियों को जैनदर्शन के शिक्षण के उपरांत आध्यात्मिक, सदाचारमय एवं सेवाभावी जीवनवाला बनाना ही इस विद्यालय का उद्देश्य रहा है।

सत्साहित्य विभाग - पूज्य गुरुदेवश्री के देह विलय के पश्चात् पूज्य आचार्यों के वृहद् मूलग्रंथों को समाज तक पहुँचाते रहने का कार्य अपनी संस्था ने निभाया है। इस दिशा में संस्था ने महत्त्वपूर्ण कदम उठाते हुए लगभग पाँच लाख की राशि के पंच परमागम व अन्य ग्रंथों का प्रकाशन जयपुर में सत्साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार विभाग खोलकर किया है। जिसके द्वारा पंचपरमागमों के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा में मोक्षमार्गप्रकाशक का प्रकाशन हो चुका है, अन्य भी कई ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। जिनकी आवृत्तियाँ निरन्तर प्रकाशित हो रही हैं। गुजराती भाषा में आत्मानुशासन, योगसार एवं रत्नकरण्ड श्रावकाचार का प्रकाशन भी इस श्रृंखला में उल्लेखनीय कड़ी है।

तदुपरान्त तत्त्वप्रचार के उद्देश्य से विद्वानों के प्रोग्राम एवं आवश्यकता अनुसार स्वाध्याय भवन निर्माण के लिए आर्थिक सहयोग भी दिया जाता है। अभी तक २५ स्थानों पर नये स्वाध्याय भवनों का निर्माण हो चुका है। स्वाध्याय भवन के लिए वर्तमान में १ लाख रुपये की सहायता स्वीकृत की जाती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

संस्था की गतिविधियों से समाज को परिचित कराने एवं ध्रुवफण्ड में दान संकलन के उद्देश्य से एक प्रतिनिधि मण्डल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद के साथ देश में भ्रमण कर चुका है, जिसे समाज का आशातीत सहयोग प्राप्त हुआ है।

सर्वोदय सहायता योजना – आर्थिक दृष्टि से कमजोर साधर्मीजनों को विशेष बीमारी एवं अपने बालकों की उच्च शिक्षा के लिए सर्वोदय ट्रस्ट के अन्तर्गत श्री कहान राज सर्वोदय सहायता योजना का प्रारंभ किया गया है। इच्छुक साधर्मीजन ट्रस्ट कार्यालय से संपर्क कर इसका भी लाभ ले सकते हैं।

आभार प्रदर्शन – ट्रस्ट की स्थापना काल से ही पं. श्री बाबूभाई मेहता, मु. श्री रामजीभाई दोशी, पं. श्री खीमचंद जे. सेठ, पं. श्री लालचंदभाई मोदी, वर्तमान अध्यक्ष बाबू जुगल किशोरजी 'युगल', पं. श्री धन्यकुमारजी बेलोकर, श्री सुमनभाई दोशी (दोनों उपाध्यक्ष) श्री (स्व.) माणिक्यलाल आर. गांधी, श्री शान्तिभाई झवेरी के मार्गदर्शन एवं सहयोग का लाभ मिलता रहा है। इनके तथा अन्य महानुभावों की सलाह-सूचना के बिना संस्था सफलता प्राप्त नहीं कर सकती थी। पं. श्री उत्तमचन्दजी सिवनी, समाजरत्न श्री अमृतभाई मेहता, श्री आलोककुमार जैन कानपुर ट्रस्टी हमें सहायता कर रहे हैं।

प्रकाशन कार्य को गति प्रदान करते हुए गत वर्ष समाधितंत्र/इष्टोपदेश का प्रकाशन किया जा चुका है एवं इस वर्ष भट्ट अकलंकदेव विरचित स्वरूप-संबोधन का प्रकाशन हम स्वाध्यायी जनों को समर्पित कर चुके हैं।

अध्यात्म क्षेत्र के कतिपय विद्वानों में पण्डित दीपचन्दजी कासलीवाल का नाम भी अग्रगण्य है एवं आपकी रचनाओं की प्रशंसा पूज्य गुरुदेवश्री अपने प्रवचनों में प्राय: किया किया करते हैं तथा आपके अनुभव-प्रकाशादि ग्रंथों पर गुरुदेवश्री ने मार्मिक प्रवचन प्रदान कर इन ग्रंथों को जन-जन की वस्तु बना दिया।

पण्डितजी कृत छोटी-बड़ी कई रचनाएँ उपलब्ध हैं। अत: यह निर्णय किया गया कि आपके उपलब्ध सभी प्रकाशनों को पण्डित दीपचन्द ग्रन्थावली के नाम से ४ भागों में प्रकाशित किया जाए। फलस्वरूप पहला भाग, जिसमें

अनुभव-प्रकाश, आत्मावलोकन व चिद्‌विलास का समावेश किया गया है, आपको समर्पित हैं।

भाग-२ में परमात्मपुराण, सवैया टीका व अनुभवानंद, भाग-३ में ज्ञानदर्पण, स्वरूपानंद, उपदेशसिद्धान्त रत्न एवं भाग-४ में भावदीपिका व अन्य उपलब्ध ग्रंथों का प्रकाशन शीघ्र किया जा रहा है।

भाग २ व ३ का अनुवाद व सम्पादन कार्य ब्र. कल्पना जैन, सागर द्वारा किया गया है व इस भाग के प्रकाशन में भी आपका महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। आपके सद्‌प्रयत्नों से पण्डितजी का अप्रकाशित ग्रंथ अनुभवानंद प्राप्त हुआ; तदर्थ आपके आभारी हैं। इस प्रकाशन की परिकल्पना के लिए युवा विद्वान पण्डित देवेन्द्रकुमारजी बिजौलियाँ को हार्दिक धन्यवाद प्रदान करते हैं। आपकी प्रेरणा से भाग-२ व ३ कार्य हिन्दी अनुवादादि कार्य ब्र. कल्पना जैन ने अति शीघ्रता से सम्पन्न किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ की कीमत करने में जिन महानुभावों का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, उनका भी हम हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन को आकर्षक एवं सुन्दर रूप प्रदान करने में दिनेश जैन, देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर का भी सहयोग रहा है, अतः हम उनके भी आभारी हैं।

सभी साधर्मीजन इन ग्रन्थ रत्नों का अवगाहन कर शाश्वत सुख के पथिक बनें – यही भावना है।

दि. २१ अप्रैल २००४ **बसंतलाल मूलचंद दोसी (सुदासणा)**

महामंत्री

श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट, मुम्बई

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पण्डित दीपचन्द कासलीवाल : एक परिचय

पण्डित दीपचन्द जाति से खण्डेलवाल तथा कासलीवाल गोत्र के थे। आप सांगानेर के निवासी थे। युवावस्था में ही आप जयपुर की राजधानी आमेर में आकर बस गये थे। वहीं पर रहकर आपने अधिकतर रचनाएँ लिखीं।

आपकी प्रसिद्धि दीपचन्द साधर्मी (भाई) के नाम से रही है। आप संस्कृत, प्राकृत के उच्च कोटि के विद्वान थे। आपने अनेक प्राचीन ग्रन्थों का सार ग्रहण कर तथा उनके उद्धरण देकर रचनाओं का निर्माण किया।

यद्यपि आपके जन्म तथा जीवन के संबंध में कोई विवरण नहीं मिलता है, फिर भी यह अनुमान किया जाता है कि आप पण्डित हेमराज पाण्डेय के समय में जीवित रहे होंगे, क्योंकि उस युग के जयपुर राज्य के जैन साहित्यकारों ने काव्य-जगत में तथा विशेषरूप से हिन्दी खड़ी बोली के गद्य का अभूतपूर्व एवं महत्त्वपूर्ण विकास किया था।

कहा जाता है कि उन दिनों में जयपुर में लगभग एक सौ दिगम्बर जैन मन्दिर थे। अकेले जयपुर नगर में लगभग दस-बारह हजार जैनी निवास करते थे। उस समय राजा के दीवान प्रायः जैन होते थे। राव कृपाराम तथा शिवजीलाल उस युग के प्रसिद्ध दीवान हुए। प्रधान दीवान अमरचन्द (१८१०-१८३५) का नाम राजस्थान में चारों ओर विश्रुत था।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रचनाएँ –

आपके द्वारा रचित निम्न रचनाएँ उपलब्ध हैं –

१. आत्मावलोकन

२. चिद्विलास

३. अनुभवप्रकाश

४. परमात्मपुराण

५. सवैया–टीका

६. भावदीपिका

७. अनुभवानन्द

८. अनुभवविलास

९. स्वरूपानन्द

१०. ज्ञानदर्पण

११. गुणस्थानभेद

१२. उपदेशसिद्धान्तरत्न

१३. अध्यात्मपच्चीसी

१४. आरती

१५. विनती

इनमें से सात रचनाएँ गद्य में रचित हैं और शेष आठ रचनाएँ पद्य में हैं।

●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्री परमात्मने नमः

श्रीदीपचन्दजी कासलीवाल-प्रणीत

अनुभव-प्रकाश

अनुवादक

श्री मगनलाल जैन, ललितपुर

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट

173/175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रस्तुत प्रकाशन में आर्थिक सहयोग प्रदान करनेवाले दातारों की सूची

१. श्रीमती सुधा जैन धर्मपत्नी श्री डॉ. डी.सी. जैन, अजमेर २१००.००

२. एक मुमुक्षुबेन हस्ते श्री शैलेषभाई, मुम्बई ५०५.००

कुल राशि : २६०५.००

यह वस्तु की मर्यादा है...

स्वभाव से अज्ञानी भी प्रभु है, पर्याय में भूल है। दूसरों के समझाने से समझे - ऐसा नहीं है और स्वयं स्वभाव की रुचि करे तो कोई उसे बदल दे - ऐसा भी नहीं है। पहले प्रतीति तो कर कि अन्तर्दृष्टि और लीनता के सिवाय अन्य कोई मार्ग नहीं है। यही मिथ्यात्व के अभाव का उपाय है। व्यवहार के लक्ष्य से पार हुआ जावे - ऐसा नहीं है। वस्तु में वाद-विवाद नहीं है। सर्वप्रथम वस्तु की रुचि होना चाहिए। तूने अपनी भावना से मिथ्याभव बनाये हैं। पुण्य-पाप की लगन, व्यवहार का आदर और निमित्त की रुचि के कारण तू ध्रुवस्वभाव को भूल गया है, जिसके कारण मिथ्या भव उत्पन्न किये हैं। ऐसी बदफेल अर्थात् भव को उत्पन्न करने का भाव एक स्वभाव कल्लोल के प्रगटने से मिटता है। ज्ञायकस्वभाव की पर्याय प्रगटी तो मिथ्यात्व भाव मिट जाता है। यह वस्तु की मर्यादा है।

- अनुभवप्रकाश प्रवचन से साभार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्री परमात्मने नमः

अनुभव-प्रकाश

मंगलाचरण

(दोहा)

[1]गुण अनन्तमय परमपद, श्री जिनवर भगवान।
ज्ञेय लखत[2] हैं ज्ञान में, अचल सदा निजस्थान[3] ॥

परमदेवाधिदेव, परमात्मा, परमेश्वर, परमपूज्य, अमल, अनुपम, आनन्दमय, अखण्डित, भगवान निर्वाणनाथ को नमस्कार कर श्री अनुभव[4]-प्रकाश नामका ग्रन्थ करता हूँ; जिनके प्रसाद से पदार्थ का स्वरूप (यथार्थ प्रकार से) जानकर निज आनन्द उत्पन्न होता है।

प्रथम, यह लोक छह द्रव्यों का बना है। उसमें पाँच द्रव्यों से भिन्न सहज स्वभावरूप सच्चिदानन्दादि अनन्तगुणमय चिदानन्द (आत्मा) है। वह (चिदानन्द आत्मा) अनादि कर्मसंयोग से अनादि से अशुद्ध हो रहा है। (उसने) परपद में अपनत्व मानकर परभाव किये, इसलिए जन्मादि दुःख सहन करता है। ऐसी दुःख परिपाटी अपने अशुद्ध चिन्तवन से हुई है। यदि वह अपने (सहज) स्वरूप की सम्भाल करे तो एक क्षण में सर्व दुःख विलय को

१. अर्थ :- श्री जिनवर भगवान अनन्तगुणमय परमपदस्वरूप हैं। वे निजस्थान में सदा अचल रहते हुए ज्ञान में ज्ञेय को जानते हैं।

२. पाठान्तर - 'लक्ष्य', ३. पाठान्तर - 'जिनस्थान', ४. पाठान्तर - 'अनुभौ'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्राप्त हों और जैसा शाश्वत आनन्दमय परमपद है, उसे प्राप्त कर ले। (वह पद कोई अन्य वस्तु नहीं है; परन्तु अपना ही स्वरूप है।) उसकी सम्भाल करने से ही स्वरूप की प्राप्ति होती है, उसका उपाय बतलाते हैं – जो परिणाम उलटकर पर में अपनत्व मानकर स्वरूप का विस्मरण कर रहे हैं, वे ही परिणाम सुलटकर स्वरूप में अपनत्व मानकर पर का विस्मरण करें तो मुक्तिकामिनी का कंत होता है।

प्रश्न :– ऐसे परिणाम में कुछ क्लेश तो नहीं (तो) ऐसे परिणाम (चिदानन्द आत्मा) क्यों नहीं करता ?

उत्तर :– अनादिकाल से (यह जीव) अविद्या में (मिथ्यात्व में) पड़ा है, मोह की निविड़ ग्रन्थि पड़ी है। आत्मा और पर का एकत्वसंधान हो रहा है। जैसे किसी पुरुष को अफीम का नशा चढ़ा है, वह दुःख प्राप्त करता है; परन्तु छूट नहीं सकता है। किसलिए ? कि (अफीम) बहुत चढ़ी है; छूटने से सुख है, क्लेश (दुःख) नहीं; परन्तु तलब जगने पर ले ही लेता है। वैसे यह (जीव) पर के मोह से बँध रहा है, छूटने से सुख है तो भी छूटता नहीं है। अनादि-संयोग से छूटने पर सुख होता है; तथापि व्यर्थ ही दुःख मानता है। इसको मिटाने के लिए आत्मा और पर के एकत्वसंधान में प्रज्ञाछैनी डाले, चेतना अंश-अंश को अपना जाने, जिसमें जड़ का प्रवेश नहीं है। किसप्रकार जाने ? सो कहते हैं –

जो यह (ज्ञान) पर में अपने को जानता है, वह ज्ञान ही निज बानगी है। इस निजज्ञान बानगी को पहचान-पहचानकर बहुत से संत अजर-अमर हुए। उसे कथनमात्र ग्रहण न करे, (उसे मात्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहने जितना ही न रखे) परन्तु चित्त को चेतना में लीन करे, स्वरूप–अनुभव का विलास सुख–निवास है, उसे करे। (स्वरूप–अनुभव का जो सुखरस, उसमें चित्त को रमाये।) वह किसप्रकार करे सो कहा जाता है –

निरन्तर अपने स्वरूप की भावना में मग्न रहे, दर्शन–ज्ञान–चेतना के प्रकाश को (वेदन को) (अपने) उपयोग द्वार में दृढ़ता से भाये (चिंतवन करे) (तो) चिद्परिणति से स्वस्वरूपरस (चिद्रस) (उत्पन्न) होता है। द्रव्य–गुण–पर्याय का यथार्थ अनुभवना ही अनुभव है। अनुभव से पंच परमगुरु[१] हुए व होंगे। वह अनुभव का ही प्रसाद है। अरहंत–सिद्ध भी इस अनुभव–आचरण का सेवन करते हैं। (स्वरूप) अनुभव[२] में अनन्त गुणों के सब रस आते हैं, सो (यहाँ) कहा जाता है –

ज्ञान[३] का प्रकट प्रकाश अनन्त गुणों को जानना है। ज्ञानरूपी विशेष गुण को परिणति परिणमे, वेदे, आस्वादे वहाँ अनुपम आनन्दफल उपजता है। इसीप्रकार दर्शन को परिणति परिणमे, वेदे, आस्वादे (और) सुखफल उपजता है। इसीप्रकार सर्व गुणों को (परिणति) परिणमे, वेदे, आस्वादे, (तब) आनन्द अनन्त, अखण्डित अनुपमरस (सहित) उपजता है; इसलिए सर्व गुणों के रस का परिणति द्वारा अनुभव कराया गया है। इसीप्रकार द्रव्य को

---

१. पंच परम गुरु जे भये, जे होंगे जगमाँहिं।
ते अनुभौ परसादतैं, यामें धोखो नाँहिं ॥१५४॥

२. गुण अनन्त के रस सबै, अनुभौरस के माँहिं।
यातैं अनुभव सारिखो, और दूसरौ नाँहिं ॥१५३॥ – ज्ञानदर्पण

३. पाठान्तर – 'ज्ञान का प्रकट प्रकाश अनन्तगुण की परिणति परिणवै वेदै आस्वाद करै'।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणति परिणमे, वेदे आस्वादे (और) आनन्द प्राप्त करे। तब परिणति द्वारा द्रव्य का अनुभव हुआ। 'अनुभव-प्रकाश[१]' गुणपरिणति एक रस होने पर होता है। (यही) वस्तु का स्वरूप है। (जो सर्वगुण रस के पुञ्जरूप है) उस चेतनागुण का संक्षेपमात्र (यहाँ) वर्णन किया जाता है -

सर्व गुणों में ज्ञान (गुण) प्रधान है। काहे से ? कि ज्ञान विशेष चेतना है। ज्ञान सर्व का ज्ञाता है (तथा ज्ञान सूक्ष्म है); सूक्ष्म न होता तो (वह) इन्द्रियग्राह्य होता, इसलिए सूक्ष्मता द्वारा ज्ञान की सिद्धि है। सत्तागुण के बिना सूक्ष्म शाश्वत न होता। वीर्यगुण के बिना सत्ता का निष्पत्ति सामर्थ्य कहाँ से होता ? अगुरुलघुगुण के बिना वीर्य हलका-भारी होने से जड़ता को धारण करता। प्रमेयत्वगुण के बिना अगुरुलघुगुण का प्रमाण कहाँ से होता ? अप्रमाण होने पर (उसे) कौन मानता? वस्तुत्व के बिना प्रमाण किसका कहें? अस्तित्व के बिना वस्तुत्व किसके आधार से कहें? प्रदेशत्व के बिना अस्तित्व किसका निरूपें ? प्रभुत्व के बिना प्रदेश-प्रभुता कहाँ से रहती? विभुत्व के बिना प्रभुता सर्व में किसप्रकार व्याप्त होती ? जीवत्व के बिना विभुत्व अजीव होता। चेतना के बिना जीवत्व कहाँ वर्तता ?

ज्ञान के बिना चेतन का विशेष जानने में नहीं आता। दर्शन के बिना सामान्य-विशेष ज्ञान नहीं रहता। सर्वज्ञता के बिना दर्शन को कौन जानता ? सर्वदर्शित्व के बिना ज्ञान को कौन देखता? चारित्र-चेतना के बिना दर्शन-ज्ञान की स्थिरता कहाँ रहती? परिणामात्मकत्व (परिणाम स्वरूपपना) के बिना चिद् (चेतन)

१. पाठान्तर - 'अनुभव का रस'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चिद्विलास को कहाँ से करता? अकारणकार्यत्व के बिना परकार्य होने पर निजकार्य का अभाव होता। असंकुचितत्व के बिना अविनाशी चेतना का विलास संकोच में आता। त्यागउपादानशून्यत्व के बिना ग्रहण-त्याग लगा रहता। अकर्तृत्व के बिना कर्म का करता होता। अभोक्तृत्व के बिना परभाव को भोगता। असाधारण बिना चेतन-अचेतन का भेद न पड़ता। साधारण के बिना कोई पदार्थ सत् होता, कोई असत् होता। तत्त्व के बिना वस्तु स्वरूप को न धरती। अतत्त्व के बिना पर का तत्त्व (निज में) आ जाता। भाव के बिना स्वभाव का अभाव होता। भाव-भाव के बिना भूतकाल का भाव भविष्यकाल में न रहता। भावाभाव के बिना परिणमन समयमात्र (समय-समय का) न सम्भवता। अभावभाव के बिना अनागत (भावी, भविष्य का) परिणमन न आता। अभाव के बिना कर्म का सद्भाव (अपने में) जानने में आता रहता। सर्वथा[१] अभाव-अभाव के बिना अतीत में (भूतकाल में) जो कर्म अभावरूप था, वह अनागत (भविष्य) काल में अभावरूप हो ऐसा न होता। कर्ता के बिना निजकर्म का कर्ता न होता। कर्म के बिना स्वभाव कर्म का अभाव होता। करण के बिना परिणमन द्वारा जो स्वरूप का साधन था, वह न होता। सम्प्रदान के बिना परिणति स्वरूप में स्वयं समर्पण न कर सकती (नहीं करती)। अपादान के बिना अपने द्वारा अपने से आप न होता। अधिकरण के बिना सर्व का आधार न होता। स्वयंसिद्ध के बिना पराधीनता आ जाती। अज के बिना उत्पत्ति होती रहती। अखण्ड के बिना खण्डितता (खण्ड-खण्डपना) प्राप्त होता। विमल के बिना मल

१. क. मु. प्रतमें 'सर्वथा' पाठ नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता। एक के बिना अनेक होता। अनेक के बिना अनेक गुणों का अभाव होता। नित्य के बिना अनित्य होता। अनित्य के बिना षट्गुणवृद्धि-हानि न होती। तब (षट्गुणवृद्धि-हानि न हो तो वस्तु में) अर्थक्रियाकारक स्वभाव की सिद्धि न होती। भेद के बिना द्रव्य-गुण अभेद होते। अभेद के बिना एक वस्तु न होती। अस्ति के बिना नास्ति होती। नास्ति के बिना (वस्तु में) पर की अस्तिता होती। साकार के बिना निजाकृति न होती। निराकार के बिना पराकार धारण करके वस्तु विनाश को प्राप्त होती। अचल स्वभाव के बिना चल होती। ऊर्ध्वगमन स्वभाव के बिना उच्चपद जानने में न आता। इत्यादि अनन्त विशेषणों का ज्ञानी अनुभव करते हैं।

ऐसा निजज्ञान (निज समझ, स्वरूपज्ञान) किसप्रकार होता है, सो कहा जाता है -

प्रथम, अनादि से (चले आ रहे) अहं-ममरूप मिथ्यात्व[१] का नाश करे, फिर पररागरूप भाव का विध्वंस करे। जब परराग मिटे, तब वीतराग हो। जब पर-प्रवेश का अभावभाव हुआ, तब स्वसंवेदनरूप निजज्ञान होवे अथवा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार करके निजपद को जाने अथवा उपयोग में ज्ञान[२]रूप (स्व) वस्तु को जाने। अनन्त महिमा का भण्डार, सार, अविकार, अपार शक्ति से मण्डित मेरा स्वरूप है - ऐसा भाव प्रतीति द्वारा करे। ध्यान धरने पर निश्चलता होगी, ऐसा ज्ञान जाने। निजरूप ज्ञान को ही अनुपम पद का सर्वस्व जाने। इस स्वरूप के ज्ञान बिना,

१. पाठान्तर - 'मिथ्या'
२. पाठान्तर - 'जान'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर की मान्यता करके संसारी दुःखी हुए। वह पर की मान्यता किसप्रकार मिटे ? यह कहा जाता है -

भेदज्ञान द्वारा पर और निज के अंश-अंश को अलग-अलग जाने। मैं उपयोगी, मेरा उपयोगित्व ग्रन्थ गाते हैं। मैं देखता-जानता हूँ। (मैं देखने-जाननेवाला, ज्ञाता-दृष्टा हूँ।) ऐसा निश्चय बराबर (यथार्थ) करने पर आनन्द बढ़ता है। परपरिणति को (मैंने) अपनी की है। (वह मैं) न करूँ तो (ऐसी) मान्यता न हो। मैंने अपनी पर में मान्यता की, अब मैं निज में (निजरूप) मानूँ तो मानते ही मुक्ति के साथ मेरी सगाई हुई। अवश्य वर होऊँगा। कर्म के भरम का (कर्मभाव में अहंपने का भ्रम) विनाश होने पर निज सुख होता है। वह निज सुख किसप्रकार हो वह कहा जाता है -

मेरा अनन्त सुख मेरे उपयोग में है। वह मेरा उपयोग तो सदा मैं धरता हूँ। मैं उपयोग को भूलकर, अनुपयोग में अनादि से रत हो-हो कर सुखस्थानक चेतना-उपयोग को भूला, इसलिए सुख कहाँ से हो ?

अब मैंने उस उपयोग प्रकाश को साक्षात् योग्यस्थानरूप किया। किसकारण कि "मैं नर" ऐसी मान्यता (इस) जड़रूप मनुष्य शरीर में तो न हो, (यह मान्यता) मेरे उपयोग से हुई है तो ऐसी मान्यता को करनेवाला मेरा उपयोग अशुद्ध स्वांग सजकर (धर कर) बैठा है। जैसे कोई एक नट बैल का स्वांग धरकर आया है, पर में अपने को भूला है, परमें अपने को जाना है। (वह) पूछता है कि 'अब मैं मनुष्य की पर्याय कब प्राप्त करूँगा?' वह झूठ ही पूछता है, (स्वयं) मनुष्य ही है। भूल से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह रीति हुई है, (भ्रमणा से ऐसा भूल भरा आचरण हुआ है)। वैसे चिदानन्द अपने को भूला है, पर में अपने को जाना है, स्वयं अपनी भूल मिटाकर, सदा उपयोगधारी आनन्दरूप स्वयं स्वयमेव ही यत्न बिना (सहज) बना है; अतः निज को (निज में) निहारने का ही कार्य (कर्तव्य) है। (सदा उपयोगधारी आनन्दरूप स्वयमेव स्वयं ही है, अपना काम तो अपने को निहारने जितना ही है)। निज-श्रद्धा आते ही निज अवलोकन होता है। यह श्रद्धा कहाँ से होती है, सो कहा जाता है –

प्रथम, सर्व लौकिक रीति से पराङ्मुख होकर, निज विचार सन्मुख हो। चिदानन्द राजा[१] कर्मकन्दरा में (कर्मरूपी गुफा में) छिपा हुआ है। कर्मकन्दरा तीन हैं – पहली (शरीरादि) नोकर्म गुफा, दूसरी (ज्ञानावरणादि) द्रव्यकर्म गुफा, तीसरी (रागद्वेषादि) भावकर्म गुफा। पहली नोकर्म गुफा में परिणति प्रवेशी कि 'अपना राजा देखूँ।' वहाँ उसे कुछ दिखाई नहीं दिया, चक्कर में पड़ गई, तब (वह परिणति) फिरने लगी। तब श्री गुरुदेव ने पूछा कि 'तू क्या खोजती है ?' तब वह (परिणति) बोली कि 'अपने राजा को खोजती हूँ, परन्तु वे नहीं मिले।' तब श्रीगुरु ने कहा कि 'तेरा राजा यहाँ ही है।' (अब यहाँ से) वापिस मत लौटना। यहाँ से तीसरी गुफा है वहाँ (तेरा राजा) बसता है। उसके (राजा के) हाथ की डोरी इस गुफा तक आई है। तो यह डोरी उसके हाथ की हिलायी-हिलती है। यदि वह न हो तो डोरी अपने आप न हिले। इसलिए विचार करके इस शक्ति अथवा डोरी का अनुसरण करके चली जा। कर्म में उसकी क्रिया देख कि डोरी को कौन

१. पाठान्तर – 'निजराजा'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हिलाता है ? द्रव्यकर्म गुफा के अन्दर प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग – ऐसे नाम उसके (राजा के) निमित्त से पड़े हैं। उसकी (राजा की) परिणति जैसी-जैसी हुई वैसी-वैसी वर्गणा बँधी। वहाँ भी उसकी (राजा की) बनी हुई सत्ता से द्रव्यकर्म का नाम पड़ा तथा उसके भावों के निमित्त से पुद्‌गल विविध कर्मों के नाम को प्राप्त हुए। भावकर्म गुफा में राग-द्वेष-मोह के प्रकाश में छिपा हुआ स्वरूप रहता है। वह प्रकाश तेरे नाथ का अशुद्ध स्वांग है। उसमें तू खोज, डर मत, निःशंक जा, इस राग-द्वेष-मोह की डोरी के साथ जाकर खोज। (यह राग-द्वेष-मोह की डोरी) जिस प्रदेश से उठी वही तेरा नाथ है। डोरी को मत देख। जिसके हाथ में डोरी है, उसे पकड़ने से तुरन्त मिलेगा। (तेरा नाथ) निज ज्ञानमहिमा को छिपाकर बैठा है, (उसे) तू पहचान। यह गुप्तज्ञान होने पर (तेरा) नाथ छिपा हुआ नहीं रहेगा। (वहाँ तू) चेतनाप्रकाशरूप चिदानन्द राजा को प्राप्त करके सुखी होगी। (यह तुझे मैंने) निज-सुख का उपाय बतलाया है। यह निजसुख तो निज-उपयोग में कहा है। (फिर भी यह सुख) दुर्लभ क्यों हो रहा है? वह कहा जाता है –

इस परिणामभूमिका में मोहमदिरा पीकर अविवेकमल्ल उन्मत्त होकर विवेकमल्ल को जीतकर जयस्तम्भ गाड़कर बलवान बनकर खड़ा है। इससे अपनी सुखनिधि का विलास नहीं करने देता। विवेकमल्ल का जोर होते ही अविवेक का हनन होता है। तब निजनिधि विलसित होती है, पररुचिरूप मिथ्या आहार का सेवन करने पर (आत्मा को) मिथ्याज्वर आया, तब विवेक निर्बल हुआ। इसलिए स्व-आचाररूप पारे को श्रद्धारूपी बूटी के पुट से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुधारकर (शुद्ध करके) उसका सेवन करे तो विवेकमल्ल मिथ्याज्वर मिटाकर, सबल होकर, अविवेक को पछाड़ दे, तब आनन्द-निधि का विलास (स्वयं) हो। स्व-आचार क्या है ? श्रद्धा कैसे हो ? सो कहा जाता है –

इस अनादि संसार में अनादिकाल से (मैंने) पर-विचार किया। (जिससे) मेरी ज्ञानचेतना अशुद्ध हुई। अब स्व-आचाररूप पारे का सेवन किया जाए, तो अविनाशी पद से भेंट हो। (उस अविनाशी पद से भेंट करने के लिए) 'मैं कौन हूँ ?', 'मेरा स्व-स्वरूप क्या है ?', '(वह) कैसे प्राप्त किया जाए ?' (उसका विचार करना चाहिए) (फिर विचारना कि) प्रथम (मूल) पद अपना उपयोग प्रकाश है, (एक) दर्शन-ज्ञान उपयोग (दूसरा) चरित्र उपयोग। दर्शन देखता है, ज्ञान जानता है, चारित्र परिणाम द्वारा आचरण करता है। ऐसे (पर) ज्ञेय का देखना, जानना, आचरण अनादि से किया, (परन्तु) अपने विशुद्ध पद में उपयोग नहीं दिया (नहीं लगाया।) अतीन्द्रिय (स्वाधीन) सुख की प्राप्ति के बिना (मैं) खाली रहा। अनन्त तीर्थंकर हुए, उन्होंने स्वरूप शुद्ध किया, अनन्त सुखी हुए। अब मुझे भी उसी भाँति (उन्हीं की तरह) स्वरूप शुद्ध करना है।

महा मुनिजन निरन्तर स्वरूप सेवन करते हैं। इसलिए (मुझे भी) अपने त्रैलोक्य पूज्य, सर्वोत्कृष्ट पद का अवलोकन करके (निज) कार्य करना है। कर्मघटा में मेरा सूर्य छिपा हुआ है। मेरे स्वरूप सूर्य का प्रकाश कर्मघटा से जरा भी नष्ट नहीं हुआ, (मात्र) अवरुद्ध है। चाहे जितना (कर्म) घटा का जोर हो, (फिर भी वह) मेरे स्वरूप को नष्ट नहीं कर सकता, चेतन को अचेतन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं कर सकता। मेरी ही भूल हुई है। जब स्वपद भूला (हूँ) तो भूल ही मिटाऊँ। (क्योंकि) मेरा स्वपद ज्यों का त्यों ही बना हुआ है।

जैसे कोई रत्नदीप का पुरुष था। वहाँ रत्नों के मन्दिर थे। (वह) रत्नसमूह में रहता था। परख[१] नहीं जानता था। (परखना नहीं आता था।) (वह) अन्य देश में आया, (अपने) कटिसूत्र में हरिकांतमणि जड़े थे। एक दिन (वह) सरोवर में स्नान[२] करने गया। जौहरी ने देखा (कि) उसकी मणिप्रभा से सरोवर का पानी हरा हो गया है। तब (वह जौहरी) उसके पास से नग लेकर इस पुरुष को राजा के पास ले गया। (उस जौहरी ने राजा से) एक नग के मूल्य में करोड़ मन्दिर भर जाएँ इतनी दीनार (सोना मोहर) उसे दिलाई। तब वह (रत्नदीप का) पुरुष पछताया। मेरा निधान मैंने नहीं पहचाना। उसीप्रकार अपना निधान अपने पास है। (उसे) पहचानते ही सुख होता है। मेरा आत्मा ज्ञान-दर्शन का धारक चिदानन्द है। मेरा स्वरूप अनन्त चैतन्यशक्ति से मण्डित अनन्त गुणमय है। मेरे उपयोग के अधीन वह बना रहा है। मैं मेरे परिणामरूप उपयोग को मेरे स्वरूप में धरूँगा, अनादि

---

१. परख=परीक्षा, परखना अथवा गुण और दोष की यथार्थ निर्णायक दृष्टि।

२. पाठान्तर-ख प्रति में यह पाठ निम्नरूप में दिया है -
"सो एक दिन सरोवर को पाणी पीवन को गयो, तब उस नरकौ जौहरी ने देखा, पाणी हरा भया, भाव जाण्या याके पास नग है, तब जौहरी ने पिछाण्या यह परख न जाने है।"
[वह एक दिन सरोवर का पानी पीने गया, वहाँ उस पुरुष को जौहरी ने देखा, पानी हरा हुआ (तब) भाव (अर्थ) जाना। इसके पास नग (मणि) हैं। तब जौहरी ने पहिचाना कि यह (मणि की) परख नहीं जानता।]

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का दुःख मिटाऊँगा (और) परमपद प्राप्त करूँगा। स्वरूप प्राप्त करने की यह सुगम राह है। दृष्टिगोचर करना ही दुर्लभ है। संतों ने उस मार्ग को सुगम बना दिया है। उनके प्रसाद से मैंने (उस मार्ग को) प्राप्त किया है।

वह हमारा अखण्ड विलास-सुखनिवास – इस अनुभवप्रकाश में है। वचन गोचर नहीं है, भावनागम्य है। यह मेरे ज्योतिस्वरूप का प्रकाश मैं हूँ। (यह मेरा ज्योतिस्वरूप का प्रकाश) प्रकट इस घट में प्रकाशता है, वह देखता है, छिपा हुआ नहीं है, उसे गोप्य कैसे मानूँ? छती वस्तु को अनछती कैसे करूँ? छती (वस्तु) अनछती नहीं होती। पूर्व में झूठे तरीके से ही छती को (विद्यमान वस्तु को) अनछती मानी थी। अनादि से उसके फल से दुःख भोगे, (अब) शरीर को आत्मा कैसे मानूँ ? यह तो रक्त से, वीर्य से, सात धातु का बना हुआ जड़, विजातीय, विनश्वर व पर है, सो यह मेरी चेतना नहीं है। ज्ञानावरणीय वर्गणा विजातीय, स्वरूप का आवरणरूप, अचेतन, बन्धक, विनश्वर और रस-विपाकहीन है; सो मेरी नहीं है। विभाव, स्वभाव को मलिन करता है, कर्म-उदय से हुआ है; (वह) मेरा नहीं है। मेरा चेतनापद मैंने प्राप्त किया। ज्ञान लक्षण से लक्ष्य को (चैतन्य को) पहचानकर, स्वरूपश्रद्धा से आनन्दकन्द की केलि (खेल) करके (मैं) सुखी होता हूँ। वह आनन्दकन्द की केलि स्वरूपश्रद्धा से कैसे होती है, वह कहा जाता है –

अनन्त चैतन्य चिन्ह सहित अखण्डित गुणपुञ्ज के और पर्याय के धारक द्रव्य का, ज्ञानदिगुणपरिणतिरूप और पर्याय अवस्थारूप वस्तु का निश्चय हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान जाननेमात्र, दर्शन देखनेमात्र, सत्ता अस्तित्वमात्र (तथा) वीर्य वस्तुनिष्पन्नसामर्थ्यमात्र, केवल ऐसे प्रतीतिभाव को, रुचि भाव को आस्तिक्यतारूप श्रद्धान को श्रद्धा कहते हैं। उससे (उस श्रद्धा से) उत्पन्न हुए आनन्दकन्द में केलि करके मैं सुखी होता हूँ, जानने से जो आनन्द होता है, वह ज्ञानानन्द, स्वरूप को देखने से, जो आनन्द होता है वह दर्शनानन्द, परिणमन से जो आनन्द होता है वह चारित्रानन्द (है)। ऐसे सर्व गुणों के आनन्द का मूल निजस्वरूप आनन्दकन्द, उसकी केलि स्वरूप में (अपनी) परिणति को रमाना (वह है)। अतः सुखसमूह हुआ हूँ। इससे (अन्य कोई) ऊँचा उपाय नहीं है। (परम कृपालु) भगवान से भव्य जीवों को यह शिवराह (शिवमार्ग, कल्याणमार्ग, मोक्षमार्ग) सोहला[१] दर्शाया है। भगवान की भावना से सन्त–महन्त हुए। मैंने भी इसी भावना का अवगाढ़ स्तम्भ रोपा (गाड़ा) है। सम्यग्दृष्टि को ऐसा निरन्तर अभ्यास रहता है। कर्म[२] के अभाव से स्वरसमण्डित सुख का पुञ्ज प्रकट हो तब ज्ञान कृतकृत्य होता है। इस आत्मा का स्वरूप गुप्त हो रहा है (वह) साक्षात् कैसे हो? परोक्षज्ञान द्वारा भावना बढ़ाने से (वह साक्षात् होता है)। वह कैसे सिद्ध हो सो कहा जाता है –

जैसे दीपक को पाँच परदे हैं। एक परदा दूर होने पर सूक्ष्म प्रकश हुआ। दूसरा परदा दूर हुआ, तब ज्यादा प्रकाश हुआ। तीसरा जाने पर और ज्यादा प्रकाश हुआ। चौथा जाने पर उससे भी ज्यादा हुआ। (और) पाँचवाँ गया तब निरावरण प्रकाश हुआ।

---

१. सोहला=सुगम, सरल, सुखदायक, सुन्दर, सुहावना

२. पाठान्तर – "निजस्वभावतैं"

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार ज्ञानावरण के पाँच परदे हैं। मतिज्ञानावरण के जाने पर स्वरूप का मनन किया। अनादि से परमनन था वो मिटा, फिर अनन्तर ऐसी प्रतीति हुई कि जिसप्रकार कोई पुरुष दरिद्र है, कर्ज से घिरा हुआ है, उसके पास चिंतामणि है, तब किसी ने कहा, ''इस चिंतामणि के प्रभाव से निधि का विस्तार हो रहा है, फलाने को फल दिया था, तो तुम भी अब निधि तो लो, साक्षात्कार होने पर सर्व फल प्राप्त करोगे।'' (तब उसे) प्रतीति में (तो) चिंतामणि मिलने जैसा हर्ष हुआ। उसप्रकार मतिज्ञानी को स्वरूप का प्रभाव एक अंश में ही ऐसा जगा कि केवलज्ञान का शुद्धत्व प्रतीति द्वारा हुआ, इससे अशुद्धत्व-अंश को भी अपना नहीं मानता। स्वसंवेदन मतिज्ञान[१] द्वारा हुआ है। 'ज्ञानप्रकाश मेरा है', इसप्रकार श्रुतज्ञान में विचार करे। मैंने मनन किया; मैं कैसा हूँ ? –

मैं ज्ञानरूप हूँ, आनन्दरूप हूँ। इसप्रकार चार ज्ञान में स्वसंवेदन परिणतिद्वारा तो (वह) प्रत्यक्ष है, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान पर[२] को जानने से एकदेश प्रत्यक्ष है। काहे से? कि सर्वावधि द्वारा सर्व वर्गणा, परमाणुमात्र देखे, जिससे एकदेश प्रत्यक्ष; मनःपर्यय भी पराए (दूसरों के) मन का जाने अतः एकदेश प्रत्यक्ष है। केवलज्ञान सर्व प्रत्यक्ष है। अपना जानना ज्ञानमात्र वस्तु में प्रतीति हुई, जिससे सम्यक् नाम मिला। ''ज्ञानमात्र वस्तु तो केवलज्ञान होने पर शुद्ध; जबतक केवल नहीं है तब तक गुप्त है।'' सिर्फ ज्ञानमात्र वस्तु की प्रतीति प्रत्यक्ष कर-करके स्वसंवेदन बढ़ाता है। जघन्य ज्ञानी कैसे प्रतीति करे ? वह कहा जाता है –

१. पाठान्तर – 'मतिद्वारि'
२. मू. प्रति में 'पर' पाठ नहीं है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मेरे दर्शनज्ञान का प्रकाश मेरे प्रदेश में से उठता है। ऐसा अवलोकन से जाने, मात्र विचार की मर्यादा में न रखे। ज्ञानपना मेरे में है, ऐसी प्रतीति करने पर आनन्द हो, वह निर्विकल्प सुख है। ज्ञान-उपयोग आवरण में गुप्त है। ज्ञान में आवरण नहीं है। काहे से ? कि जितने अंश में आवरण गया उतना ज्ञान हुआ, अतः ज्ञान आवरण से भिन्न है, वह (ज्ञान) अपना स्वभाव है। जितना ज्ञान प्रकट हुआ उतना अपना स्वभाव खुला, वह स्वयं है। इतना विशेष, आवरण हटने पर भी पर में ज्ञान जाए वह अशुद्ध, जितना अंश निज में रहे उतना वह शुद्ध। अतः केवल (ज्ञान) गुप्त है। किन्तु परोक्ष ज्ञान में निरावरण की प्रतीति कर-करके आनन्द बढ़ाएँ। ज्ञान[१] शुद्ध भावना से शुद्ध हो वह निश्चय है। [२]कहा है कि - "या मतिः सा गतिः" इति वचनात्। ('जैसी मति वैसी गति' - इस वचन के अनुसार)।

अपना स्वरूप साक्षात् किसप्रकार हो, वह कहा जाता है -

प्रथम निर्ममत्वभाव से संसार का भाव आघो (गौण, मन्द, नीरस) करे। किसप्रकार करे, वह कहा जाता है - जो दृश्यमान है, वह सब रूपी जड़ है; अतः उससे ममत्व नहीं करना। किस-लिए ? कि जो सब जड़ है, उसमें अपनत्व मानने से सुख क्या? इसप्रकार शरीर जड़ उसमें ममत्व नहीं करना। किसलिए? कि शरीरादि जड़ में अपनत्व[३] मानने से सुख क्या ? तथा राग-द्वेष-मोहभाव, असाताभाव, तृष्णाभाव, अविश्रामभाव, अस्थिरभाव,

---

१. पाठान्तर - 'ज्ञानी'
२. मूल प्रति में यह वाक्य नहीं है
३. पाठान्तर - 'आपा मानैं सुख कहा'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दुःखभाव, आकुलभाव, खेदभाव, अज्ञानभाव हैं; इससे हेय हैं। आत्मभाव, ज्ञानमात्रभाव, शान्तभाव, विश्रामभाव, स्थिरता-भाव, अनाकुलभाव, आनन्दभाव, तृप्तिभाव, निजभाव (हैं; इससे) उपादेय हैं।

आत्मपरिणति में आत्मा है। 'मैं हूँ' ऐसी परिणति द्वारा आत्मा प्रकट होता है। आत्मा में (स्वयं में) परिणति आयी, 'मैं हूँ' पने की मान्यता स्वपद का साधन है। 'मैं-मैं' परिणाम मैं कहता हूँ।

'मैं-मैं' परिणामों ने स्वपद की आस्तिक्यता की। स्वपद परिणाम योग्यस्थान के बिना नहीं होते। कायचेष्टा है, वहाँ नहीं है; वचन-उच्चारणा है, वहाँ नहीं है; मन चिन्तवन है, वहाँ नहीं है। आत्मपद में अपनी मग्नता, स्वरूपविश्राम, आनन्दरूप पद में स्थिरता, चिदानन्द, चित्परिणति का विवेक करना।

चित्परिणति चिद् में रमने पर आत्मानन्द उत्पन्न होता है। मन द्वारा विवेक होने के पश्चात् मन भी एक ओर (दूर) रह जाता है। मन पर है, ज्ञान निजवस्तु है। इसप्रकार विचारने से वह (मन) दूर रहता है। किसलिए ? कि परमात्मपद गुप्त है। उसकी मन व्यक्तभावना नहीं कर सकता। किसलिए ? कि परमात्म-भावना करते-करते परमात्मपद निकट आए, तब परमात्मा के तेज से मन पहले से ही मर मिटता है। किसलिए ? कि शौर्यवान के तेज से कायर बिना संग्राम के (युद्ध किए बिना ही) मरता है, सूर्य के तेज से अन्धकार पहले ही नष्ट हो जाता है - ऐसा (यहाँ) जानना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चिदानन्द की भावना से (चिदानन्द को भाने से) चित्परिणति शुद्ध होती है। चित्परिणति शुद्ध होने पर चिदानन्द शुद्ध होता है। अनात्मपरिणाम मिटाकर आत्मपरिणाम करना ही कृतकृत्यपना है। योगीश्वर भी इतना करते हैं। प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि उसके निमित्त हैं। स्वरूपपरिणाम में अनन्त सुख हुआ, निजपद का आस्तिक्य हुआ, अनुपमपद में लीनता हुई, एक स्वरस हुआ, शुद्ध उपयोग हुआ, सहजपद का अनुभव हुआ। आत्मपरिणाम की (निजपरिणाम की) अपार महिमा है। परमेश्वर स्वपरिणाम किए बिना परपरिणाम से भटक रहा है। अपने परिणाम स्वरूपानन्दी होने पर परमेश्वर कहलाया। ऐसा प्रभाव आत्मज्ञान के परिणाम का है। परिणमन से अविनाशी पद का अपूर्व लाभ हुआ। वह परिणाम स्वरूप कैसे लगे सो कहा जाता है –

पर से पराङ्मुख होकर बारम्बार स्वपद को (स्वसत्ता को) अवलोकने के भाव करे। दर्शन-ज्ञान-चारित्र चेतना का प्रकाश यथायोग्य (यथास्थानरूप) कर-करके स्वरूपपरिणति करे। आत्मज्योति अनात्मा से भिन्न-अखण्ड प्रकाश आनन्द चेतनास्वरूप चिद्विलास का अनुभव-प्रकाश परिणाम द्वारा प्रकाशे[१]। जहाँ से परिणाम उठे उसमें परिणाम लगाए। (किन्तु) ज्ञान को रोकें – ऐसे परिणाम न करे। परिणामतरंग चेतना अन्तरंग अभंग अंग में लीन होती रहे। अमरपुरी निवास निजबोध के विकास से है। निश्चय, निश्चल, अमल, अतुल, अखण्डित, अमिततेज, अनन्त-गुणरत्न मण्डित ब्रम्हाण्ड को पहचानकर, ब्रम्हपद को पूर्ण परमचैतन्य

१. पाठान्तर – 'परिणामकरि प्रकाशै'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

-ज्योतिस्वरूप, अरूप, अनूप, त्रैलोक्यभूप परमात्मरूप पद को, प्राप्त कर, पावन होकर रहे, वह अनुभव की महिमा है।[१]

यथार्थज्ञान, परमार्थनिधान, निजकल्याण, शिवस्थानरूप भगवान, अमलान, सुखवान, निर्वाणनिधि, निरुपाधि, निजसमाधि को साधें, आराधें। अलख, अज, आनन्द, महागुणवृन्दधारी, अविकारी, सर्वदु:खहारी, बाधारहित, महित, सुरस, रससहित, निरंशी, कर्म का विध्वंसी, भव्य का आधार, भवपार करनार, जगत का सार, दुर्निवार दु:ख को चूरता (है)। भव के तापरूप पुण्य-पाप को मिटाकर स्वपद को पूरता (है) आत्मपद की पहचानकर, चिदानन्द को दरशा देता (है), सदा सुखकन्द, निरफन्द पहचानवाता (है), अविनाशी पद को प्राप्त करता (है), लोकालोक को झलकाता (है), पुन: भव में नहीं आता। (जिसके) सर्व वेद गुण गायें उसे कहाँ तक दरशायें ? वचनगोचर न आए (ऐसा) यह परमतत्त्व है। अतत्त्व से अतीत जिसमें विपरीत करणी नहीं है। भवदु:ख की भरणी, हितहरणी (हित के नाश को अनुसरने वाली), (ऐसी करणी) अनादि से ही मोहराजा ने बनायी है। जगत के जीवों को भायी (पसन्द आयी) है, दु:खदायक होने पर

---

१. दरशन ज्ञान शुद्ध चारित कौ एक पद,
मेरौ है सरूप चिन्ह चेतना अनन्त है;
अचल अखण्ड ज्ञानज्योति है उद्योत जामैं,
परम विशुद्ध सब भाव में महन्त है।
आनन्द को धाम अविराम जाको आठों जाम,
अनुभवे मोक्ष कहै देव भगवन्त है;
शिवपद पायवे को और भाँति सिद्धिनाँहिं,
यातैं अनुभवौ निज मोक्ष-तियाकन्त है॥४५॥ - ज्ञानदर्पण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी सुहायी (अच्छी लगी) है अथवा जिसमें अज्ञान की अधिकाईरूप बहुत काट (मैल) लगा है; (परन्तु) ज्ञानरीति को अन्तर में लाकर, विपरीत करणी को भेदकर साधकता साधकर महान होता है, निजध्यानरूप आनन्दसुधा का पान होता है, मोक्षपद का निदानी (होकर) उसी समय में स्वरसवशी होता है।

इन्द्रिय चोर को दबाकर, काया की माया को छोड़कर परमेश्वर -स्वरूप पद को (अपने) अघट घट में व्यापक निहारा। अनुपम चिद्रूप को पहचाना, भ्रमभाव को मिटाया, निजआत्मतत्त्व प्राप्त किया। अचल, अभेद आदतवाला (स्वभाववाला) 'देव' देखा। भव से उदासी होकर, शाश्वत पद का निवासी (होकर) सुखराशि प्राप्त की। बाहर नहीं बहता (नहीं राजता, नहीं खोजता)। निजभाव को ही चाहता है। स्वपद का निवास स्वपद में है। बहिरंग संग में ढूँढ़-ढूँढ़कर व्याकुल हुआ। जैसे कस्तूरी मृग सुगन्ध को ढूँढ़ता है (परन्तु) कहीं (वह सुगन्ध) दूसरी जगह में नहीं पाता। तैसे ही अपना पद पर में नहीं पाता। मोह के विकार से (पर में सुख की भ्रान्ति से) अपना पद सूझता नहीं है। सन्तपुरुष के प्रताप से अनन्तगुणमय चिदानन्द (निज) परमात्मा तुरन्त प्राप्त करे। जहाँ तक परपद में अपनत्व है, तबतक सरागी होकर व्याकुल रहता है। ज्ञानदृष्टि से दर्शन-ज्ञान-चारित्र को एक पदस्वरूप अवलोकन करते ही परमान्यता तुरन्त नष्ट होती है। रागविकार मिटते ही वीतराग पद प्राप्त करे, तब अनाकुल होता हुआ, अनन्तसुख का रसास्वादी होकर अपने को अमर करता है। जैसे कोई राजा शराब पीकर निंद्य स्थान में रति मानता है, तैसे ही चिदानन्द देह में रति मान रहा है। मद उतरने पर, राजपद का ज्ञान होकर राजनिधान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विलसता है, (वैसे ही) स्वपद का ज्ञान होने पर सच्चिदानन्द सम्पदा विलसती है।

कोई प्रश्न करे कि ज्ञान तो जानपनेरूप है, (तथापि) अपने को क्यों नहीं जानता ? उसका समाधान –

जानपना अनादि से पर में व्याप्त होकर पर का ही हो रहा है। अब ऐसा विचार करने से सिद्ध होता है कि यह पर का जानपना भी ज्ञान के बिना नहीं होता। ज्ञान आत्मा के बिना नहीं होता, इसलिए परपद को जाननेवाला (भी) मेरा पद है। मेरा ज्ञान (वही) मैं हूँ। पर विकार (पर के अनुसरण से होनेवाला भाव) पर है। जहाँ–जहाँ जानपना वहाँ–वहाँ 'मैं' ऐसा दृढ़भाव सम्यक्त्व है। वह सुगम है, (तथापि) विषम मान रहा है। मोहमद को रोककर, ज्ञानामृत का पान करके, ब्रम्हपद का स्मरण करके, भवखेद को टालकर, निज से भेद को पाकर, अभेद निजपद को पहचानकर, पर ऐसी वाणी को त्यागकर, चिदानन्द को जानकर, मोहमान्यता का नाश करके, गुणग्राम–सुखधामरूप, अभिरामरूप वही (मेरा) स्वरूप है। वही भाव मोक्ष को, उपाय–उपेय को साधता (है), शुद्ध आत्मा को आराधता (है)। इसीप्रकार निर्ग्रन्थ पुरुष शिवपथ को बहुत साध–साधकर, समाधि को प्राप्त करके परमपद को पहुँचते (हैं)। अपना चेतनप्रकाश मोहविकार को पाकर मलिन हुआ है। भेदज्ञान जड़–चेतन को भिन्न करता है। उसे अन्तर में धारण कर–करके, निजज्ञान का अभ्यास बारम्बार करके, सार अविकार अपना अखण्डरूप जानकर, (उसे) अन्तर में–अनुभव में लाकर, महामोह हठ का नाश करके, जो स्वरूप अपने स्वभाव में है, उस स्वभाव को निज उपयोग में योग्यस्थानरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करे। (यथास्थानरूप करे, स्थिर करे)। स्वरूप की उपयोगशक्ति कर्म में गुप्त हुई तो क्या (उस) शक्ति का अभाव मानें ?

जैसे कि, किसी का पुत्र घर में है। बाजार में किसी ने पूछा कि 'आपके पुत्र है ?' तो कहता है कि 'मेरे पुत्र है'। (बाजार में साथ न होने पर भी) अभाव नहीं कहता। व्यवहार में भी यह रीति है कि विद्यमान को अविद्यमान नहीं करता। (परन्तु हे) चिदानन्द! तेरा तो आश्चर्य होता है कि दर्शन-ज्ञानशक्ति विद्यमान होने पर भी (तूने) अविद्यमान कर रखी है।

जैसे लोटनजड़ी को (जटामासी, जिसे बिल्ली लोटन कहते हैं) देखकर, बिल्ली लोटने लगती है, वैसे ही मोह से संसार-भ्रमण है। वहाँ से (यथार्थप्रकार से) इधर जरा भी स्वरूप में आ जाए तो त्रिलोक का राज्य प्राप्त कर ले। वह तो दुर्लभ नहीं है।

जैसे मनुष्य पशु का स्वाँग धारण करे तो (कहीं) पशु नहीं हो जाता (किन्तु) पुरुष ही रहता है, तैसे ही आत्मा चौरासी के स्वाँग धारण करे, तथापि वह चिदानन्द ही है।[१] चिदानन्दपना दुर्लभ नहीं है।

जैसे कोई काष्ठ की पुतली को सच्ची स्त्री मानकर उसे बुलाये, प्रेम करे, उसकी सेवा करे; फिर जाने कि (यह तो) काष्ठ

१. जैसें नर कोउ वेष पशु के अनेक धरै,
पशु नहीं होय रहै यथावत् नर है।
तेसैं जीव चार गति स्वांग धरै चिरहीकौं,
तजै नाहीं एक निज चेतना कौ भर है।
ऐसी परतीति किये पाइये परमपद,
होइ चिदानन्द शिवरमणीकौ वर है।
सासतौ सुथिर जहाँ सुखकौ विलास करै,
जामैं प्रतिभासै जे ते भाव चराचर है ॥४०॥ - ज्ञानदर्पण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की है, तब पछताता है। वैसे ही (यह आत्मा) जड़ की सेवा करता है, अज्ञानी होता हुआ जड़ में सुख की कल्पना करता है व ज्ञानी होने पर झूठी मान्यता छोड़ देता है।

जैसे मृग-मरीचिका में जल मानता है, वैसे ही यह (जीव) पर में अपनत्व मानता है। इसलिए सच्चे ज्ञान से वस्तु को जाने, तभी भ्रम मिटता है। श्रीगुरु बारम्बार सारभूत ऐसा सच्चा उपदेश कहते हैं। स्वयं भी जानता है; (तथापि) अविद्या का ऐसा आवरण है कि उसके द्वारा झूठ को सच मान रहा है। तीन जगह से टेढ़ी ऐसी रस्सी में सर्प त्रिकाल नहीं है, वैसे ही ब्रम्ह में अविद्या नहीं है। सम्पूर्ण समुद्र के जल से धोने पर भी जो देह[१] अपावन ही है, उसे पावन मान रहा है; ऐसी ढिठाई पकड़ी है। बलजबरी से ठीकरी को रुपये में चलाये तो नहीं चलेगी। अपनी भूल नहीं छोड़े तो दुनिया में अपनी हँसी आप करायेगा। देखो! अनन्तज्ञान का धनी (स्ववस्तु को) भूलकर दुःख पाता है। हँसी होने पर मनुष्य लज्जित होता है, फिर से हँसी का काम नहीं करता। इस जीव की अनादिकाल से जगत में हँसी हो रही है, फिर भी लज्जित नहीं होता, फिर-फिर उसी झूठी रीति को ग्रहण करता है!!

जिसकी बात करने से भी अनुपम आनन्द हो - ऐसा अपना पद है, उसे तो ग्रहण नहीं करता (और) परवस्तु की ओर देखते ही चौरासी का बन्दीखाना है, उसे अति रुचिपूर्वक सेवन करता है। ऐसी विपरीतरूप हठ-रीति को अनुपम मान-मानकर हर्ष

१. देह अपावन अथिर घिनावन, यामैं सार न कोई।
सागर के जलतैं शुचि कीजे, तौ भी शुद्ध न होई॥ - भूधरदासजी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्राप्त करता है। जैसे सर्प को हार जानकर हाथ डालो तो दुःख होगा ही होगा; वैसे ही रुचिपूर्वक पर का सेवन करने से संसार-दुःख होगा ही होगा।

जैसे कि एक नजरबन्दीवाला पुरुष एक नगर में एक राजा के पास आकर रहा। कुछेक दिन बाद राजा मरण को प्राप्त हुआ। तब उस पुरुष ने राजा को मरा नहीं बतलाया। उसने राजा को तो खूब गहरे गाड़कर ऊपर से मिट्टी दाबकर (दूसरों को) खबर न पड़े – ऐसी जगह करके, नजरबन्दी द्वारा काष्ठ के राजा को दरबार में बिठा दिया। नजरबन्दी के कारण सबको वह सच्चा भासित होता था। जब कोई राजा से पूछे तब वह (नजर बाँधने वाला) पुरुष जवाब देता तो लोग समझते थे कि राजा बोलता है। ऐसा चरित्र (उसने) दृष्टिबन्ध से किया। वहाँ एक पुरुष जंगल की बूटी सिर पर डालकर आया, उस बूटी के बल से उसकी दृष्टि बँधी नहीं। तब वह पुरुष लोगों से कहने लगा कि अरे! कुबुद्धिजनो! काष्ठ का (राजा) प्रत्यक्ष देखने में आता है, तुम इसे सच्चा राजा जानकर सेवन करते हो, धिक्कार है तुम्हारी ऐसी समझ को! वैसे ही जो यह सर्व संसारी हैं, उनकी दृष्टि मोह से बंधी है; पर को अपने रूप मानकर सेवन करते हैं। पर में चेतना का अंश भी नहीं है। जिसे ज्ञान हुआ है, वह ऐसा जानता है कि यह कुबुद्धि संसारीजन जड़ में अपनत्व मानते हैं, दुःख सहते हैं, धिक्कार है उनकी समझ को! दुःखदायक झूठे हठ को सुखदायक जानकर सेवन करते हैं।

जैसे किसी का जन्म हुआ, जन्म से ही आँख पर चमड़ी का लपेटा चला आया; भीतर आँख का प्रकाश ज्यों का त्यों है; बाह्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चर्म के आवरण से अपना[१] शरीर अपने को नहीं दिखता। जब कोई वैद्य मिला तो उसने कहा कि इसमें ज्योतिरूप प्रकाश है- आँख अच्छी है। उसने यत्न करके चमड़ी का लपेटा दूर किया, तब अपना शरीर स्वयं ही देखा तथा दूसरा भी वह देखने लगा। इसीप्रकार ज्ञान-दर्शन के नयन अनादिकाल से आवृत्त होकर चले आ रहे हैं, इसलिए अपने स्वरूप को नहीं देखा, तब श्री गुरुरूपी चिकित्सक (नैत्रवैद्य) मिले, तब ज्ञानावरण को (दर्शनमोह को) दूर करने का उपाय बतलाते ही, उसके श्रद्धान से (आवरण) दूर हुआ, तब स्वयं अपना अखण्ड ज्योतिस्वरूप पद देखा और अनन्त सुखी हुआ।

रस्सी में सर्प नहीं है, सीप में चाँदी नहीं है, मरीचिका में जल नहीं है; काँच के मन्दिर में दूसरा श्वान नहीं है, कस्तूरी मृग के बाहर सुगन्ध नहीं है, नलिनी में तोते को किसी ने पकड़ा नहीं है, (घड़े में) बन्दर की मुट्ठी किसी ने पकड़ी नहीं है, कुएँ में दूसरा सिंह नहीं है - इसप्रकार दूसरा कोई नहीं है, अपनी ही झूठी भूल है; इससे स्वयं (ही) दुःख पाता है। (अपने को) दूसरा (पर) मान-मानकर दुःख पाता है। सच (सत्य) जानने से सदा सुखी होता है। यह आत्मा सुख के हेतु अनेक उपाय करता है। देश-देश फिरता है, लक्ष्मी कमाकर सुख भोगता है अथवा परलोक सुख के हेतु अनेक परीषह सहता है, सुख का[२] निधान निजस्वरूप को नहीं जानता। जाने तो तुरन्त सुखी हो।

१. पाठान्तर - 'आपका शरीर आपकौं' के बदले 'आपकौं' ऐसा पाठ है।

२. मूल प्रति में 'सुख का' शब्द नहीं है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे सभी पुरुषों की गठरी में माणिक[१] हैं, (तथापि) वे सब भ्रम से भूलकर दुःखी हो रहे हैं। यदि गठरी खोलकर देखें तो सुखी हों। अन्धा यदि कुएँ में गिरे तो आश्चर्य नहीं होता, सूझता गिरे तो आश्चर्य होगा। वैसे ही आत्मा ज्ञातादृष्टा है; तथापि संसार-कूप में गिरता है, यह बड़ा आश्चर्य है। मोहरूपी ठग ने उसके सिर पर भुरकी डाल दी है, उससे परघर को ही अपना मानकर निजघर भूला है। ज्ञानमन्त्र से मोह ठगी को उतारे, तब निजघर को प्राप्त करे। श्रीगुरु बारम्बार निजघर प्राप्त करने का उपाय बतलाते हैं (कि) अपने अखण्डित उपयोग-निधान को लेकर अविनाशी राज्य कर। अपनी हरामजादगी से अपना राजपद भूलकर कौंड़ी-कौंड़ी का भिखारी बनकर कंगाल हुआ है। तेरा निधान (तेरे) पास ही था। तूने नहीं सँभाला इससे (तू) दुःखी हुआ।

जैसे कि, चाँपा नामका ग्वाला धतूरा पीकर उन्मत्त हुआ। (मानने लगा कि) 'मैं चाँपा' नहीं। चाँपा के घर के पिछवाड़े खड़े होकर उसने आवाज दी कि 'चाँपा घर है......?', तब उसकी स्त्री ने कहा - 'तू कौन है ?', तब होश आया कि 'मैं चाँपा हूँ।' वैसे ही श्रीगुरु ने आत्मा (निजस्वरूप) बतलाया है। प्राप्त करे वह सुखी होगा। कहाँ तक कहें ? यह महिमानिधान अम्लान अनुपम पद स्वयं (ही) बना है, सहज सुखकन्द है, अलख अखण्डित है, अमित तेजधारी है, अनादि से दुःखद्वन्द्व में अपनापन मानकर अति आनन्द मान रहा है। वह दुःख की मूल भूल तभी मिटे कि जब श्री गुरुवचन सुधारस पिये। चेत (जागृत स्वरूप

---

१. लाल बन्ध्यो गठडी विषे, लाल बिना दुःख थाय।
खोल गाँठडी जो लखै लाल तुरत मिल जाय॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का भान) होकर पर की ओर का अवलोकन मिटे। स्वरूप स्वपद को देखते ही तीनलोक के नाथ (ऐसे) निजपद को जाने[१]। (ऐसा) विख्यात वेद (शास्त्र) बतलाते हैं।

नट स्वाँग धरकर नाचता है। स्वाँग धारण न करे तो पररूप नाचना मिटे। ममत्व से पररूप हो-होकर (यह जीव) चौरासी के स्वाँग धरकर नाचता है। ममत्व को मिटाकर, सहजपद को भेंटकर स्थिर रहे तो नाचना न हो। चंचलता मिटने पर चिदानन्द उद्धरता है (मुक्त होता है)। ज्ञानदृष्टि खुलती है। स्वरूप में बराबर (यथार्थ रीति से, सम्यक्प्रकार से) सुस्थिर होने पर गतिभ्रमण मिटता है। इसलिए जो स्वरूप में सदा स्थिर रहे, उसे धन्य है।

अपने अवलोकन में अखण्ड रसधारा बरसती है – ऐसा जानकर, निज को जानकर, परमान्यता को मिटाये। यह मैं सुख-निधान ज्योतिस्वरूप, परम प्रकाशरूप, अनुपमपदरूप स्वरूप हूँ। इस आकाशवत् अविकारपद में परसंयोग से चिद्विकार हुआ है।

प्रश्न :– यहाँ तो पर के निवास का अवकाश नहीं था। (तो वह) अनादि से किसप्रकार किया ? वहाँ कहते हैं –

समाधान :– जैसे स्वर्ण की खान में स्वर्ण चिरकाल से ही गुप्त है, वैसे ही आत्मा कर्म में अनादिकाल से गुप्त है। परयोग से अनादिकाल से अशुद्ध-उपयोगरूप अशुद्धता लगी है, वह देखो! कैसे लगी है ? सो कहते हैं –

१. मेरा सरूप अनूप विराजत, मोहिमें और न भासत आना;
ज्ञानकला निधि चेतनमूरति, एक अखण्ड महासुख थाना।
पूरन आप प्रताप लियें जहाँ योग नहीं पर के सब नाना;
आप लखैं अनुभव भयौ, अति देव निरंजन को ठर आना॥४३॥ – ज्ञानदर्पण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्रोध, मान, माया, लोभ, इन्द्रिय, मन, वचन, देह, गति कर्म, नोकर्म, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, अन्य जीव आदि जितनी परवस्तुएँ हैं, उन सबको अपनी करके (अपनेरूप मानकर) जानता है। 'वे मैं ही हूँ, मै उनका कर्ता हूँ, वे मेरे कर्म हैं।' 'मैं हूँ तो वे हैं, वे हैं तो मैं हूँ', इसप्रकार परवस्तु को अपनेरूप जानता है (और) अपने को पर जानता है। इससे लोकालोक को जानने की सर्वशक्ति अज्ञानभावरूप परिणमी है। इसप्रकार जीव का ज्ञानगुण अज्ञान विकाररूप हुआ।

उसीप्रकार जीव का दर्शनगुण था, (वह) जितने परवस्तु के भेद हैं, उन सबको अपनेरूप देखता है, वे (सर्व) मैं हूँ, अपने को पर में देखता है तथा पर को अपने में देखता है। (इसप्रकार) लोकालोक देखने की जितनी शक्ति थी उतनी सब शक्ति अदर्शनरूप हुई। इसप्रकार जीव का दर्शनगुण विकाररूप परिणमित हुआ।

तथा जीव का सम्यक्त्वगुण था (वह) जीव के भेद में अजीव का आस्तिक्य करता है। चेतन को अचेतन, अचेतन को चेतन, विभाव को स्वभाव, स्वभाव को विभाव, द्रव्य को अद्रव्य, गुण को अवगुण, ज्ञान को ज्ञेय, ज्ञेय को ज्ञान, स्व को पर, पर को स्व (आपरूप) – इसीप्रकार अन्य सर्व विपरीतता बराबर होने की प्रतीति–आस्तिक्यभाव करता है। इसप्रकार जीव का सम्यक्त्वगुण मिथ्यात्वरूप परिणमित हुआ।

और, जीव का स्व–आचरणगुण था, (वह) जितनी कुछ पर–वस्तुएँ हैं, उन सब पर को स्व–आचरणरूप करता रहता है; पर में बना रहता है, पर को ही ग्रहण किया करता है, (इसप्रकार)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपनी चारित्रगुण की सर्वशक्ति पर में लग रही है। इसप्रकार जीव का चारित्रगुण भी विकाररूप परिणमता है।

दूसरे, इस जीव का सर्वस्वरूप परिणमने के बलरूप सर्व वीर्यगुण था, (वह) निर्बलरूप होकर परिणमा, स्वरूप-परिणमन की शक्ति अवरुद्ध हो गई, (अर्थात्) निर्बल होकर परिणमा। इसप्रकार जीव का वीर्यगुण विकाररूप परिणमा।

और, इस जीव का आत्मस्वरूप रस, जो परमानन्द भोगगुण था (वह) परपुद्गल के कर्मपनेरूप व्यक्त साता-असाता, पुण्य-पापरूप उदय, परपरिणाम के अनेकप्रकार के विकार-चिद्‌विकार परिणामों के ही रस के भोगता रहे, रस को लेता रहे, उस परमानन्द गुण की सर्वशक्ति परपरिणाम का ही स्वाद आस्वादती रहे (चाखती रहती है)। वह परस्वाद परम दुःखरूप (है)। इस-प्रकार जीव का परमानन्द गुण दुःख-विकाररूप परिणमित हुआ।

इसप्रकार इस जीव के अन्य गुण जैसे-जैसे विकारी होते हैं, वैसे-वैसे ग्रन्थान्तर से जान लेना।

इस जीव के सर्व गुणों के विकार को 'चिद्विकार' ऐसा नाम संक्षेप से कहना (कहा है)। एक-एक गुण की अनन्ती शक्ति कही है। सत्ता की शक्ति है (वह) अनन्त गुण से विस्तरित हुई है। सर्व गुणों का आस्तिक्य सत्ता से हुआ है। सत्ता ने सर्व गुणों को शाश्वत रखा है। (यदि) अनन्त चेतना का स्वरूप असत्ता होता तो, चित्शक्तिरूप चेतना की अविनाशी महिमा नहीं रहती। सत् चिदानन्द बिना निष्फल होने से वे किस काम के? इससे सत् चिदानन्द रूप द्वारा आत्मा प्रधान है। अरूपी आत्मप्रदेश में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्वदर्शनी, सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व आदि अनन्तशक्ति का प्रकाश है, वह अविकारी उपयोग का धारी, कर्मत्व द्वारा आवृत्त होकर संकोच-विस्तार से शरीराकार हुआ।

प्रश्न :– आकाशवत् आत्मा किस प्रकार संकोच-विस्तार पाता है ?

समाधान :– (अकेला) पुद्गल संकुचन-विस्तरण करे तो काष्ठ, पाषाण (भी) घटते-बढ़ते। (परन्तु) वे चेतना के बिना नहीं बढ़ते। (अकेला) चेतन ही बढ़े-घटे तो सिद्ध के प्रदेश का विस्तार हो या घट जाय; परन्तु ऐसा भी नहीं है। जड़-चेतन दोनों मिलने से संकोच-विस्तार (निमित्त-नैमित्तिकपने) होता है। प्रदेश में सर्व गुण कहे हैं; तथापि संसारदशा से मोक्षमार्ग का चढ़ना नहीं होता है। वहाँ (तो) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को मोक्षमार्ग[१] कहा है। उनकी जितनी विशुद्धि होती जाय उतना-उतना मोक्षमार्ग हुआ।

निश्चय मोक्षमार्ग दो प्रकार से है – सविकल्प तथा निर्विकल्प। सविकल्प में 'अहम् बम्ह अस्मि' 'मैं ब्रम्ह हूँ' – ऐसा भाव आता है। (और) निर्विकल्प में वीतरागस्वसंवेदन (को) समाधि कहते हैं। लोकालोक को जानने की शक्ति ज्ञान की है, उसमें जितना स्व-संवेदन हुआ। (उतना) स्वज्ञान की विशुद्धता का अंश होने से हुआ। उस ज्ञान ने सर्वज्ञशक्ति में अनुभव किया। जितना ज्ञान शुद्ध हुआ, उतना अनुभव में सर्व ज्ञान के प्रतीतिभाव के वेदन से ऐसा (शुद्ध) हुआ। सर्व ज्ञान के प्रतीतिभाव में आनन्द बढ़ा।

---

१. ''सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग'' – तत्त्वार्थसूत्र १-१

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान अधिक निर्मल होता गया। ज्ञान की विशुद्धता को ज्ञान के बल का प्रतीतिभाव कारण है। (यहाँ) ज्ञान परोक्ष है। पर-परिणति के आवरण का बल होने पर भी उस स्वसंवेदन में स्वजातीय सुख हुआ। ज्ञान स्व-स्वरूप का हुआ। "एकदेश स्वसंवेदन सर्व स्वसंवेदन का अंग है।" ज्ञान वेदना में वेदा जाता है, (वह) साक्षात् मोक्षमार्ग है। उस स्वसंवेदन को ज्ञानी ही जानते हैं। स्वरूप से परिणामों का बाहर जाना ही संसार है। स्वरूपाचरणरूप परिणाम ही साधक अवस्था में मोक्षमार्ग और सिद्ध अवस्था में मोक्षरूप है। जितने-जितने अंश में ज्ञानबल से आवरण का अभाव हुआ, उतने-उतने अंश में मोक्ष नाम पाया। स्वरूप की वार्ता प्रीतिपूर्वक सुने तो (उसकी) भावी मुक्ति कही है[१]। अनुपम सुख प्राप्त होवे (और उसका) अनुभव करे, उसकी महिमा (तो) कौन कह सकता है ?

"जितना स्वरूप का निश्चय यथार्थ भाए (चिंतवन करे) उतना स्व-संवेदन अडिग (अचल) रहता है, (और) जितना स्वरूपाचरण हो, उतना स्वसंवेदन बराबर होता है। एक होने पर तीनों की सिद्धि है।

गुप्त शुद्धशक्ति की सिद्धि के प्रमाण में (परिणति) प्रवेश करती है। परिणति ज्यों-ज्यों शुद्धता की प्रतीति में स्थिर हो त्यों-त्यों मोक्षमार्ग की शुद्धि होती है। जैसे - कोई अधिक कोस चलेगा वैसे ही नगर समीप आयेगा, उसीप्रकार (ज्यों-ज्यों)

---

१. "तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्ताऽपि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनं॥" - पद्मनन्दि पंचविंशतिका

अर्थ :- जिस जीव ने प्रीतियुक्त प्रसन्न चित्त से उस आत्मतत्त्व की बात भी सुनी, वह जीव विशेषकर भव्य है और अल्प समय में निर्वाण का पात्र है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्धस्वरूप की प्रतीति में परिणति अवगाढ़, गाढ़, दृढ़ हो (त्यों-त्यों) मोक्षनगर निकट आता है। स्वयं अपनी परिणति का खेल करके भवसिन्धु से पार होता है। स्वयं विभाव परिणति से संसार को विषम बना रखा है। संसार मोक्ष की करनेवाली परिणति है, (अर्थात्) निजपरिणति मोक्ष, पर-परिणति संसार है। सत्संग से-अनुभवी जीव के निमित्त से, यह निजपरिणति स्वरूप की होती है; विषम मोह मिटने से परमानन्द को भेंटती है (परमानन्द की प्राप्ति होती है)। स्वरूप-प्राप्त करने का मार्ग सन्तों ने सहला[१] कर दिया है।

चौरासी लाख योनिरूप सराय में सदा फिरनेवाले ने कभी कहीं भी स्थिररूप निवास नहीं किया। जबतक (यह) परमज्योति अपने शिवघर में न पहुँचे, तब तक कार्य[२] भी नहीं सरेगा। जपी, तपी, ब्रम्हचारी, यति आदि अनेक वेश धारण किये, उससे क्या हुआ ? इसलिए (इसी से, अब तो) निज अमृत का पान करने से अनादि का भ्रम, खेद (मिटे) और अजर-अमर हुआ जा सके (ऐसा) तत्त्वसुधा-सेवन का मार्ग क्या ? सो कहा जाता है -

तत्त्व का कौतूहली होकर, सकल अविद्या से छूटकर अपने चिदानन्द स्वरूप को अवलोके-अनुभव करे। निजानन्द की केलि-रूप कला द्वारा स्वपद को देख (जिससे) अनात्मा का संग फिर न रहे। अनादि मोह के वश होकर अहित में निजहित मान रहा है, उस मोह का भेदज्ञान से नाश कर। ज्ञानचेतना का अनुभव कर (क्योंकि) अनादि अखण्डित ब्रम्हपद का विलास तेरे ज्ञान-कटाक्ष में है।

१. सुगम, सरल, सुखदायक, सुन्दर, सुहावना २. पाठान्तर - 'एक कार्य'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जब अज्ञानपटल दूर हो, सद्गुरुवचनरूपी अञ्जन से पटल दूर होने पर ज्ञाननेत्र प्रकाशित हों, तब लोकालोक दृष्टिगोचर होता है। ऐसे ज्ञान की महिमा अपार (है)। ज्ञानमयमूर्ति की सूरत का सेवन कर-करके अनेक मुनि पार हुए। अपने सहज का (स्वभाव का) खेल है। पर-परिचय में विषम है। सहज बोधकला द्वारा सुगम है। कष्ट-क्लेश से दूर है। किसलिए? कि अफीम खाने से तुरन्त विष की लहर (तरंग) चढ़ती है। अमृत के सेवन से तुरन्त तृप्ति होकर सुख प्राप्त करता है। वैसे ही कर्म संक्लेश में शांतपद नहीं है। अनन्त सुख-निधान की स्वरूपभावना करते ही अविनाशी रस उत्पन्न होता है, उस रस का सन्त सेवन करते आए हैं, उसका तू भी सेवन कर। श्रेयपदरूप अनुपम ज्योतिस्वरूप पद अपना ही है, अपने परमेश्वर पद का दूर अवलोकन न कर, अपने को ही प्रभु स्थाप। भली-भाँति स्मरण करने से ज्ञानज्योति का उदय होकर मोहरूपी अन्धकार विलय को प्राप्त होता है, चित्त में आनन्द सहित कृतकृत्यता प्रकट होती है, उसे वेग से (शीघ्र) अवलोकन करके, अन्य (पर का) ध्यान रोककर, विचारपूर्वक स्मरण कर। तेरा ब्रम्हविलास तुझमें है, उससे (परमात्मपद से) (अन्य) क्या अधिक है कि उसे छोड़कर तू पर को ध्याता है? चार वेदों का भेद (रहस्य) पाकर स्वरूपसुखरूप स्वपद को ग्रहण कर। तेरी (स्वरूप) भावना में अविनाशी रस का चुआ चूता है। उसकी भावना करके भ्रम-भाव को मिटा। तेरी भावना ने झूठमूठ ही भव बना रखे हैं, ऐसा निंद्यकर्म स्वभाव-कल्लोल के प्रकट होने पर ही मिटता है।

देख, तू चेतन है (और) जड़ अजान (अचेतन) है। उस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अजान में (अचेतन में) अपने को मानकर अशुद्ध हुआ है। अजान (अचेतन) कहीं तेरे पीछे नहीं पड़ा है। तू अपने पद से (हटकर) उसकी ओर मत आ। जड़ कहीं तेरा पल्ला नहीं पकड़ता। तू व्यर्थ ही परायी वस्तु को अपनी मान-मानकर झूठ-मूठ हर्ष मानता है। मुझे भोग में सुख हुआ, मैं सुखी हूँ – ऐसी मिथ्या भ्रमरूप कल्पना कर आनन्दित होता है। (उसमें) किंचित् भी सावधानी का अंश नहीं है। यह एक आश्चर्य है कि तू तीनलोक का नाथ होकर भी अपने पूज्यपद को भूलकर, नीचपद में अपने को मानकर विकल होकर व्याकुलरूप हुआ भटकता है।

जैसे कोई एक इन्द्रजाल के नगर में रहता है। वहाँ वह इन्द्र-जाली के वश हो इन्द्रजाल के हाथी, घोड़े, मनुष्य, सेवक, स्त्री सब हैं, उसमें से वह किसी को हुक्म देता है (वहाँ) सेवक आकर (उसे) सलाम करता है, स्त्री नृत्य करती है, (स्वयं) हाथी पर चढ़ता है, घोड़ा दौड़ाता है। इन्द्रजाल में इन खेलों को सच्चा मानता है, विकलता धारण करके कभी किसी के वियोग से रोता है, (तथा) दुःखी होकर छाती कूटता है। कभी किसी का लाभ मानकर प्रसन्न होता है, कभी श्रृंगार सजता है, कभी सेना देखता है, कभी आनन्द मनाता है। इसप्रकार झूठे खेल को सच्चा मान रहा है। संसार में सब कहते हैं कि इन्द्रजाल झूठा है, उसमें रंचमात्र सत्य नहीं है। उसीप्रकार देव, नर, नारक, तिर्यंच के शरीर जड़ हैं, (उनमें) चेतन का अंश नहीं है, भ्रमवश (उसका) श्रृंगार करता है, खान-पान, सुगंधित तेल लगाना आदि से (उसका) अनेकप्रकार जतन करता है। झूठ में ही प्रमोद मानकर हर्षित होता है। मरे के साथ जिन्दा सगाई करे तो कार्य कैसे सुधरे ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसप्रकार[१] श्वान हड्डी को चबाता है, (और उससे) उसके गाल, तालु तथा मसूड़ों से जो खून निकलता है, उसे स्वादिष्ट मानता है, उसीप्रकार मूढ़ स्वयं दुःख में सुख की कल्पना करता है। परफन्द में सुखकन्द–सुख मानता है। अग्नि की ज्वाला शरीर में लगने पर कहता है कि मुझमें ज्योति का प्रवेश होता है। यदि कोई अग्नि की लपट को बुझाए तो उसके साथ लड़ता है। इसप्रकार पर में दुःख संयोग है, कोई पर को बुझाए (तो वह) उसे शत्रु जैसी दृष्टि से देखता है, क्रोध करता है। उस पर–योग में भोग मानकर (यह जीव) भूला है, स्वरस की भावना को याद नहीं करता। चौरासी में परवस्तु को स्व (आपरूप) मानने से (यह जीव) चिरकाल का चोर ही बना है। जन्मादि दुःख–दण्ड प्राप्त करता है, तथापि परवस्तु की चोरी नहीं छूटती। देखो! देखो! तीनलोक का नाथ भूलकर नीच ऐसे पर के आधीन हुआ। अपनी भूल से अपनी निधि को न पहचानकर भिखारी बनकर फिरता है। निधि चेतना है, वह स्वयं (ही) है, दूर नहीं है, देखना दुर्लभ है, देखे तो सुलभ है।

किसी ने पूछा 'तू कौन है ?' उसने कहा मैं 'मुरदा (मरा हुआ) हूँ।' '(मुरदा है) तो बोलता कौन है ?' (उत्तर में) कहता

---

१. जैसे कोऊ कूकर छुधित सूके हाड चावै,
हाडनिकी कोर चहंओर चुभै मुख में;
गाल, तालु, रसना, मसूढनिको मांस फाटै,
चाटै निज रुधिर मगन स्वादन्मुख में;
तैसे मूढ विषयी पुरुष रति–रीति ठानै,
तामैं चित्त सानै हित मानैं खेद दुःख में;
देखै परतच्छ बलहानि मल–मूत खानि,
गहै न गिलानी पगि रहै रागरुख में॥३०॥ –नाटक समयसार बन्ध द्वार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है कि 'मैं नहीं जानता।' तो 'मैं मुरदा हूँ – ऐसा किसने जाना?' तब याद किया कि 'मैं जिन्दा हूँ।' उसीप्रकार यह (जीव) मानता है कि मैं शरीर हूँ। (शरीर है) तो इस शरीर में (अपनत्व की) जिसने मान्यता की वह कौन है ? तो कहता है कि मैं नहीं जानता। (तो मैं नहीं जानता) ऐसा बकवास किसने किया ? (इसप्रकार) यह अपने को खोजकर, देखने–जानने और परखने में स्वरूप की सम्भाल करे, तब सुखी होता है। जैसे कोई मदिरा पीकर उन्मत्त होकर पुरुषाकार पाषाणस्तम्भ को देखकर सच्चा जानकर उसके साथ लड़ा। वह ऊपर और आप नीचे स्वयं ही हुआ। उससे कहता है कि 'मैं हारा।' इसीप्रकार पर को स्व (आपरूप) मानकर स्वयं मान्यता से दु:खी हुआ। दु:खदाता दूसरा कोई नहीं है, तेरी भावना ने भव बनाए हैं। अनुत्पन्न को उत्पन्न किया है। (उत्पन्न नहीं था उसे उत्पन्न किया है)। अचेतन को चलाया, मरे हुए का जतन अनादि से करता है। मिथ्या मान्यता में (अचेतन को) अपने जैसा (चेतन जैसा) तू करता है, (परन्तु) कहीं तेरा किया हुआ जड़ चेतन नहीं हो सकता। तू ही ऐसी मिथ्या कल्पना से दु:ख पाता है। (ऐसा करने में) तुझे क्या लाभ है ? तू स्वयं ही नहीं विचारता (कि) मेरा फन्द मैं बनाता हूँ। (मेरे फन्द को मैं करता हूँ किन्तु) उससे (कोई) सिद्धि नहीं है। विचार के बिना अपनी निधि भूला, अनन्त चतुष्टयरूप अमृत मलिन किया। चेतना ! मेरा बनाया हुआ फन्द ऐसा है, (मानो) आकाश बाँध लिया! आश्चर्य होता है। किन्तु मात्र अविद्या ही होती तो तू आवृत नहीं हो जाता।

अविद्यारूप जड की अल्पशक्ति से तेरी महानशक्ति का घात

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं हो सकता। किन्तु, तेरी शुद्धशक्ति भी महान और तेरी अशुद्ध -शक्ति भी महान। तेरी चितवनी (दृष्टि) तेरे गले पड़ी। पर को देखकर अपने को भूल गया। अविद्या तेरी ही फैलायी है। तू अविद्यारूप कर्मों पर अपनापन न दे, तो कहीं जड़ का जोर नहीं है। इससे अपरम्पार शक्ति तेरी है। पर की भावना करके भव किए, संसार बढ़ाया। निज भावना से अविनाशी, अनुपम, अमल, अचल, परमपदरूप, आनन्दघन, अविकारी, सार, सत्, चिन्मय, चेतन, अरूपी एवं अजरामर परमात्मा को प्राप्त करता है। तो ऐसी भावना क्यों न करे ? 'यह' अपने स्वरूप में ही उच्च ऐसा सर्व-सकल पूज्यपद, परमधाम, अभिराम, आनन्द, अनन्त गुण, स्वसंवेदनरस, स्वानुभव, परमेश्वर, ज्योतिस्वरूप, अनुपम, देवाधिदेवपना इत्यादि सर्व प्राप्त करे। इसलिए अपना पद उपादेय[१] है और अन्य (सर्व) पर-पद हेय हैं। एकदेश मात्र निजावलोकन ऐसा है कि इन्द्रादि की सम्पदा विकाररूप भासती है। जिसकी प्राप्ति से अनन्त सन्त (उसका) सेवन करके अपने स्वरूप का अनुभव करके भवपार हुए। अतः अपने स्वरूप का सेवन करो।

श्री सर्वज्ञदेव ने सर्व उपदेश का मूल यह बतलाया है कि (यदि) एकबार स्वसंवेदनरस का आस्वादी हो तो ऐसे आनन्द में मग्न हो कि फिर पर की ओर कदापि दृष्टि न डाले। स्वरूप-समाधि (सो) सन्तों का चिन्ह है, उसके होने पर रागादि विकार नहीं होते, जिसप्रकार आकाश में फूल नहीं होते तदनुसार।

१. एकमेव हि तत्स्वाद्यं, विपदामपदं पदम्।
अपदान्येव भासन्ते, पदान्यन्यानि यत्पुरः॥१३९॥ -आचार्य अमृतचन्द्र
जो पद भौपद भय हरे, सो पद सेउ अनूप।
जिहि पद परसद और पद, लगै आपदारूप॥१७॥ -बनारसीदास

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देहाभ्यास का नाश अनुभव-प्रकाश, चैतन्यविलासरूप भाव को पहचाने, जो लक्ष्य-लक्षण लेखन में नहीं आ सकते; पहचानने से सुख होता है, लिखने से स्वादरूप नहीं होता। आत्मा सहित विश्व व्याख्येय, व्याख्या वाणी की रचना, व्याख्यान करनेवाला व्याख्याता (है)। यह सब बातें (कथन) जो भी हैं, वे मोह के विकार से मानते हैं। अनादि से (चली आ रही) आत्मा की आकुलता वह एक विशुद्ध बोधकला द्वारा मिटती है। इसलिए सहज बोधकला का निरन्तर अभ्यास करो। स्वरूपानन्दी होकर भवोदधि को पार करो।

नर-भव कहीं सदा तो रहता नहीं। साक्षात् मोक्ष-साधनरूप ज्ञानकला इस भव के सिवा अन्य किसी जगह उत्पन्न नहीं होती। इसलिए बारम्बार कहा जाता है कि – 'निजबोधकला के बल द्वारा निज-स्वरूप में रहो।' निरन्तर यही यत्न करो। ऐसा बारम्बार कहलाना तो बालक भी नहीं कराता। तुम (तो) अनन्त ज्ञान के धनी होकर, ऐसी भूल धारण करते हो, इससे बड़ा अचरज होता है! सो ऐसी अचरज की बात नहीं करना चाहिए। हाड़-चाम के जड़ शरीर में स्वपना मानने से बड़ी हानि है। अपने ज्ञान में सुख-समुद्र को पाकर अविनाशीपुरी का राजा होता है। अनन्त चैतन्यशक्तिरूप राजधानी का विलासी होता है। पर में अपनापन मानकर तू इसप्रकार दुःख प्राप्त कर रहा है कि जैसे मुरदे को वस्त्राभूषण पहिनाकर माने कि 'मैंने पहिने हैं।' तू जीवन्त होने पर भी उनको झूठ ही अपना मान रहा है। इसप्रकार शरीर जड़ है, उसके भागों को तू अपने मानकर व्यर्थ ही किसलिए जड़ की क्रिया को अपनी मान रहा है? जैसे साँप काटे किसी को और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विष किसी दूसरे को चढ़े तो अचरज मानते हैं। (वैसे ही) जड़ खाए, पिए, पहिने, स्नान, तेल-मर्दनादि क्रिया करे, (वहाँ) तू कहे कि 'मैंने खाया, मैंने भोग किया', (इसप्रकार) पर का स्वामी हुआ। सो पर का स्वामी भी ऐसा तो नहीं मानता। जैसे राजा दासों का स्वामी है। (तथापि) उनके तृप्त होने से (पाठान्तर:- नौकर भोजन से तृप्त होने से) राजा ऐसा नहीं कहता कि 'मैं तृप्त हुआ हूँ।' और तू देख, तेरी ऐसी चाल तुझे ही दुःखदायी है।

जो सुन्दर वस्तु हो उसे ऊपर से (ऊपर से देखकर, ऊपरी सुन्दरता से) अंगीकार नहीं करना। देह अशुचि, नवद्वारों से स्रवती[१] है; देखते ही ग्लानि (उपजती है), बाह्य में (उसका) रूप दिखता है तो सुन्दर, (परन्तु) भीतर खराबी भरी है। उसके भीतर विष्टा, मूत्र की खान (है)। (शरीर) नष्ट न होता हो तो ऐसा होने पर भी उसे अंगीकार करते। विनाशीक होने पर भी तुम्हें दुःखदायी न हो तो ऐसे (शरीर) के साथ तुम स्नेह करो, (किन्तु) जन्मादि दुःख भरते हो। तुम्हारे साथ यह जन्मादि अनादि से लगे आ रहे हैं। तुमने महान पुरुषों जैसी रीति का भाव किया है कि '(जो हमसे लगे हैं, उन्हें नहीं छोड़ना।' तुम महंत नहीं कहलाओगे। महंत तो पाप को मेटने से ही होते हैं। वह तो (शरीर तो) पाप का रूप है। इसलिए तुम समझो। अपने धन को अंगीकार करो, पराया धन चला जाता है तुम फिर उसे ग्रहण करते है, उसके दण्ड में भवदुःख सहते हो, तथापि पर को लेते-लेते (तुम) थके नहीं हो। बहुत दुःखी होने पर भी तुम पर-ग्रहण

---

१. पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादितैं मैली।
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करै किम यारी॥ -पं. दौलतरामजी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की बानि (आदत) नहीं छोड़ते। साहपद तो अपने धन से पाओगे, इसलिए स्व–पर के विवेकी बनकर आत्मधन को ग्रहण करो, पर का ममत्व स्वप्न में भी मत करो। तुम्हारे पास अखण्ड रत्नत्रयादि अनन्त गुणनिधान हैं, (तुम) दरिद्री नहीं हो। जो दरिद्री हो वह ऐसे काम करेगा।

श्रीगुरु ने तुम्हारा निधान तुम्हें दरशाया है। अब (उसे) सँभालकर सुखी होओ। जैसे किसी स्त्री ने अपने बिस्तर पर काष्ठ की पुतली को श्रृंगार कर सुला दिया। पति आया तब उसने ऐसा जाना कि मेरी स्त्री सो रही है। (उसने) आवाज दी (पुकारा) किन्तु बोली नहीं, तब पंखा झलने आदि से सारी रात उसकी सेवा–शुश्रूषा की। सवेरा होने पर ज्ञात हुआ कि मैंने व्यर्थ ही सेवा की। उसीप्रकार शरीर को आपरूप (आत्मा) मानकर सेवन करता है। ज्ञान होने पर ऐसा जानता है कि मैंने अनादिकाल से शरीर में अपनत्व झूठा ही माना था। हे चिदानन्द! तुम पाँच इन्द्रियरूपी चोर का पोषण कर रहे हो और जानते हो कि यह हमें सुख देता है, किन्तु यह अंतर के गुणरत्न को चुरा लेता है (उसकी) तुम्हें खबर नहीं है। अब तुम ज्ञानखड्ग सँभालो, चोरों को ऐसा रोको कि फिर बल न पकड़ें (जोर न करें)। विषय–कषाय को जीतकर निज रीति की राह में आओ और तुम शिवपुरी में पहुँचकर राज्य करो। तुम राजा, दर्शन–ज्ञान मंत्री राज्य के स्तंभ, गुण वह बस्ती, अनंत शक्तिरूप राजधानी का विलास करो। अभेद राज–राजित तुम्हारा पद है। अपावन 'अस्थिर' ऐसे अचेतन (शरीर) के साथ किसलिए स्नेह करते हो ?

भलीभाँति देखो। इस शरीर–मन्दिर में यह चेतनदीपक शाश्वत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। मन्दिर (शरीर) तो छूटता है, परन्तु शाश्वत रत्नदीपक ज्यों का त्यों रहता है। व्यवहार में तुम नट की भाँति अनेक स्वाँग धारण करते हो, नट तो ज्यों का त्यों रहता है। उसीप्रकार बद्ध एवं स्पृष्टभाव कर्म का है, तथापि (जीवद्रव्य) कमल-पत्र की भाँति कर्म से नहीं बँधता, स्पर्शित नहीं होता। जिसप्रकार मिट्टी अन्य-अन्य भाव (आकार) धारण करने पर भी एक है; उसीप्रकार (जीवद्रव्य) अन्य-अन्य पर्याय धारण करने पर भी एक है। जिसप्रकार समुद्र तरंगों द्वारा वृद्धि-हानि करता है, तथापि समुद्रपने[१] से निश्चल है; उसीप्रकार (जीवद्रव्य) विभाव द्वारा वृद्धि-हानि करता है, (किन्तु) वस्तु निज अचल है। जिसप्रकार सुवर्ण वानभेद होने पर भी अभेद है, उसीप्रकार कर्म से अनेक भेद होने पर भी वस्तु (चैतन्य) अभेद है; (जिसप्रकार) स्फटिकमणि पुरी (रंगीन वस्तु) से हरा, लाल भासित होता है; (तथापि) स्वभाव तो श्वेत है। पर वह पर है, निज चेतना में पर नहीं है। षड् भाव ऊपर-ऊपर ही रहते हैं, जल के ऊपर काई की भाँति। चिदानन्द! अपनी गुप्त शुद्धशक्ति को व्यक्तरूप से भाओ, जिससे वह व्यक्त हो। तू अविनाशीरस का सागर, पररस कैसे मीठा देखा ? जिसके

---

१. सिंधु में तरंग जैसे उपजै विलाय जाय,
    नानावत वृद्धिहानि जामैं यह पाइये।
  अपने स्वभाव सदा सागर सुथिर रहै,
    ताकौ व्यय उत्पाद कैसें ठहराइये।।
  तैसें परजाय माँहि होय उत्पाद-व्यय,
    चिदानन्द अचल अखण्ड सुधा पाइये।
  परम पदारथ में स्वारथ स्वरूप ही कौ,
    अविनाशी देव आप ज्ञानज्योति ध्याइये॥ - ज्ञानदर्पण-१८८

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निमित्त से संसार का चक्कर हुआ उसी को भला जानकर सेवन करते हो ? जैसे मदिरा पीनेवाला मदिरा पीता जाता है, दुःख पाता जाता है, अधिक चक्कर में भला जान-जानकर सेवन करता है; उसीप्रकार तू भला है।

जैसे कि एक नगर में एक पुरुष रहता है। नगर सूना है, वहाँ दूसरा कोई नहीं है। उस नगर में चौरासी लाख घर हैं। वहाँ वह पुरुष उन घरों को हमेशा सुधारता ही रहता है। फिर दूसरे दिन दूसरे में (अन्य घर में) रहे तब उसे सुधारता है। इसप्रकार उन भीतों को सुधारते-सुधारते सारा जीवन बीत गया। उसे सुधारने का रोग हुआ। जब से सुधारता था तब से रोग लगा था। वह अपनी परम चतुराई को भूला। उस पुरुष को बड़ी विपत्ति आ पड़ी कि बिना प्रयोजन के अकेला सूने घर में अपनी मेहनत-मजदूरी में वह लगा रहता है। स्वयं अनन्त बलवान होने पर भी वृथा भूलकर दुःख प्राप्त करता है। इस पुरुष का नगर तो एक परम वसतिका; वहाँ का वह राजा है। उसे सँभाले तो सूने घरों की सेवा छोड़ दे और वहाँ का राज्य करे। उसप्रकार यह चिदानन्द चौरासी लाख योनि के शरीरों को सजाता रहता है। जिस घर में रहे, निवास करे, उसे सजाता है, फिर दूसरी शरीर-झोपड़ी को सजाता है, फिर दूसरी मिलती है, उसे सँवारता फिरता है। सब शरीर जड़, उन जड़ों की सेवा करते-करते अनादिकाल बीता। इस शरीर-सेवा का कर्मरोग अनादि का लग रहा है, इस रोग के कारण अपना अनन्त बल क्षीणता को प्राप्त हुआ। जन्मादि की बड़ी विपत्ति भोगता है। जड़ को ऐसा मानता है कि (यह) मैं ही हूँ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसप्रकार[१] वृक्ष पर बैठा हुआ बन्दर (वृक्ष का) एक पत्ता खिरने पर रोता है। उसीप्रकार (यह भी) अपने शरीर का एक अंग भी कम हो वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार से रोता है। 'यह मेरे और मैं इनका' इसप्रकार झूठे ही ऐसे जड़ों की सेवा से सुख मानता है। अपनी शिवनगरी का राज्य भूला है, यदि श्रीगुरु के कहने से शिवपुरी को सँभाले तो वहाँ का स्वयं चेतनराजा अविनाशी राज्य करे। 'वहाँ चेतना बस्ती है, तीनलोक में आन वर्ते और भव का भ्रमण मिटकर फिर जग में न आए।' आनन्दधन को पाकर सदा शाश्वत सुख का भोक्ता हो, सो कहते हैं –

यह परमात्मपुरुष, उसकी निजपरिणति अनन्त महिमारूप परमेश्वरपद में रमण करनेवाली है। वही मूल प्रकृति पुरुष-प्रकृति के विवेकरूप वृक्ष, उसका निजानन्द फल, उसका तू रसास्वादन करके सुखी हो। जैसे किसी राजा को पराया गढ़ (किला) लेना कठिन है, वैसे ही इस आत्मा को परपद लेना कठिन है। किसलिए ? कि अनादिकाल से परपद लेता फिरता है, तथापि वह पररूप नहीं हुआ, चेतन ही रहा और चेतनापद आत्मा का है, उसे जानता भी नहीं है, भूला ही फिरता है, तथापि उसकी रहन (उसका रहना) निश्चय से उसी में है, इसलिए (वह) कठिन नहीं है, अपना स्वरूप ही है। भ्रम का परदा स्वयं ने ही अनादि से किया है, इसलिए स्वयं अपने को भासित नहीं होता, किन्तु स्वयं अपने को छोड़कर बाहर नहीं गया है।

जैसे नट ने पशु का वेश धारण किया उससे वह मनुष्य मनुष्यपने को छोड़कर बाहर नहीं गया है। पशु का वेश धारण

१. पाठान्तर :- जैसे वानर एक कांकरा के पड़े रोवे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

न करे तो मनुष्य ही है, (वैसे ही) भ्रम से पर का ममत्व न करे तो, देह का स्वाँग धारण न करे तो , चिदानन्द ज्यों का त्यों रहे। जैसे एक डिब्बी में रत्न रखा है (इससे) उसका कुछ बिगड़ा नहीं है (वह) गुप्त (है), ढक्कन दूर करके निकाले तो व्यक्त है, वैसे ही शरीर में छुपा हुआ आत्मा है, उसका कुछ बिगड़ा नहीं है, (वह) गुप्त है, कर्मरहित होने पर प्रकट होता है। गुप्त और प्रकट ये अवस्था भेद हैं, दोनों अवस्थाओं में स्वरूप ज्यों का त्यों है, ऐसा श्रद्धाभाव सुख का मूल है। जिसकी दृष्टि पदार्थ शुद्धि पर नहीं है, (और) कर्मदृष्टि से अशुद्ध अवलोके तो वह शुद्धता को प्राप्त नहीं होगा। जैसी दृष्टि से देखे वैसा फल होता है। मयूरमुकरन्द पाषाण है, उसमें सब मोर ही भासित होते हैं। पाषाण की ओर न देखने से मोर भासते हैं, पदार्थ की ओर देखने से पदार्थ ही हैं, मोर नहीं, उसीप्रकार पर में पर भासित होता है, निज की ओर देखे तो पर भासित नहीं होता, निज ही है। (इससे) सुखकारी निजदृष्टि छोड़कर दुःखरूप पर में दृष्टि नहीं देना।

हे चिदानन्दराम! अपने को अमररूप में देखो। मरण तुझमें नहीं है। जैसे - किसी के घर में चक्ररत्न, चौदहरत्न, नवनिधि हैं, तथापि वह दरिद्री होकर फिरता है। वह उसके अपने चक्रवर्ती पद के अवलोकन मात्र से चक्रवर्ती स्वयं होता है, वैसे ही स्वपद को परमेश्वररूप अवलोके तो (उसी क्षण) परमेश्वर है। देखो, देखो! (कितनी बड़ी) भूल! अवलोकन मात्र से परमेश्वर होता है!! ऐसा अवलोकन नहीं करता! इन्द्रियचोरों के वश होकर अपने निधान को लुटाकर दरिद्री होकर भवविपत्ति भरता है, भूल को नहीं मिटाता। ऐसे चिद्विकाररूप जीव हो, तब पर को अपने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रूप मानता है, वह भाव जीव का निजजातिस्वभाव नहीं है। उन भावों में जो चेतना व्याप्त हो रही है, उसी चेतना को एक तू जीव निजजातिस्वभाव जान। यह चेतना है वह केवल जीव है, वह अनादि-अनन्त एकरस है। इससे इस चेतना को साक्षात् स्वयं जीव जानना, इससे शुद्ध चेतनारूप जीव हुआ। इन रागादि भावों में स्वयं ही रत (लीन) होता हुआ जीव कर्मचेतनारूप होकर प्रवर्तता है। चेतना-जीवचेतना, चेतनारूप स्वयं विद्यमान है, (स्थित है)। कर्मचेतना, कर्मफलचेतना जीव चेतना का विकार है, परन्तु व्यापक चेतना है। चेतना जीव के बिना नहीं होती। चेतना शुद्ध जीव का स्वरूप है। उसे जानने पर ज्ञाता जीव का ऐसा भाव होता है -

अब मैंने शुद्ध चेतनारूप स्वरूप को जाना। ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप मैं हूँ। विकाररूप मैं नहीं हूँ। सिद्ध समान हूँ। बंध-मोक्ष-आस्रव-संवररूप मैं नहीं हूँ। मैं अब जागृत हुआ। मेरी निद्रा गई। मैं अपने स्वरूप को एक (अभेद) अनुभव करता हूँ। अब मैं संसार से भिन्न (पृथक्) हुआ। मैं स्वरूप गज पर आरूढ़ हुआ। (मैंने) स्वरूप-गृह में प्रवेश किया। इस संसार परिणाम का मैं प्रेक्षक हुआ। अब मैं स्वयं अपने स्वरूप को देखता-जानता हूँ। इतना विचार तो विकल्प है। ज्ञान के प्रत्यक्षरस का भाव में वेदन करना वह अनुभव है। ●

मैं नहीं पर का पर न मेरा एक ज्ञान स्वरूप मैं।।१९१॥
इस तरह मैं आत्मा को ज्ञान दर्शनमय अचल।।१९२॥
- प्रवचनसार, गाथा १९१, १९२ पृष्ठ-२८६-२८७

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साध्य-साधक अधिकार

प्रतीतिरूप विचार वह साधक है, अनुभव का भाव साध्य है। साधक-साध्य भेद को जाने तो वस्तु की सिद्धि हो, वह कहा जाता है –

एक क्षेत्रावगाही पुद्गलकर्म का सहज उदय, स्थिति तक रहता है, वह साधक अवस्था जानना। वहाँ, तब तक उसके रहने की स्थिति तक चिद्विकार होने का प्रवर्तन हो, उसे साध्य भेद जानना। साध्य-साधक (कार्य-कारण) के उदाहरण कहे जाते हैं –

मिथ्यात्व साधक, बहिरात्मा साध्य है। सम्यग्भाव साधक है, वहाँ वस्तुस्वभावजाति सिद्ध होना वह साध्य है। जहाँ शुद्धोपयोग-परिणति होना साधक है, वहाँ परमात्मा साध्य है। व्यवहाररत्नत्रय साधक है, वहाँ निश्चयरत्नत्रय साध्य है। जहाँ सम्यग्दृष्टि को विरतिव्यवहारपरिणति होना साधक है, वहाँ चारित्रशक्ति मुख्य होना साध्य है। जहाँ देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति, विनय, नमस्कारादि भाव साधक है, वहाँ विषय-कषायादि भावों से उदासीनतारूप मनपरिणति की स्थिरता साध्य है। जहाँ एक शुभोपयोगरूप-व्यवहारपरिणति होना साधक है, वहाँ परम्परा मोक्ष साध्य है।

जहाँ अन्तरात्मारूप जीवद्रव्य साधक है, वहाँ परमात्मारूप अभेद जीवद्रव्य स्वयं ही साध्य है। जहाँ ज्ञानादिगुण मोक्षमार्गरूप से साधक हैं, वहाँ अभेद ज्ञानादि गुण स्वयं ही मोक्षरूप से साध्य हैं। जहाँ जघन्य ज्ञानादिभाव साधक हैं, वहाँ अभेद स्वयं ही उन्हीं ज्ञानादि गुणों का उत्कृष्ट भाव साध्य है। जहाँ ज्ञानादि अल्पनिश्चय-परिणति से साधक हैं, वहाँ अभेद स्वयं ही बहुनिश्चयपरिणतिरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानादिगुण साध्य हैं। जहाँ सम्यक्त्वीजीव साधक है, वहाँ उस जीव को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र साध्य हैं। जहाँ गुणमोक्ष साधक है, वहाँ द्रव्यमोक्ष साध्य है। जहाँ क्षपकश्रेणी में चढ़ना साधक है, वहाँ तद्भव साक्षात् मोक्ष साध्य हैं। जहाँ[१] द्रव्य से, भाव से (हुआ) यतिव्यवहार साधक है, वहाँ साक्षात् मोक्ष साध्य है। जहाँ भावमनादि रीति का विलय साधक है, वहाँ केवल साक्षात् परमात्मारूप होना साध्य है। जहाँ पौद्गलिक कर्म का खिरना साधक है वहाँ चिद्विकार का विलय होना साध्य है।

जहाँ परमाणुमात्र परिग्रहप्रपंच साधक है, वहाँ ममताभाव साध्य है। जहाँ मिथ्यादृष्टि होना साधक है, वहाँ संसार-भ्रमण होना साध्य है। जहाँ सम्यग्दृष्टि होना साधक है, वहाँ मोक्षपद होना साध्य है। जहाँ काललब्धि साधक है, वहाँ द्रव्य का वैसा ही भाव होना साध्य है।

मैंने स्वभावसाधन द्वारा अपने स्वरूप को साध्य किया है। इस साध्य-साधकभाव को जानने पर सहज ही साध्य सधता है। इसका विशेष वर्णन करते हैं -

मैं मनुष्य, मैं देव, मैं नारकी, मैं तिर्यंच, यह शरीर मेरा है, (इसप्रकार) पर में निजभाव, पर को अपनेरूप मानना, स्वरूप से बाह्य पर-पदार्थों में परिणाम तन्मय करना, रागभाव से रंजकता करके पर के स्वरूप को अपनेरूप प्रतीति करके जानना, ऐसा मिथ्यात्व, मिथ्यात्व के दूसरे भेद को (गृहीत मिथ्यात्व को) साधता है। ऐसे मिथ्यात्व को (किस प्रकार) साधता है, सो कहते हैं -

१. पाठान्तर :- इस पंक्ति की जगह 'द्रव्यतैं भावतैं साक्षात् द्वैत' ऐसा पाठ है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अतत्त्वश्रद्धान सो मिथ्यादर्शन, अयथार्थ ज्ञान सो मिथ्याज्ञान, अयथार्थ आचरण सो मिथ्याचारित्र। तारणबुद्धि से क्षुधादि अठारह[१] दोष सहित देव की भक्ति करने से गृहीत मिथ्यात्व होता है। काहे से ? कि – (वह) परानुभवी है–मिथ्यात्व लीन है, उनका सेवन करने से (गृहीत) मिथ्यात्व होता है। ऐसे दोष सहित ग्रन्थलीन (परिग्रहलीन), विषयारूढ़, परबुद्धि धारक को गुरु मानने से (गृहीत) मिथ्यात्व (होता है)। मिथ्याशास्त्र, मिथ्यामत, मिथ्याधर्म, उन्हें मानने से (गृहीत) मिथ्यात्व (होता है)। वह मिथ्यात्व बहिरात्मा का साधक है, इस मिथ्यात्व सेवन से अनादि का (जीव) बहिरात्मा हुआ है, इससे बहिरात्मा साध्य है।

दूसरा, सम्यक्भाव साधक है; वह वस्तु का जो स्वभाव अनंतगुण उसकी सिद्धि करता है। काहे से ? कि – सर्व गुण यथा विधिस्वरूप जब अपने सम्यक् स्वरूप को धारण करते हैं तब सम्यक्भाव सहित होता है। ज्ञान का निर्विकल्प जानपना सर्व आवरण रहित, केवलज्ञानरूप, सम्यक् अवस्थारूप सो सम्यग्ज्ञान कहिए। इसप्रकार आवरणरहित, शुद्ध सम्यक्रूप, यथावत् निश्चयभावरूप निर्विकल्प सर्व गुणों को सम्यक् कहते हैं।

द्रव्य अपने द्रव्यत्व जैसा शुद्धस्वरूप है, उस सहित (है)। पर्याय (अपना) जैसा कुछ परिणमनरूप स्वभाव है, (वह) उस सहित (है)। इसीप्रकार सर्व द्रव्य–गुण–पर्याय का स्वभावजाति सिद्ध होना सो सम्यक्भाव से है। इसलिए सम्यग्भाव साधक है,

१. जन्म जरा तिरखा (तृषा) क्षुधा, विस्मय आरत खेद,
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिंता स्वेद।
रागद्वेष अरु मरण जुत, ये अष्टादश दोष,
नहीं होत अरहंत के, सो छबि लायक मोख॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तुस्वभावजाति सिद्ध होना वह साध्य है। शुद्धोपयोग-परिणति साधक है, परमात्मा साध्य है। वह कैसे ? कि – स्वभावसंग से शुद्धोपयोग होता है। ज्ञान-दर्शन तो साधक हैं, इसलिए शुद्धोपयोग, चारित्ररूप शुद्धोपयोग सर्वरूप है। वे ज्ञान-दर्शन तो साधक हैं, इससे सर्वरूप शुद्ध नहीं हैं, कुछेक शक्तियों द्वारा शुद्ध हैं, परन्तु तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में परम यथाख्यात का नाम प्राप्त करता है। इसलिए कुछ ज्ञानशक्ति शुद्ध हुयी, उस ज्ञानशक्ति से केवलज्ञान-रूप, गुप्त, निजरूप उसे प्रतीति में व्यक्त करे, तब परिणति ने केवलज्ञान की प्रतीति-रुचि-श्रद्धाभाव करके निश्चय किया। गुप्त के व्यक्त (प्रत्यक्ष) श्रद्धान से (वह) व्यक्त हो जाता है।

एकदेश स्वरूप में शुद्धत्व सर्वदेश को साधता है। शुद्धनिश्चय नय से शुद्धस्वरूप जाना, परिणति में शुद्धनिश्चयनय हुआ, तब वैसा ही वेदन (अनुभव) किया। शुद्ध का निश्चय, शुद्धपरमात्मा का कारण है, इसलिए शुद्धोपयोग साधक, परमात्मा साध्य है। व्यवहाररत्नत्रय साधक है, निश्चय साध्य है। वह किसप्रकार ? तत्त्वश्रद्धान में पर का हेय श्रद्धान और निजतत्त्व का उपादेय श्रद्धान है। तत्त्वज्ञान में परतत्त्व का रूप हेय जाना, निजतत्त्व को उपादेय जाना। भवभोगादि विरति कार्यकारी जानी, सम्यक्त्वाचरण रीति उपादेय जानी। ऐसे व्यवहारतत्त्व से प्राप्त विचार हेय-उपादेय के सम्यग्भेद सहित होते हैं। यह व्यवहार होने पर मन-इन्द्रिय-उपयोग का निरोध करके निज सम्यक्स्वरूप को शुद्ध अनुभव करे। सिद्धसमान निजस्वरूप का श्रद्धान करे। साततत्त्वों को मेल नहीं है। निज शुद्धतत्त्व अनुभवगोचर करे। निश्चय से श्रद्धान में अपना परमात्मा शुद्ध है। निश्चय से ज्ञान, परमात्मा का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जानना केवलज्ञान-जाति से जानता है; अल्प सम्यग्ज्ञान से सम्पूर्ण सम्यग्ज्ञान को (अपनी) प्रतीति में जानता है। स्वसंवेदन में जातिरूप से अपना स्वरूप केवलज्ञान में बराबर जाना। अल्पज्ञान में बहुत ज्ञान की प्रतीति आयी। निश्चय से स्वरूप जाना। उस निश्चयज्ञान-परिणति से स्वरूप में आचरण करना सो स्वरूपाचरण है। परमात्मा का श्रद्धान-ज्ञान, निश्चय से कुछेक ज्ञानादि शुद्ध शक्तियों से हुआ, तदनुसार ही आचरण हुआ। (साधन में साध्य के उपचार से) निश्चयनय परमात्मा है। परिणति वैसी ही निश्चयरूप परिणमित हुयी है। वह निश्चयरत्नत्रय प्रथम व्यवहार-रत्नत्रय होने पर होता है। इसलिए व्यवहाररत्नत्रय साधक है, निश्चयरत्नत्रय साध्य है। सम्यग्दृष्टि के विरतिव्यवहारपरिणति साधक है, वहाँ चारित्रशक्ति मुख्य साध्य है। वह कहा जाता है – विरतिपरिणति अर्थात् रति न होना। उसका भेद विषयों में रति नहीं, कषायों में रति नहीं, अशुभाचरण का त्याग, शुभाचरण में भी रति नहीं, कर्म-क्रियाओं में भी रति नहीं। ज्यों-ज्यों पर-रतिभाव छोड़े त्यों-त्यों स्वरूप में स्थिरता, विश्राम और आचरण होता है, वहाँ चारित्र कहते हैं। परिणति शुद्धता प्रकट होने पर चारित्रशक्ति मुख्य साध्य है।

देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति-विनय-नमस्कारादि भाव साधक हैं, वहाँ विषयादि से उदासीनता में परिणति की स्थिरता (होना वह) साध्य है। देवभक्ति व्यक्तशुद्धचेतनारूप प्रकट अनन्तगुणरूप, ऐसे व्यक्त परमात्मा, उनकी पूजा, सेवा, (उनके प्रति) मन से परिपूर्ण प्रीति, बाह्य प्रभावना, अन्तरंग ध्यान, गुण वर्णन, अवज्ञा-अभाव, परम उत्साह, मन-वचन-काय-धन सर्व भक्ति के निमित्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से लगाए और अपने प्राण से (अधिक) प्रिय जाने, प्राण को दु:खमूल जाने, उसे अनन्त सुख का कारण जाने, शुद्धस्वरूप जानकर भक्ति करे, स्वयं शुद्धस्वरूप का अभिलाषी होने से उनकी भक्ति रुचि-श्रद्धा-प्रतीति से करे। शास्त्र की भक्ति करे। किसलिए? कि – अपना स्वरूप शास्त्र से प्राप्त करता है। संसारदु:ख की हानि स्वरूप भावना से होती है, उसे प्राप्त करे। स्व-पर विवेक ग्रन्थों से प्रकट होता है। मोक्षमार्ग, मोक्षस्वरूप वाणी से समझ में आता है, इसलिए शास्त्रभक्ति कही है। गुरु मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं। ऐसे श्रीगुरु सर्वदोष रहित, उनकी भक्ति कही है। उनकी भक्ति मुक्ति का कारण जानकर करे। तब भवभोग से उदास होकर मन स्वरूप की ही स्थिरता चाहे, क्रिया साधे; इसलिए उनकी भक्ति साधक है, मन की स्थिरता साध्य है।

शुभोपयोग के तीन भेद हैं – क्रियारूप, भक्तिरूप और गुणगुणी के भेद-विचाररूप। इन तीनों के सातिशयसहित और निरतिशय सहित छह भेद हुए। सम्यक्त्व-सहित तो तीनों सातिशय, सम्यक्त्व बिना तीनों निरतिशय। सम्यक्त्व-सहित में तो नियम है कि वह परम्परा मोक्ष करता ही करता है। सम्यक्त्व-रहित शुभोपयोग संसारसुख देता है, देवपद देता है अथवा राजपद देता है, वहाँ देव-शास्त्र-गुरु का निमित्त हो उसे लाभ होना हो तो होता है, नहीं तो नहीं होता। कार्य-कारण बिना नियम है, ऐसी रीति जानना। इसप्रकार शुभोपयोग साधक है, परम्परा मोक्ष साध्य है।

अन्तरात्मा भेदज्ञानद्वारा पर से भिन्न निजरूप को जानता है। सिद्ध-समान प्रतीति ज्ञानगोचर करे, तब स्वयमेव साधक है, निश्चयनय से अभेद परमात्मा साध्य है। जहाँ ज्ञानादि मोक्षमार्ग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थात् शुद्धोपयोगरूप एकदेश स्वसंवेदन, वहाँ मोक्षस्वरूप अभेद ज्ञानमूर्ति आत्मा को साधता है, इसलिए अभेदज्ञान मोक्षरूप साध्य है। जघन्य ज्ञान से उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिए, जघन्यज्ञान साधक, उत्कृष्टज्ञान साध्य है। जहाँ अल्पज्ञानादि से निश्चय करे वहाँ वह निश्चय बढ़ता है। जिसप्रकार अल्प अमल से, (उसे) चाहकर लीन होने से, अमल बहुत चढ़ता है, वैसे ही अति निश्चयपरिणतिरूप ज्ञानादि गुणों में वृद्धि हो वह साध्य है। सम्यक्त्वी जीव दर्शन-ज्ञान-चारित्र को साधता है, इसलिए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र साध्य है, सम्यक्त्वी साधक है। सम्यक्त्व (सम्यक्) ज्ञानादिभाव शुद्ध होने से जब द्रव्यकर्म मिटे, तब द्रव्यमोक्ष होता है, इसलिए गुणमोक्ष साधक है, द्रव्यमोक्ष साध्य है। क्षपकश्रेणी में चढ़े तो तद्भव मोक्ष होता है, इसलिए क्षपकश्रेणी चढ़ना साधक है और तद्भव मोक्ष साध्य है। द्रव्य से (द्रव्य) लिंग हो और भाव से स्वरूपभाव का भाव हो, तब साक्षात् मोक्ष साधता है; इसलिए द्रव्य से, भाव से हुआ यति-व्यवहार साधक है, वहाँ साक्षात् मोक्ष साध्य है। भाव-मन का विकार विलय होने पर साक्षात् मोक्ष होता है, इसलिए भाव-मनादि रीति का विलय साधक है, साक्षात् मोक्षरूप साध्य है।

जहाँ पौद्गलिक कर्म खिरना साधक है, काहे से ? कि, पौद्गलिक कर्मविपाक आने पर मनोविकार उपजता है, जब पुद्गल ही खिर जाता है, तब मनोविकार कहाँ से रहेगा ? इसलिए मनोविकार का विलय होना साध्य है, कर्म का खिरना साधक है। यदि परमाणुमात्र भी परिग्रह हो तो ममताभाव होगा और होगा ही, अतः परमाणुमात्र परिग्रह साधक है, ममताभाव साध्य है। मिथ्यात्व

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से संसारभ्रमण होता है इसलिए मिथ्यात्व साधक है, संसारभ्रमण साध्य है। सम्यक्त्व होने पर मोक्ष होता है, इसलिए सम्यक्त्व साधक है, मोक्ष होना साध्य है। जैसी काललब्धि आए वैसी ही स्वभावसिद्धि होती है, इसलिए काललब्धि साधक है, वैसा ही स्वभाव होना साध्य है। साधक-साध्य भेद अनेक हैं, उन्हें जानना।

शब्द साधक है, अर्थ साध्य है। अर्थ साधक है, ज्ञानरस साध्य है। स्थिरता साधक है, ध्यान साध्य है। ध्यान साधक है, कर्मों का खिरना साध्य है। कर्म-खिरना साधक है, द्रव्यमोक्ष साध्य है। राग-द्वेष मोह का अभाव साधक है, संसार-अभाव साध्य है। धर्म साधक है, परमपद साध्य है। स्वविचार प्रतीतिरूप साधक है, अनाकुलभाव साध्य है। समाधि साधक है, निजशुद्ध-स्वरूप साध्य है। स्याद्वाद साधक है, यथार्थ पदार्थ की साधना साध्य है। भलीभावना साधक है, विशुद्ध ज्ञानकला साध्य है। विशुद्ध ज्ञानकला साधक है, निजपरमात्मा साध्य है। विवेक साधक है, कार्य साध्य है। धर्मध्यान साधक है, शुक्लध्यान साध्य है। शुक्लध्यान साधक है, साक्षात् मोक्ष साध्य है। वीतरागभाव साधक है, कर्म-अबन्ध (कर्म का बन्ध न होना वह) साध्य है। संवर साधक है, निर्जरा साध्य है। निर्जरा साधक है, मोक्ष साध्य है। चिद्विकार अभाव साधक है शुद्धोपयोग साध्य है। द्रव्यश्रुत का सम्यक् अवगाहन साधक है, भावश्रुत साध्य है। भावश्रुत साधक है, केवलज्ञान साध्य है। चेतन में चित्त को लीन करना साधक है, अनुभव साध्य है। अनुभव साधक है, मोक्ष साध्य है। नयभंगी साधक है, प्रमाणभंगी साध्य है। प्रमाणभंगी साधक है, वस्तुसिद्धि करना वह साध्य है। शास्त्र का सम्यग्-अवगाहन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साधक है, श्रद्धागुणज्ञता साध्य है। श्रद्धागुण साधक है, परमार्थ प्राप्त करना वह साध्य है। यतिजनसेवा साधक है, आत्महित साध्य है। विनय साधक है, विद्यालाभ साध्य है। तत्त्वश्रद्धान साधक है, निश्चय-सम्यक्त्व साध्य है। देव शास्त्र-गुरु की प्रतीति साधक है, तत्त्व प्राप्त करना वह साध्य है। तत्त्वामृत-पान करना साधक है, संसार-खेद मिटना साध्य है। मोक्षमार्ग साधक है, संसार-खेद मिटना साध्य है।

मोक्षमार्ग साधक है, मोक्ष साध्य है। ध्यान साधक है, मनोविकार विलय (होना) साध्य है। ध्यानाभ्यास साधक है, ध्यानसिद्धि साध्य है। सूत्रतात्पर्य साधक है, शास्त्रतात्पर्य साध्य है। नियम साधक है, निश्चयपद को प्राप्त करना वह साध्य है। नय, प्रमाण, निक्षेप साधक है, न्यायस्थापना (न्याय को स्थापित करना वह) साध्य है। सम्यक्प्रकार से हेय-उपादेय को जानना साधक है, निर्विकल्प निजरस पीना वह साध्य है। परवस्तु से विरक्तपना साधक है, निजवस्तु की प्राप्ति साध्य है। पर-दया साधक है, व्यवहारधर्म साध्य है। स्व-दया साधक है, निजधर्म साध्य है। संवेगादि आठ गुण साधक हैं, सम्यक्त्व साध्य है। चेतनभावना साधक है, सहजसुख साध्य है; प्राणायाम साधक है, मनोवशीकरण साध्य है। धारणा साधक है, ध्यान साध्य है। ध्यान साधक है, समाधि साध्य है। आत्मरुचि साधक है, अखण्डसुख साध्य है। नय साधक है, अनेकान्त साध्य है। प्रमाण साधक है, वस्तु को प्रसिद्ध करना वह साध्य है। वस्तु ग्रहण साधक है, सकलकार्य सामर्थ्य साध्य है। पर-परिणति साधक है, भवदुःख साध्य है। निज-परिणति साधक है, स्वरूपानन्द साध्य है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार साधक-साध्य के अनेक भेद जानकर निज अनुभव करो। यह सब स्वरूपानन्द प्राप्त करने के लिए बतलाया है। कर्म कल्पना कल्पित[1] है। आत्मा सहज अनादिसिद्ध है, अनन्त सुखरूप है, अनन्त गुणमहिमा को धारण करता है। वीतरागभावना से शुद्धोपयोग को धारण करके, स्वरूपसमाधि में लीन होकर, स्वसंवेदन ज्ञानपरिणति द्वारा परमात्मा प्रकट करो।

कोई कहेगा कि आज के समय में निजस्वरूप[2] की प्राप्ति कठिन है, (क्योंकि) परिग्रहवन्त[3] तो बहिरात्मा है, इसलिए

---

1. शुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दौर।
   मुक्ति-पन्थ साधन यहै, वागजाल सब और॥
   – श्री पं. बनारसीदासजी कृत नाटक समयसार
2. पाठान्तर :- 'निजस्वरूप की प्राप्ति कठिन है।' उसके बदले 'स्वरूप कठिन है' ऐसा पाठ है।
3. बाह्य परिग्रह चाहे थोड़ा या बहुत कितना ही क्यों न रहे, किन्तु उसमें विशेषता, ममत्व, मूर्च्छा गृद्धता या अत्यासक्ति की है। जो जितना ममत्वपरिणाम-वाला होगा वह उतना ही अधिक परिग्रही है, किन्तु (चारित्र अपेक्षा से भेदज्ञानी) जितना ममत्व कम करेगा उतना अपरिग्रही है। भरत चक्रवर्ती छह खण्ड की विभूति के धारक थे, किन्तु वे उसके स्वामी नहीं थे। उसे वे कर्मोदय का विपाक समझते थे, इस कारण वे उस परिग्रह में रहने पर भी नाममात्र के परिग्रही थे। किन्तु जो बाह्य में दरिद्री हैं और अन्तरंग में अत्यन्त मूर्च्छा से युक्त हैं वे बाह्य सामग्री के संचय बिना भी बहु परिग्रही हैं।
   पुनश्च, बाह्य परिग्रह चाहे जितना क्यों न रहे, ज्ञानी जीव उसे अपना नहीं मानते, इससे वे बलजबरी से या जबरन किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सकते। परन्तु जब अपने ही परिणाम बिगाड़े तभी बाह्यवस्तु को निमित्तकारण कहा जाता है। इससे मात्र बाह्यवस्तु को दोष देना उचित नहीं है। अपनी सराग परिणति घातक है और बन्ध करती है। पं. बनारसीदास जी ने ठीक कहा है कि – ज्ञानी ज्ञान मगन रहे, रागादिक मल खोय।
   चित्त उदास करणी करे, करम बन्ध नहिं होय॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(ऐसा कहने से उसने) स्वरूप प्राप्त करने की रुचि मिटा दी। (पाठान्तर:- ऐसा कहनेवाला स्वरूप प्राप्त करने की चाह मिटाने-वाला बहिरात्मा है।) किन्तु आज से अधिक परिग्रह चतुर्थकालवर्ती महापुण्यवान नर चक्रवर्ती आदि के था, तब इसे तो अल्प है। वह परिग्रह कहीं जोरावरी से (बलजबरी से) इसके परिणामों में नहीं आता। यह स्वयं ही दौड़-दौड़कर परिग्रह में फँसता है। जब काम न हो तब विकथा करता है, उस समय स्वरूप के परिणाम करे तो कौन रोकता है ? परपरिणाम सुगम, निजपरिणाम विषम बतलाता है। देखो, आश्चर्य की बात है कि देखता है, जानता है तथापि देखा नहीं जाता, जाना नहीं जाता, ऐसा कहते हुए लज्जा भी नहीं आती! संसार-चातुरी में चतुर, अपने को जानने में शठ, ऐसी हठ धृष्टता से पकड़-पकड़कर पररत-व्यसन में गाढ़ हुआ है। स्वभावबुद्धि को भूलकर, भारी भव बाँधकर (अन्ध होकर) अन्धाधुन्ध दौड़ा, अपने को न पहचाना। अब श्रीगुरु प्रताप से सत्संग प्राप्त करो, जिससे भवताप मिटे, अपने को अपने में ही प्राप्त करे, ज्ञानलक्षण से पहचाने, अपना चिंतवन धारण करे, निजपरिणति बढ़ाए, निज में लौ लगाए, सहज स्वरस को प्राप्त करे, कर्मबन्धन को मिटाए, निज में निजपरिणतिभाव लगाए, श्रेष्ठ चिद् गुणपर्याय को ध्याए, तब हर्ष पाए, मनविश्राम आये; जो स्वरसास्वाद को पाए (उसे) निजानुभव कहा जाता है। उसे दूर का कौन बतलाए ? (पुनश्च) भवभ्रमण घटाए, स्वयं अलख को पहचाने, चिदानन्द को दरशाए, अविनाशीरस प्राप्त करे, जिसका यश भव्यजीव गाते हैं, जिसकी अपार महिमा है। (जिसे) जानने से भवभार मिटता है। ऐसे महा अविकार समयसार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को[१] जान लेना।

जिओ सदैव, करो ऐसा कि जिससे वह (आत्मा) (आत्मा का) द्रोही न हो। जिनागम में ऐसी बात कही है कि स्वयं के अवलोकन से शुद्ध उपयोग होता है। परका वियोग भाने से सहज पहचाना जाता है। तीनलोक का नाथ विख्यात है। निज अनुरागपूर्वक वीतरागभाव को धारण करो। यह दाव पाया है, पुनः (ऐसा) उपाय नहीं मिलेगा, इसलिए जिससे भवफन्द मिटे ऐसा भाव धारण करो; अतः मान-स्तंभ को मिटाकर, मायाजाल को जलाकर, क्रोधाग्नि को बुझाकर, लोभलहरियों को मिटाकर, विषयभावना को न भाकर चिदानन्दराय पद को देखो! देखो! स्वयं अपने को गवेषो (खोजो)! पर-वेदन का उच्छेदन करके, सहजभाव धरके, अन्तर्वेदी होकर, आनन्दधारा को निहारकर, निश्चयरूप परमात्मा को देखो!

इस परिणतिरूप नारी से ललचाकर, कुमति सखी के संग से गति-गति में डोलता हुआ, निजपरिणति रानी के वियोग से महा दुःखी हुआ। अब निजपरिणति (त्रिया) के संग अतीन्द्रिय भोग भोगो, जहाँ सहज अविनाशी रस बरसता है। (पान की) पीक

---

१. आतम दरब जाकौ कारण सदैव महा,
    ऐसौ निजचेतन में भाव अविकारी है।
ताही की धरणहारी जीव की सकति ऐसी,
    तासौं जीव जीवैं तिहुँकाल गुणधारी है।
द्रव्य गुण पर्याय से तो जीव दशा सब,
    इनही में वस्तु जीव जीवनता सारी है।
सबकौ आधार सार महिमा अपार जाकी,
    जीवन सकति 'दीप' जीव सुखकारी है॥५९॥ - ज्ञानदर्पण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में[१] पद्मरागमणि की कल्पना करके वृथा ही आनन्द मानते हो, इसप्रकार पर में निजभाव[२] की कल्पना करते हो, वह झूठमूठ ही लालसा पूर्ण करने जाते हो, सो वह नहीं होगी। आकाश में एक देव है, उसके हाथ में चिन्तामणि है, उसके प्रतिबिम्ब को अपने बर्तन के जल में देखकर (स्वयं) मन में विचारे कि 'मेरे पास चिन्तामणि है।' उसके विश्वास से पर का लाखों का देना किया, उससे क्या सिद्धि है ? झूठी कल्पना तुम्हें ही दुःखदायी है। सच्चा चिन्तामणि अपने घर में है, उसे तो देखा नहीं और (इस ओर) प्रतिबिम्ब में से कुछ (चिन्तामणि) हाथ नहीं आएगा। अति खेद करते हो, उसमें क्या बड़ाई है? अब अपना सच्चा अखण्डपद देखो! ब्रम्हसरोवर आनन्दसुधारस से पूर्ण है, जिसका सुधारस पीने से अमर हुआ जाता है, वह रस पीओ!

---

१. कफ के रोगी ने पान खाकर थूका हो, उसे देखकर चन्द्रमा के प्रकाश में किसी को ऐसा भ्रम हो कि यह लाल मणि है।

२. ज्ञान उपयोग योग जाकौ न बियोग हुवौ,
    निहचै निहारै एक तिहूँ लोक भूप है।
चेतन अनन्तरूप सासतौ बिराजमान,
    गति गति भ्रम्यो तोऊ अमल अनूप है॥
जैसें मणिमाँहिं कोऊ काँचखण्ड मानै तोऊ,
    महिमा न जाय वामैं वाही को सरूप है।
ऐसैं ही सम्भारिकै सरूपकौ विचार्यों मैं,
    अनादि को अखण्ड मेरो चिदानन्द रूप है॥३०॥ - ज्ञानदर्पण

> यह जान जो शुद्धात्मा ध्यावे सदा परमात्म को॥१९४॥
> हत मोह ग्रन्थि राग-द्वेष विनाश कर श्रामण्य में॥१९५॥
> जो मोह कलुष विहीन विषय विरक्त रोधक चित्त का॥१९६॥
> **- प्रवचनसार, गाथा १९४, १९५, १९६, पृष्ठ-२९०-९१-९२**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुभववर्णन

पौद्गलिक कर्म से ही पाँच इन्द्रिय और छट्ठा मनरूप संज्ञी देह बना है। उस देह में उसके प्रमाण में विद्यमान जीवद्रव्य भी इन्द्रिय और मनसंज्ञा का नाम प्राप्त करता है। भावइन्द्रिय, भावमन – ऐसे छहप्रकार के उपयोग परिणाम के भी भेद हुए हैं। एक-एक उपयोग परिणाम एक को ही देखता, जानता[१] है। मन उपयोग परिणाम चिन्ता-विकल्प को देखता, जानता है। परिणामविचार विकल्प-चिन्तारूप मानना होता है। ऐसा होने से उस परिणाम भेद को 'मन' नाम कहा है। देखो, संत! अब इसे एक ज्ञान का नाम लेकर कथन करता हूँ। उस ज्ञान के कथन से दर्शनादि सर्वगुण आ गए। इन मन-इन्द्रिय भेदों के ज्ञान की पर्याय का नाम 'मति' संज्ञा है। मन, भेदज्ञान से (विशेषज्ञान से) अर्थ से अर्थान्तर विशेष को जानता है, उस जानने को 'श्रुत' संज्ञा कहते हैं। वे दोनों ज्ञानपर्यायें (दो प्रकार से) कुरूप (विपरीतरूप) (और) सम्यक्‌रूप हैं।

मिथ्यात्वी को मति-श्रुतरूप जानना है, उस जानने में स्व-पर व्यापक-अव्यापक की जाति नहीं है। उस ज्ञेय को अपनेरूप जाने अथवा जाने भी नहीं। मिथ्यात्वी के जानने में कुरूपता-विपरीतता है। सम्यग्दृष्टि पर को पर जानता है, स्व को स्व जानता है। मिथ्यात्वी चारित्र में पर को निजरूप अवलम्बता है। (जबकि) सम्यग्दृष्टि निज को निजरूप अवलम्बता है। सम्यक्ता (सम्यक्त्व) सविकल्प-निर्विकल्परूप से दो प्रकार से है।

१. इसका विस्तृत विवेचन आत्मावलोकन के 'अनुभव विवरण' के प्रकरण में देखना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जघन्यज्ञानी उस परज्ञेय को अव्यापक पररूपत्व से जानकर, अपने को जाननरूप से व्यापक जाने वह तो सविकल्प सम्यक्ता है। दूसरे, जो स्वयं अपने को ही जाननरूप से अपने को ही व्यापक-व्यापक जानता रहे, वह निर्विकल्परूप सम्यक्ता है और जो एक बार एक ही समय में (स्व) स्व को सर्वस्वरूप से जाने तथा सर्व पर को पररूप से जाने वहाँ चारित्र परम शुद्ध है, उस सम्यक्ता को परम-सर्वथा सम्यक्त्वता कहते हैं। वह केवल-दर्शन-ज्ञान पर्याय में होता है।

तथा जिस ज्ञेय के प्रति उपयोग लगाए, उसी को जाने, अन्य को न जाने। मिथ्यात्वी का या सम्यग्दृष्टि का ज्ञेयप्रयुञ्जन ज्ञान तो एक समान है, परन्तु भेद इतना ही है कि मिथ्यात्वी जितना जाने उतना अयथार्थरूप साधता है और सम्यग्दृष्टि उसी भाव को जाने उन सबको यथार्थरूप साधता है; अतः उस सम्यग्दृष्टि के चारित्र के अशुद्धपरिणाम से बन्धन नहीं हो सकता। उन उपयोग-परिणामों ने बन्ध-आस्रवरूप अशुद्धपरिणाम की शक्ति को रोक रखी है, इसलिए वह निरास्रव-निर्बन्ध है और सर्व एक अपने को ही स्वयं चित्त वस्तु व्यापक-व्याप्यता से स्वयमेव प्रत्यक्ष देखने-जानने लगे और उस चारित्रपरिणाम निजउपयोगमय चित्त वस्तु में स्थिरीभूत शुद्ध वीतराग मग्नरूप प्रवर्ते, उसी को चारित्र-परिणामजन्य निजार्थ (निजानन्द) होता है। इसप्रकार सम्यग्दृष्टि के दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित परिणाम निजचित्तवस्तु को ही व्याप्य-व्यापकरूप देखते हुए, जानते हुए, आचरते हुए निजस्वाद लेते हैं। उस निजस्वाददशा का नाम स्वानुभव[१] कहा जाता है।

१. वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावै विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजैं, अनुभव याकौ नाम॥१७॥ - समयसार नाटक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वानुभव होने पर निर्विकल्प सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। (उसे) स्वानुभव कहो या कोई निर्विकल्पदशा कहो या आत्मसन्मुख –उपयोग कहो या भावमति, भावश्रुत कहो या स्वसंवेदनभाव, वस्तु मग्नभाव या स्वआचरण कहो, स्थिरता कहो, विश्राम कहो, स्वमुख कहो; इन्द्रियमनातीत भाव, शुद्धोपयोग, स्वरूपमग्न या निश्चयभाव, स्वरससाम्यभाव, समाधिभाव, वीतरागभाव, अद्वैता-वलम्बीभाव, चित्तनिरोधभाव, निजधर्मभाव, यथास्वादरूप भाव; इसप्रकार स्वानुभव के अनेक नाम हैं; तथापि एक 'स्वस्वादरूप अनुभवदशा' ऐसा मुख्य नाम जानना।

जो सम्यग्दृष्टि चतुर्थ (गुणस्थान) का है, उसके तो स्वानुभव का काल लघु अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। (फिर) (उसे) वह (स्वानुभव) दीर्घकाल पश्चात् होता है। उससे (अविरत सम्यग्दृष्टि के काल से) देशव्रती का स्वानुभव रहने का काल अधिक है। और वह स्वानुभव अल्पकाल पश्चात् होता है। सर्वविरति का स्वानुभव दीर्घ अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। ध्यान से भी होता है तथा अति अल्प-अल्पकाल के पश्चात् स्वानुभव सातवें[१] गुणस्थान में बारम्बार होता ही रहता है। वही परिणाम जो कि पूर्व में स्वानुभवरूप हुए थे वे तो स्वानुभवरूप रहे, किन्तु वहाँ से (वे परिणाम) मुख्य रूप से कर्मधारा से निकल-निकलकर, स्वरसस्वादरूप-अनुभवरूप हो-होकर बढ़ते रहते हैं। ज्यों-ज्यों बाद का काल आता है त्यों-त्यों बाद-बाद के परिणाम स्वस्वादरसरूप-अनुभवरूप हो-होकर बढ़ते रहते हैं। इसप्रकार वहाँ से अनुभवदशा के परिणाम बढ़-बढ़कर पलटते हैं – ऐसा क्षीणमोह गुणस्थान के अन्त तक जानना।

१. सातवें गुणस्थान में स्वानुभवदशा बारम्बार होती ही रहती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हे भव्य। तू एक बात सुन, हम एक बार फिर कहते हैं – यह स्वानुभवदशा स्वसमयरूप[१] सुख है, शान्ति विश्राम है, स्थिररूप है, निजकल्याण है, आराम है, तृप्तिरूप है, समभाव है, मुख्य मोक्षमार्ग है – ऐसा है और यह सम्यक् सविकल्पदशा यद्यपि यहाँ उपयोग निर्मल है तथापि यहाँ चारित्रपरिणाम परावलम्बी, अशुद्ध चञ्चल होने से सविकल्पदशा दुःख है, तृष्णा के कारण चञ्चल है, पुण्य–पापरूप कलाप (समूह) है, उद्वेगता है, असंतोष रूप है, ऐसे–ऐसे विलापरूप है। चारित्रपरिणाम की अवस्था अपने में देखी है, इसलिए भला यह है कि तू स्वानुभवरूप रहने का उद्यम करता रह; यह हमारा वचन व्यवहार से उपदेश कथन है। गुणस्थानानुसार जितनी–जितनी विशुद्धता, स्थिरता बढ़ी उतना–उतना सुख बढ़ा। बारहवें गुणस्थान तक कषाय कम होने से स्थिरता बढ़ी (और) मतिज्ञानावरण तथा श्रुतज्ञानावरण के क्षयोपशम से स्वसंवेदन रस में वृद्धि हुयी। स्वसंवेदन स्थिरता से उत्पन्न रसास्वादरूप स्वानुभव वह अनन्तसुख का मूल है।

वह अनुभव (प्रचण्ड धाराप्रवाह–मूसलाधार वर्षारूप) जागृत होने पर दुःख दावानल रंच भी नहीं रहता। मुनिजन स्वानुभव को भववास–घटा का[२] नाश करने के लिए परम[३] प्रचण्ड पवन कहते

१. पाठान्तर–स्वरसमयरूप २. घटा=बादल

३. अनुभौ अखण्ड रस धाराधर जग्यौ जहाँ,
तहाँ दुःख दावानल रंच न रहतु है।
करम निवास भववास घटा भानवेकौं,
परम प्रचण्ड पौनि मुनिजन कहतु है॥
याकौ रस पियैं फिर काहूकी न इच्छा होय,
यह सुखदानी सब जगमें महतु है।
आनन्द को धाम अभिराम यह सन्तन कौ,
याही कै धरैया पद सासतौ लहतु है॥१२७॥ – ज्ञानदर्पण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं। अनुभवसुधा का पान करके अनेक भव्यजीव अमर हुए। अनुभव ही परम पूज्यपद को करता है। इसके बिना सब वेद-पुराण निरर्थक हैं, स्मृति विस्मृति है, शास्त्रार्थ व्यर्थ है; पूजा, भजन मोह है। अनुभव के बिना निर्विघ्न कार्य विघ्न है; परमेश्वरकथा भी झूठी है; तप भी झूठा है; तीर्थसेवन झूठा है।

(अनुभव के बिना) तर्क, पुराण, व्याकरण खेद हैं। ग्राम में गाय, श्वान की भाँति और वन में हरिणादि की भाँति अज्ञानतपस्वी है। पुरुष चाहे जहाँ रहे, अनुभव-प्रसाद से वह (सदा) पूज्य है। अनुभव आनन्द, अनुभव धर्म, अनुभव परमपद, अनुभव अनन्तगुण-रससागर, अनुभव से सिद्ध होते हैं। अनुपमज्योति, अमिततेज, अखण्ड, अचल, अमल, अबाधित, अरूप, अजर, अमर, अविनाशी, अलख, अछेद, अभेद, अक्रिय, अमूर्तिक, अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व, अविगत (नित्य), आनन्दमय, चिदानन्द इत्यादि परमेश्वर के सर्व अनन्त विशेषणों को अनुभव सिद्ध करता है; इसलिए अनुभव सार है। मोक्ष का निदान, सब विधान का शिरोमणि, सुख का निधान, अम्लान, अनुभव है। इन्द्रादि[१] अनुभवी

१. परपद आपो मानि जगमैं अनादि भम्यो,
पायो न स्वरूप जो अनादि सुखथान है
रागद्वेष भावनमें भवथिति बाधा महा,
बिना भेदज्ञान भूल्यौ गुणकौ निधान है॥
अचल अखण्ड ज्ञानज्योतिको प्रकाश लिये,
घरमें ही देव चिदानन्द भगवान है।
कहै दीपचन्द आप इन्दहूसे पाय परै,
अनुभौ प्रसाद पद पावै निरवान है॥१२४॥
दोहा :- चिद्लक्षण पहिचानतैं, उपजै आनन्द आप।
अनुभौ सहज सरूपकौ, जगमैं पुण्यप्रताप॥१२५॥
जगमें अनादि यति जे ते पद धारि आये,
तेउ सब तिरे लहि अनुभौ निधान को।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीव ऐसे मुनिजन के चरणारविन्द का सेवन करते हैं, इसलिए अनुभव से उन ग्रन्थों में (प्रत्येक सद्‍ग्रन्थ में) अनुभव की प्रशंसा कही है। अनुभव के बिना किसी साध्य की सिद्धि नहीं है। अनन्त चेतनाचिन्हरूप, अनन्तगुणमण्डित, अनन्तशक्तिधारक, आत्मपद के रसास्वाद को अनुभव कहते हैं।

बारम्बार सर्व ग्रन्थ का सार अविकार अनुभव है; अनुभव शाश्वत चिन्तामणि है। अनुभव अविनाशी रसकूप[१] है। अनुभव मोक्षरूप है। अनुभव तत्त्वार्थसार है। अनुभव जगत–उद्धारण है। अनुभव से उच्च अन्य कोई पद नहीं है, इसलिए अनुभव सदा स्वरूप का करो। अनुभव की महिमा अनन्त है। कहाँ तक बतलायें?

याके बिनु पाये मुनि हू सुपद निंदत है,
यह सुखसिन्धु दरसावै भगवानको॥
नारकी हू निकसि जे तीर्थंकर पद पावै,
अनुभौ प्रभाव पहुँचावै निरवाण को।
अनुभौ अनन्तगुणधामके धरैया ही कौ,
तिहुँलोक पूजै हित जानि गुणवान को॥१२६॥
दोहा :- गुण अनन्त के रस सबै, अनुभौ रस के माँहिं।
यातैं अनुभौ सारिखौ और दूसरो नाँहिं॥१५३॥
पंचपरमगुरु जे भये, जे होंगे जगमाँहिं।
ते अनुभवपरसाद तैं, यामैं धोखो नाँहिं॥१५४॥ – ज्ञानदर्पण

१. दोहा :- अनुभव चिन्तामणि रतन, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोख को, अनुभव मोखसरूप॥१८॥
अनुभव के रसकौ रसायन कहत जग,
अनुभौ अभ्यास यहु तीरथकी ठौर है।
अनुभौकी जो रसा कहावै सोई पोरसासु,
अनुभौ अधोरसासौं ऊरध की दौर है।
अनुभौ की केलि यहै कामधेनु चित्रावेलि,
अनुभौकौ स्वाद पंच अमृतकौ कौर है,
अनुभौ करम तौरै परमसौं प्रीति जौरै,
अनुभौ समान न धरम कोउ और है॥१९॥
– नाटक समयसार–उत्थानिका/१८–१९

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आठ कर्म आत्मप्रदेश पर अपनी स्थिति से (स्थिति तक) बैठे हैं, वह सब पुद्गल का ठाठ है। उनके विपाक के उदय से चिद्विकार हुआ, वह विकार जीव का है। नोकर्मरूप, द्रव्यकर्मरूप सर्व वर्गणा पुद्गल है (और) भाव जीव के हैं। एक सौ अड़तालीस प्रकृतिवर्गणा जड़ की बनी है; उनके विपाक-उदय की व्यक्तता का निमित्त पाकर चिद्विकार हुआ, उस विकार का स्वाँग जीव ने धारण किया है। यह ज्ञेयरंजक अशुद्धभाव, शुद्धभाव की शक्ति अशुद्ध हुयी, तब हुआ है। अशुद्धता पर के निमित्त से उफदू (कोई, उपाधि) मैल है (पाठान्तरः- अशुद्ध परिणमन के निमित्त से यह कर्ममल लगा है); परन्तु इसे (जीव ने) किया इसलिए इसका है, (परन्तु) इसका मूल भाव नहीं है। काहे से ? कि - बादलों की घटा लाल, श्याम, पीत, हरितरूप होने से आकाश वैसा नहीं हुआ। जिसप्रकार रत्न के ऊपर मिट्टी खूब लपेटी; तथापि रत्न का प्रकाश मिट्टी लपटने पर भी नहीं गया, अंतर-शक्ति ज्यों की त्यों है; उसीप्रकार आत्मा के अशुद्धभाव होने पर भी आत्मा की दर्शन-ज्ञानशक्ति अभ्यन्तर में ज्यों की त्यों है। पर पुद्गल का नाटक (खूब) बना है, उसे पुद्गल का खेल जान, तू (उसे) अपने आत्मा का खेल न ज़ान।

सो कहते हैं :- दसप्रकार का परिग्रह - क्षेत्र, बाग, नगर, कूप, वापी, तडाग (तालाब), नदी आदि सब पुद्गल; माता, पिता, कलत्र, पुत्र, पुत्री, वधू, बंधु, स्वजनादि सर्व (कुटुम्बीजन), सर्प, सिंह व्याघ्र, गज, महिष आदि सब दुष्ट, अक्षर, अनक्षर, शब्दादि, गाना, बजाना, स्नान, भोग, संयोग-वियोग की सब क्रिया, परिग्रह का मिलाप सो बड़ा, परिग्रह का नाश सो दारिद्र्यादि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सब क्रिया, चलना, बैठना, हिलना, बोलना, काँपना आदि क्रिया, लड़ना, भिड़ना, चढ़ना, उतरना, कूदना, नाचना, खेलना, गाना, बजाना आदि जितनी क्रियाएँ सब पुद्‌गल का खेल जानो।

नर, नारक, तिर्यंच, देव, उनका वैभव, भोगकरण, विषयरूप इन्द्रियों की क्रिया आदि सर्व पुद्‌गल का नाटक है। द्रव्यकर्म, नोकर्म आदि सर्व पुद्‌गल का अखाड़ा है, उसमें तू चिदानन्द रंजित होकर अपना जानता है। अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि अनन्त गुण के अखाड़े में परिणतिपात्र नाचते हैं, स्वरूपरस उपजाते हैं, जितने गुण हैं, उतनों का वेदन करते हैं। द्रव्य का वेदन करते हैं। सर्व भाव (स्वरूप) सत्ता मृदंग है, प्रमेय ताल है, इत्यादि सब निज अखाड़ा है। इसप्रकार अपने निज अखाड़े में रंजित न होकर पर के अखाड़े में (तूने) ममत्व किया, जिसके फल में जन्मादि दु:खफल (तूने) स्वयं प्राप्त किए।

अब अपना सहज स्वादी होकर, परप्रेम मिटाकर, चेतना-प्रकाश के विलासरूप अतीन्द्रिय भोग भोग। क्यों झूठे ही सूने जड़ में अपनत्व मानता है ? तथा पर को कहता है कि – (यह) हमें दु:ख देता है, (परन्तु) उसमें दु:ख देने की शक्ति नहीं है। दूसरे को झूठा उलाहना देता है, अपनी हरामजादगी (दुष्टता) को नहीं देखता। अचेतन को नचाता फिरता है और लज्जा नहीं आती! मुर्दे से सगाई करके, अब हम इससे ब्याह करके सम्बन्ध करेंगे, तो ऐसी बात लोक में भी निंद्य है।

तुम तो अनन्तज्ञान के धारी चिदानन्द हो; जड़ में अपनत्व मानने की अनादिकालीन झूठी विडम्बना मिटाओ। तुम उसे (मात्र) पर मानकर छोड़ो। पराचरण से ही तुम्हारे दर्शन-ज्ञान में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लाभ नहीं हुआ है। यदि देखने-जानने से बंध होता तो सिद्ध लोकालोक को देखते हैं, जानते हैं, वे भी बँधते; (परन्तु) उसके साथ (लोकालोक के साथ) (सिद्ध के) परिणाम तादात्म्य नहीं हैं; इसलिए सिद्धभगवान नहीं बँधते। परिणाम से ही संसार, परिणाम से ही मोक्ष मान। परिणाम ही राग-द्वेष-मोहपरिणाम करते हैं, उनका यत्न (रक्षा) भी परिणाम ही करते हैं। ज्ञान-दर्शन में राग-द्वेष नहीं हैं, वे (तो) देखने-जाननेमात्र हैं। उसकी (परिणाम की) विकारता से वे भी (दर्शन-ज्ञान भी) विकारी कहे जाते हैं। यदि देखना-जानना राग-मोह से हो तो बँधता है; राग-द्वेष-मोह न हो तो नहीं बँधता। यह परिणामों की शुद्धता अभव्य के नहीं होती, इससे (उसके) ज्ञान-दर्शन शुद्ध नहीं होते। भव्य को स्वरूपाचरण के परिणाम होते हैं, इससे (उसके) ज्ञान-दर्शन शुद्ध होते हैं। 'पद्मनन्दि पंचविंशतिका' में कहा है कि -

स्वानुष्ठानविशुद्धे दृग्बोधे जायते[१] कुतो जन्म।
उदिते गभस्तिमालिनि किं न विनश्यति तमो नैश्यम्[२]॥

यहाँ कोई प्रश्न करे कि - वस्तु देखने में नहीं आती, जानने में नहीं आती (तो) उसमें परिणाम कैसे दें? (कैसे लगायें?) उसका समाधान - पर को देखता-जानता है, वहाँ पर को देखनेवाला उपयोग है तो देखता है, ज्ञान है तो जानता है। (उस उपयोग को अपने में लगाकर स्थिर करे तो) वह उपयोग स्व में

१. पाठान्तर :- 'जृंभते'

२. इस पद्य का भावानुवाद इसप्रकार है :- जिसप्रकार सूर्योदय होने से अंधकार का नाश होता है, उसीप्रकार सम्यक्चारित्र से दर्शन-ज्ञान विशुद्ध होने से पुनः संसार में जन्म नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अस्तिरूप हुआ, (पर से) नास्तिरूप हुआ, जो इस उपयोग ने (ज्ञानतत्त्व ने) ग्रहण किया उसी में परिणाम धरकर, स्थिरता करके, आचरण करके विश्राम ग्रहण कर। परिणाम शुद्ध करने में इतना ही काम है। कहा है कि –

'उवओगमओ जीवो' इति वचनात्।

(उपयोगमय जीव है, इस वचनानुसार)।

क्योंकि परिणाम वस्तु को वेदकर स्वरूपलाभ लेता है – वस्तु में लीन होता है। स्वरूपनिवास परिणाम ही करता है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणाम में आए, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में सत्[१] आया (और) 'सत्' में सर्व स्वरूप आया। इसलिए परिणाम शुद्धता में सर्वशुद्धता आयी। कहा है कि –

जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणाम सब्भावो ॥[२]

– प्रवचनसार गाथा-९

परिणाम सर्व स्व-स्वरूप के हैं। पराचरण के दो भेद हैं – द्रव्यपराचरण और भावपराचरण। परन्तु नोकर्म (द्रव्य) पराचरण उपचार है; परम्परा से अनादि उपचार है। देवादिक देह का धारण सादि उपचार है; द्रव्यकर्मयोग अनादि उपचार है। भावकर्म अशुद्ध-निश्चयनय से है। द्रव्यकर्म-नोकर्म का द्रव्यपराचरण उपचार से है। भावपराचरण राग-द्वेष-मोह है, उसका आचरण है।

---

१. उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, सद्द्रव्यलक्षणम् (-तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय-५, सूत्र २९-३०)

२. इसका भावानुवाद निम्नानुसार है – जब परिणाम स्वभावधारी यह जीव, शुभ तथा अशुभ परिणामों से परिणमता है, तब वह शुभ व अशुभ होता है और जब शुद्ध परिणामों से परिणमता है, तब निश्चय से शुद्ध होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई प्रश्न करे कि – यदि रागादिक जीव के भाव हैं, (और) परभाव स्पर्श, रस आदिक हैं, (तो) रागादिक को (जीव के भाव होने पर भी) परभाव क्यों कहा ?

उसका समाधान :– शुद्धनिश्चयनय से रागादि जीव के नहीं हैं, वे भी पर हैं। काहे से ? कि – वे भावकर्म हैं, उनके नाश से मोक्ष होता है; पर हैं तो छूटते हैं, इससे (उन्हें) पर ही कहते हैं। जब यह (जीव) रागादि को अपना नहीं मानेगा तब भवबंधपद्धति मिटेगी। इसलिए पर ऐसे रागादि को छोड़कर, शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उसे स्व (आपरूप) जानकर ग्रहण करो, यह मोक्ष का मूल[१] है। परिणाम जिस ओर ढले वैसे होते हैं। इसलिए पर की ओर से हटाकर, निजपरिणाम को स्वरूप में लगाओ। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य षट्गुणीवृद्धिहानिरूप अर्थक्रियाकारक परिणाम से सधती है।

---

१. सद्गुरु कहैं भव्य जीवनि सौं, तोरहु तुरित मोह की जेल,
समकितरूप गहो अपनौं गुन, करहु शुद्ध अनुभव कौ खेल।
पुद्गलपिण्ड भावरागादिक, इनसौं नहीं तुम्हारौ मेल,
ए जड़ प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसें भिन्न तोय अरु तेल॥

– नाटक समयसार ॥१२॥

जिस भाव से आगत विषय को जानता व देखता ॥१७६॥
वह सप्रदेशी आतमा उन प्रदेशों में प्रविष्ट हैं ॥१७८॥
है रक्त बाँधे कर्म और विरक्त छूटे कर्म से ॥१७९॥
है बन्ध जिन परिणाम से वे राग-द्वेष-विमोह युत ॥१८०॥

– प्रवचनसार, गाथा १७६, १७८, १७९, १८०
पृष्ठ-२६८-२७१-२७२-२७३

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

देवाधिकार

अब देवाधिकार लिखते हैं –

क्योंकि देव से परम मंगलरूप निजानुभव प्राप्त करते हैं; इसलिए देव उपकारी हैं। देव परमात्मा हैं। अरहन्त परमात्मा साकार हैं, शरीरयुक्त हैं और सिद्ध निराकार हैं; चरम शरीर से किंचित् न्यून आकार हैं, इसलिए (उन्हें) साकार भी कहा जाता है। अरहन्त के अघाति कर्म शेष हैं, इसलिए बाह्य विवक्षा में चार गुण व्यक्त नहीं हुए हैं; ज्ञान में सब व्यक्त हुए हैं। सो कहते हैं:– नामकर्म मनुष्यगतिरूप है इससे सूक्ष्म बाह्य नहीं है, (बाह्य में व्यक्त नहीं है), (परन्तु) केवलज्ञान में व्यक्त है। वेदनीयकर्म है इससे बाह्य (बाह्य में) अबाधित नहीं है; अन्तर में–ज्ञान में व्यक्त है, अवगाह बाह्य (बाह्य में व्यक्त) नहीं है, (परन्तु) अपने ज्ञान में व्यक्त है। अगुरुलघुगोत्र से बाह्य (बाह्य में) व्यक्त नहीं है, (परन्तु) अपने ज्ञान में (व्यक्त) है। इस अघाति से ही व्यक्त नाम को प्राप्त नहीं हुए हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव पूज्य हैं, अरहन्त का नाम लेते ही परमपद की प्राप्ति होती है। (योगसार में) कहा है कि :–

जिन सुमरो जिन चिंतवो, जिन ध्यावो सुमनेन।
जिन ध्यायंतहि परमपद, लहिये एक क्षणेन॥

जिनस्थापना से सालम्बध्यान द्वारा निरालम्बपद प्राप्त करता है। कैसी है स्थापना ? कहा है कि –

किं ब्रम्हैकमयी किमुत्सवमयी श्रेयोमयी किं किमु।
ज्ञानानन्दमयी किमुन्नतमयी किं सर्वशोभामयी॥

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इत्थं किं किमिति प्रकल्पनपरैस्त्वन्मूर्तिरुद्वीक्ष्यता (ताम्)
किं सर्वातिगमेव दर्शयति सा ध्यानप्रसादन्महः ॥१ ॥
मोहोद्दामदवानलप्रशमने पाथोदवृष्टिसमः।
स्त्रोतो निर्झरणी समीहितविधौ कल्पेन्द्रवल्ली सताम् ॥
संसारप्रबलान्धकारमथने मार्तण्डचण्डद्युति-
जैंनी मूतिरुपास्यतां शिवसुखे भव्यः पिपासास्तिचेत्[1] ॥

स्वसंवेदनरूप वीतरागमुद्रा को देखकर स्वसंवेदन भावरूप अपने स्वरूप का विचार करे – पूर्वकाल में यह सराग थे, राग मिटाकर वीतराग हुए हैं। वर्तमान में मैं सराग हूँ इनकी भाँति यदि मैं भी राग मिटाऊँ तो अपने वीतरागपद को प्राप्त करूँ। निश्चय (से) मैं वीतराग हूँ। कहा है कि –

''पिच्छहु अरहो देवो पच्छरघडियो हु दरसयं मग्गं''[2]

– इति वचनात् ॥

1. इन पद्यों का भावानुवाद इसप्रकार है :- हे भव्य! यदि तुझे मोक्षसुख की पिपासा है, उसे प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा है, तो तुम्हें जैनमूर्ति की उपासना करनी चाहिए। वह जिनबिम्बमूर्ति क्या ब्रम्हस्वरूप है ? क्या उत्सवमय है? क्या श्रेयरूप है ? क्या ज्ञानानन्दमय है ? क्या उन्नतरूप है ? और क्या सर्व शोभा से सम्पन्न है ? इसप्रकार अनेक विकल्पों से क्या प्रयोजन है ? ध्यान के प्रसाद से आपकी मूर्ति को देखनेवाले भव्यों को क्या वह सर्वातीत तेज को दिखलाती है ? – हाँ, दिखलाती ही है।

तथा वह मूर्ति (जिनबिम्ब) मोहरूपी प्रचण्ड दावानल को शांत करने के लिए मेघवृष्टि के समान है, वह इच्छित कार्यों को सम्पन्न करने के लिए नदी का स्त्रोत है, वह सज्जन के लिए कल्पेन्द्रलता है, कल्पलता के समान अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली है और संसाररूपी प्रबल अंधकार का नाश करने के लिए मार्तण्ड की प्रचण्ड द्युति है, सूर्य का प्रबल प्रकाश है; अतः हे भव्य! ऐसी उस वीतरागमूर्ति की उपासना अवश्य करनी चाहिए।

2. पाषाण से गढ़ी होने पर भी मार्ग के दर्शक ऐसे अरहन्तदेव को देखो (अरहन्तदेव का दर्शन करो)।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस स्थापना के निमित्त से तीनकाल, तीनलोक में भव्यजीव धर्म साधते हैं, इससे स्थापना परमपूज्य है। द्रव्यजिन–द्रव्यजीव (है) वह भी भावपूज्य है। इससे भावीनय से पूज्य हैं अथवा तीन कल्याणक तक द्रव्यजिन हैं, वे पूज्य हैं। समवशरणमण्डित, अनन्तचतुष्टययुक्त भावजिन भव्यजीवों को तारें, दिव्यध्वनि से उपदेश देकर साक्षात् मोक्षमार्ग की वर्षा करें – ऐसे परमात्मा को भावजिन कहा जाता है।

अब सिद्धदेव का वर्णन करते हैं। सिद्ध निराकार परमात्मा हैं; अनन्त गुणरूप हुए अपने अनन्तसुख को गुणों एवं पर्यायों से वेदकर द्रव्य–गुण का उपभोग करते हैं। लोक–शिखर पर विराजते हैं। षट्गुणीवृद्धि–हानिरूप अर्थपर्याय तथा चरमदेह से किंचित् न्यून, प्रदेशों की आकृति–आकाररूप व्यंजनपर्याय (से युक्त हैं)। कहा है कि –

मोम गयो गलि मूसि में, जारस अंबर होय।
पुरुषाकारैं ज्ञानमय, वस्तु प्रमानौं सोय[१]।।

देव को जाने तब स्वरूपानुभव होता है।

॥इति देवाधिकारः॥

---

१. ध्यान हुताशन में अरि ईंधन, झोंक दियो रिपुरोक निवारी,
शोक हस्यो भवि लोकनकौ वर, केवलज्ञान मयूख उघारी।
लोक अलोक विलोक भये शिव, जन्म जरा मृत पंक पखारी:
सिद्धन थोक बसैं शिवलोक, तिन्हें पग धोक त्रिकाल हमारी ॥११॥
तीरथनाथ प्रनाम करैं, तिनके गुनवर्ननमें बुद्धि हारी,
मोम गयो गलि मूस मँझार, रह्यो तहँ व्योम तदाकृति धारी।
लोक गहीर नदी पति नीर, गये तिर तीर भये अविकारी,
सिद्धन थोक वसैं शिवलोक, तिन्हें पग धोक त्रिकाल हमारी ॥१२॥
– 'जैन शतक' पं. भूधरदास–सिद्धस्तुति

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानाधिकार

ज्ञान, लोकालोक सकल ज्ञेय को जानता है; (क्योंकि) निश्चय से जिसका जाननेरूप स्वरूप है – ऐसी ज्ञान की शक्ति है। वह संसार अवस्था में अज्ञानरूप हुयी है, तथापि निश्चय से निजशक्ति जाती नहीं है। बादलघटा के आवरण से सूर्य का तेज नहीं जाता, उसीप्रकार ज्ञानावरण से ज्ञान नहीं जाता; आवृत हो जाए (किन्तु) नष्ट नहीं होता। ज्ञान सर्व गुणों में बड़ा गुण है, उसमें अनन्त गुण प्रकट जानते हैं। ज्ञान के बिना ज्ञेय का ज्ञान नहीं होता, ज्ञेय के बिना जाननेयोग्य कुछ भी न होता, इसलिए ज्ञानप्रधान है; अनन्त गुणात्मक वस्तु तथापि ज्ञानमात्र ही है। आचार्य ने अनेक ग्रन्थों में आत्मा को ऐसा कहा है। काहे से ? कि – "लक्षण प्रसिद्धया लक्ष्यप्रसिद्ध्यर्थम्" (लक्षण की प्रसिद्धि द्वारा लक्ष्य की प्रसिद्धि करने के लिए आत्मा का ज्ञानमात्ररूप से व्यपदेश किया जाता है।) जैसे, मन्दिर को श्वेत कहा जाता है। यद्यपि मन्दिर स्पर्श, रस, श्वेतादि अनेक गुण धरता है, तथापि दूर से श्वेत गुण द्वारा भासता है, इसलिए मुख्यता से श्वेत मन्दिर कहा जाता है। आत्मा में प्रसिद्ध लक्षण ज्ञान है इसलिए 'ज्ञानमात्र' आत्मा कहा है। एक-एक गुण की अनन्तशक्ति, अनन्त पर्यायें, एक अनेक भेदादि सर्व को जानता है; ज्ञान के बिना वस्तु सर्वस्व निर्णयरूप स्वरूप को नहीं जानती; इसलिए ज्ञानप्रधान है। मतिज्ञानादि ज्ञान की पर्यायें हैं। वह क्षयोपशमज्ञान अंश शुद्ध हुआ। (इससे) पर्याय, ज्ञेयाकार ज्ञानपर्यायद्वारा लोकालोक को जानती है। ज्ञेय का नाश होता है, किन्तु ज्ञान का नाश नहीं है; इसलिये जितना ज्ञेय उतना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान, मेचक उपयोगलक्षण ज्ञान (है); उपचार से ज्ञान में ज्ञेय है, इसलिए वस्तुस्वरूप में ज्ञेय के विनाश से ज्ञान का विनाश नहीं है।

यहाँ कोई तर्क करे कि – ज्ञान में सर्व ज्ञेय उपचार से हैं, तो सर्वज्ञपद उपचरित हुआ; उपचार झूठा है; तो क्या सर्वज्ञपद झूठा हुआ ?

उसका समाधान – जिसके उपचारमात्र में ही लोकालोक भासित हुआ; तो उसके निश्चयज्ञान की महिमा कौन कहे ? यह ज्ञान, स्वसंवेदन ही होता हुआ, सर्व को जानता है। स्व को जानते हुए पर का जानना स्थापित होता है, पर को जानते हुए स्व का जानना स्थापित होता है। पर की अपेक्षा से स्व है, स्व की अपेक्षा से पर है। विवक्षा से वस्तुसिद्धि है (और) ज्ञान से स्वरूपानुभव है।

यह ज्ञानाधिकार है।

ज्यौं दीपक रजनी समैं, चहुँ दिसि करै उदोत।
प्रगटै घटपटरूपमैं, घटपटरूप न होत॥
त्यौं सुग्यान जानै सकल, ज्ञेय वस्तुकौ मर्म।
ज्ञेयाकृति परिनवै पै तजै न आतम-धर्म॥
ग्यानधर्म अविचल सदा, गहै विकार न कोई॥
राग विरोध विमोहमय, कबहूँ भूलि न होइ॥
ऐसी महिमा ग्यान की, निहचै है घट माँहिं।
मूरख मिथ्यादृष्टिसौं, सहज विलोकै नाँहिं॥

– समयसार नाटक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञेयाधिकार

अब ज्ञेयाधिकार लिखते हैं –

''ज्ञातुं योग्यं ज्ञेयं'' जाननेयोग्य पदार्थ को ज्ञेय कहा जाता है। उस पदार्थ की तीन अवस्थाएँ हैं। द्रव्य-अवस्था, गुण-अवस्था और पर्याय-अवस्था; (उनमें) द्रव्य-अवस्था मुख्य है। काहे से? कि – पदार्थ द्रव्य-अवस्था न धरे तो द्रव्य के बिना गुण-पर्याय का व्यापना न हो तो द्रव्य (भी) न हो तो पदार्थ (भी) न हो; इसलिए द्रव्य-अवस्था मुख्य है। फिर गुण-अवस्था है। काहे से? कि – गुण के बिना द्रव्य नहीं होता इससे 'गुणसमुदायो द्रव्यं[१]' ऐसा जिनवचन है। पर्याय-अवस्था न हो तो वस्तु को परिणमित कौन करेगा ? उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य (भी) नहीं सधेंगे। षड्गुणी-वृद्धि-हानि नहीं होगी, तब तो अर्थपर्याय का अभाव होने से वस्तु का अभाव होगा, इससे पर्याय-अवस्था से सर्वसिद्धि है।

द्रव्य, गुण-पर्याय में व्यापता है; गुण, द्रव्य-पर्याय में व्यापता है तथा पर्याय, गुण-द्रव्य में व्यापती है – तीनों अवस्थाएँ पदार्थ की हैं। पदार्थ, सत्त्व (स्व) अवस्था से अस्ति है; परचतुष्टय-अवस्था से नास्ति है। गुण, अवस्था से अनेक हैं; वस्तु, अवस्था से एक है। गुणादि भेद से भेदरूप है; अभेद वस्तुस्वरूप से अभेद है। द्रव्य से नित्य है; पर्याय से अनित्य है। शुद्ध निश्चय से शुद्ध है। सामान्य-विशेषरूप वस्तु (होने से) वस्तुत्व है। द्रव्य के भाव

---

१. गुणसमुदाय वह द्रव्य है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को धरने से द्रव्यत्व है। प्रमेय के भाव को धरने से प्रमेयरूप है। अगुरुलघु के भाव को धरने से अगुरुलघु अवस्था है। प्रदेश को धरने से प्रदेशरूप है। अन्यत्व, गुण–लक्षण–भेद अन्य से अन्यत्व है; स्व–पर से अन्य है; नाना (अनेक) पदार्थों से अन्य है; द्रव्यत्व है; पर्यायत्व है; सर्वगत (है;) असर्वगत है; अप्रदेशत्व है; मूर्त है; अमूर्त है; सक्रिय, अक्रिय, चेतन, अचेतन, कर्तृत्व, अकर्तृत्व, भोक्तृत्व, अभोक्तृत्व, नाम, उपलक्षण, क्षेत्र, स्थिति, संस्थान, सरूप, फल, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन, तत्स्वभाव, अतत्स्वभाव, सप्तभंगरूप अन्योन्यगुण से सिद्धि, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, चेतनत्व, मूर्तत्व आदि विशेष गुणरूप पदार्थ सामान्य–विशेष स्वभाव को धारण करता है। अनेक (भिन्न–भिन्न) पदार्थ (से तथा) एक पदार्थ से जैसी विवक्षा हो वैसी समझ लेना।

पदार्थ सत्तारूप है। सत्ता, महासत्ता[१] अवान्तरसत्ता[२] (ऐसे) दो भेदवाली है। सत्त्व और असत्त्व, त्रिलक्षण और अत्रिलक्षण एकत्व और अनेकत्व, सर्वपदार्थस्थितत्व और एक पदार्थस्थितत्व, विश्वरूप और एकरूप, अनन्तपर्यायत्व और एकपर्यायत्व। 'द्रव्य' ऐसा द्रव्यभाव सर्वद्रव्यों में वह महासत्ता। 'जीवद्रव्य' 'पुद्गलद्रव्य' ऐसे स्वरूपरूप वर्ते वह अवान्तरसत्ता। द्रव्यसत्ता अनादि–अनन्त है। पर्यायसत्ता सादि–सान्त है। स्वरूपसत्ता के तीन प्रकार हैं – द्रव्य–स्वरूपसत्ता, गुणसत्ता, पर्यायसत्ता। गुणसत्ता के अनन्त भेद

---

१. समस्त पदार्थों के अस्तित्वगुण को ग्रहण करनेवाली सत्ता को, महासत्ता कहते हैं।

२. किसी विवक्षित पदार्थ की सत्ता को, अवान्तरसत्ता कहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं; ज्ञानसत्ता, दर्शनसत्ता, अनन्तगुणसत्ता (यह सब) पृथक्त्व भेद नहीं हैं; किन्तु अन्यत्व भेद हैं। जितने कुछ निजद्रव्यगुण, परद्रव्य गुण हैं, सर्व द्रव्यों की अतीत, अनागत वर्तमानरूप तीनकाल की जितनी पर्यायें हैं, नव पदार्थ, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य – इन सबको आगम में ज्ञेय नाम से कहा है। जो कुछ ज्ञानगोचर हो उस सबको ज्ञेय के नाम से जानो।

'ज्ञातुं योग्यं ज्ञेयं' यह ज्ञेयाधिकार (पर) ज्ञेय को जानते हुए पर को प्रकट करता है, इससे निजज्ञेय को जानकर स्वरूपानुभव करना।

ज्ञायक स्वभावी ज्ञानि ज्ञेयात्मक पदार्थ हैं ज्ञानि के॥२८॥

नहिं अप्रविष्ट-प्रविष्ट अक्षातीत ज्ञानी ज्ञेय में॥२९॥

ज्यों दूध में रह इन्द्रनील रतन उसे स्वप्रभा से॥३०॥

यदि अर्थ हैं ना ज्ञान में तो ज्ञान सबगत है नहीं॥३१॥

जो अन्य को ना ग्रहण करते छोड़ते ना बदलते॥३२॥

जो जानते श्रुतज्ञान से ज्ञायक स्वभावी स्वयं को॥३३॥

है सूत्र जिन उपदिष्ट पुद्गल द्रव्यमय जिन वचन से॥३४॥

– प्रवचनसार, गाथा २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४
पृष्ठ-५० से ५८

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निजधर्माधिकार

अब निजधर्माधिकार कहा जाता है –

वस्तुस्वभाव वह निजधर्म ("वत्थु सहावो धम्मो" – जीव स्वभाव को धारण करे, वही निजधर्म) तो आत्मा का निजधर्म–निर्विकार सम्यक् यथारूप अनन्त गुणपर्यायस्वभाव, उसे धर्म कहते हैं। निश्चयज्ञान–दर्शनादि अपने धर्म हैं। जीव निजधर्म धरते ही परमशुद्ध है। निज अर्थात् स्व, उसका धर्म अर्थात् स्वभाव, उसे निजधर्म कहते हैं।

प्रश्न :– अपने स्वभावरूप सर्व पदार्थ हैं, उनका धर्म वह उनका निजधर्म है। आत्मा का (धर्म) आत्मा में है, अतः ज्ञान–दर्शन को ही निजधर्म ऐसा न कहो ?

समाधान :– स्वभाव तो सर्व सबको ही (सर्वगुणों को ही) कहा जाता है। उनका धर्म (वह) उनका स्वभाव, वह तो ऐसा ही है; परन्तु तारणधर्म, सजीवधर्म, प्रकाशधर्म, उनके धर्म को प्रकाशते हैं। ऐसा धर्म–परमधर्म, हितरूपधर्म, असाधारणधर्म, अविनाशीसुखरूपधर्म, चेतनाप्राणधर्म, परमेश्वरधर्म, सर्वोपरिधर्म, अनन्तगुणधर्म, शुद्धस्वरूपपरिणतिधर्म, अपार महिमाधारकधर्म, निजशुद्धात्मस्वभावरूपधर्म, वह निजधर्म है। उनका विशेष भेद कहा जाता है –

इस अनादिसंसार में जीव कर्मयोग से जन्मादि दुःख भोगता है; वह इस परधर्म को निजधर्म मानता है, इसलिए दुःख प्राप्त करता है। यह तो सत्य है। काहे से ? कि – यदि सरदारप्रधान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुरुष को निंद्य माने तो दण्ड सहता है। निंद्य देह में चेतनधर्म माने तो वह दुःख पाएगा और अवश्य पाएगा। शुद्धचैतन्यधर्म को जब धर्म जाने, तब वह संसार-तारणधर्म, अनन्तचेतनारूप धर्म जाने, उसके द्वारा शुद्धचैतन्यजीवधर्म, स्वज्ञेय-परज्ञेय को प्रकाशे इसलिए प्रकाशधर्म, उसने सर्वद्रव्यों के धर्म प्रकट किये, उनके धर्मों को प्रकट ले आया।

सबसे उत्तम इसलिए परमधर्म; निजरूप से अनन्तसुख होता है इसलिए हितधर्म; अन्य में नहीं है इसलिए असाधारणधर्म; सहजरूप अविनाशी आनन्द है इसलिए अविनाशी सुखरूपधर्म; चेतनाप्राण धरता है इसलिए चेतनाप्राणधर्म; सहजरूप परमेश्वर है ऐसा स्वभावमय परमेश्वरधर्म; सबसे उत्कृष्ट है इसलिए सर्वोपरि-धर्म; जिसका स्वभाव अनन्तगुणरूप है इसलिए अनन्तगुणधर्म शुद्ध होने पर सदैव शुद्धस्वरूप से परिणमित होता है इसलिए शुद्धस्वरूपपरिणति धर्म; अपार महिमासहित है इसलिए अपार महिमाधारकधर्म; अनन्तशक्ति को धरता है इसलिए अनन्तशक्तिरूप धर्म; एक गुण की अनन्त पर्यायें, ऐसे अनन्तगुण अनन्त महिमा को धारण करते हैं। उस निजधर्म की महिमा को कहाँ तक कहें? एकदेश निजधर्म धारण करने से भी संसार पार होता है। काहे से ? कि – एकदेश होने पर सर्वदेश होता और होता ही है। इससे ऐसा जानो (समझो) कि 'परधर्म से अनन्त दुःख, निजधर्म से अनन्त सुख'। इसलिए निजधर्म को धारण करके अपने परमेश्वरपद को प्रकट करो। निजधर्म की धारणा अनुभव से होती है। निजधर्म होने से अनुभव होता है। इसलिए अनुभवसार सिद्धिहेतु निजधर्म-अधिकार कहा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

मिश्रधर्म अधिकार

अब मिश्रधर्म अधिकार कहा जाता है –

वह मिश्रधर्म अन्तरात्मा को है। ऐसा काहे से ? कि – स्वरूपश्रद्धान सम्यक् (है, और) जितना कषाय-अंश है, उतनी राग-द्वेष धारा है। आत्मश्रद्धाभाव में आनन्द होता है। कषाय सर्वथा नहीं गए, मुख्य श्रद्धाभाव है और गौण परभाव है; एक अखण्ड चेतनाभाव सर्वथा नहीं हुआ है, इसलिए मिश्रभाव है। बारहवें गुणस्थान तक अज्ञानभाव-एकदेश अज्ञानचेतना है और कर्मचेतना भी है; इसलिए मिश्रधारा है। उपयोग में स्वरूप की प्रतीति हुयी किन्तु शुभाशुभ कर्म की धारा बहती है, उससे रंजकभाव कर्मधारा में है; परन्तु स्वरूपश्रद्धान मोक्ष का कारण है, भवबाधा मिटाने में समर्थ है। कर्मधारा की ऐसी कोई दुर्निवार गाँठ है कि यद्यपि प्रतीति में स्वरूप का यथार्थ निर्णय किया है तथापि सर्वथा (स्वरूप) न्यारा नहीं हुआ है, मिश्ररूप है।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि – सम्यक्गुण क्षायिकसम्यग्दृष्टि को सर्वथा हुआ है या नहीं हुआ ? उसका समाधान कहो।

यदि ऐसा कहोगे कि सर्वथा हुआ है तो (उसे) सिद्ध कहो। काहे से ? कि – एक गुण सर्वथा विमल होने से सर्व (गुण) शुद्ध होते हैं। सम्यक्गुण सर्व गुणों में फैला है, (इससे) सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन सर्वगुण सम्यक् हुए। (परन्तु) सर्वथा सम्यग्ज्ञान नहीं है, एकदेश सम्यग्ज्ञान है। सर्वथा सम्यग्ज्ञान हो तो सर्वथा सम्यक्गुण शुद्ध हो, इसलिए सर्वथा नहीं कहा जाता।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(तथा) यदि किंचित् सम्यक्गुण शुद्ध कहें तो सम्यक्त्वगुण का घातक जो मिथ्यात्व-अनन्तानुबन्धी कर्म था वह तो नहीं रहा; जिस गुण का आवरण जाए वह गुण (सर्वथा) शुद्ध होता है, इसलिए (सम्यक्गुण) किंचित् (शुद्ध) भी नहीं बनता।

तो किसप्रकार है ? उसका समाधान किया जाता है – वह आवरण तो गया तथापि सर्वगुण सर्वथा सम्यक् नहीं हुए हैं। आवरण जाने से सर्वगुण सर्वथा सम्यक् नहीं हुए इसलिए परम सम्यक् नहीं है। सर्वगुण साक्षात् सर्वथा शुद्ध सम्यक् हों, तब 'परम सम्यक्' ऐसा नाम होता है। "विवक्षाप्रमाण से कथन प्रमाण है।" उस दर्शन प्रति की पौद्‌गलिक स्थिति जब नाश हुयी तभी इस जीव का जो सम्यक्त्वगुण मिथ्यात्वरूप परिणाम था वह सम्यक्त्व गुण सम्पूर्ण स्वभावरूप होकर परिणमा-प्रकट हुआ। चेतन-अचेतन की भिन्न प्रतीति से वह सम्यक्त्वगुण निजजाति-स्वरूप होकर परिणमा, उसका लक्षण ज्ञानगुण अनन्तशक्ति द्वारा विकाररूप हो रहा था, उस गुण की अनन्तशक्ति में कुछ शक्ति प्रकट हुयी। उसका सामान्यतः नाम मति-श्रुत हुआ कहते हैं अथवा निश्चयश्रुतज्ञान पर्याय कहते हैं, जघन्यज्ञान कहते हैं; ज्ञान की शेष सर्व शक्ति रहीं वे अज्ञान-विकाररूप होती हैं; उस विकारशक्ति को कर्मधारारूप कहते हैं। उसीप्रकार जीव की दर्शनशक्ति अदर्शनरूप रही है। उसीप्रकार जीव के चारित्र की कुछ शक्ति चारित्ररूप और शेष कुछ विकाररूप हैं। इसीप्रकार भोगगुण का (समझना)। सर्वगुण जितने निरावरण उतने शुद्ध; शेष विकार – यह सब मिश्रभाव हुआ। प्रतीतिरूप ज्ञान में सर्व शुद्ध श्रद्धाभाव ('द्रव्य सर्व शुद्ध है' ऐसा श्रद्धाभाव) हुआ है;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परन्तु ज्ञान को तथा अन्य गुणों को आवरण लगा है इसलिए मिश्रभाव है; स्वसंवेदन है, परन्तु सर्व प्रत्यक्ष नहीं है। सर्व कर्म-अंश जाने पर शुद्ध है, अघाति रहने पर (भी) शुद्ध है। घातिया के नाश से ही सकल[१] परमात्मा हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान तो हुआ है।

तथा सिद्ध सकल कर्मरहित निकल परमात्मा[२] हैं। अन्तरात्मा को ज्ञानधारा और कर्मधारा है।

कोई प्रश्न करे कि बारहवें गुणस्थान में दो धाराएँ हैं या एक ज्ञानधारा ही है ? यदि (एक) ज्ञानधारा ही है तो (उसे) अन्तरात्मा मत कहो और यदि दोनों धाराएँ हैं तो बारहवें गुणस्थान में मोह क्षय हुआ है, रोग-द्वेष-मोह सब गए हैं (तो) दूसरी कर्मधारा वहाँ कहाँ रही ?

उसका समाधान :- ज्ञान परोक्ष है, (क्योंकि) केवलज्ञानावरण है, इसलिए अज्ञानभाव बारहवें गुणस्थान तक है, इससे अन्तरात्मा है; प्रत्यक्षज्ञान बिना वह परमात्मा नहीं है। कषाय गए, किन्तु अज्ञानभाव है, इसलिए वह परमात्मा नहीं हैं, अन्तरात्मा हैं।

प्रश्न :- बारहवें (गुणस्थान) में अज्ञान क्या ?

उसका समाधान :- केवलज्ञान के बिना सकल पर्यायें नहीं भासतीं, वही अज्ञान है; निज प्रत्यक्ष के बिना भी अज्ञान है; इसलिए 'अज्ञान' संज्ञा हुयी।

यह मिश्र अधिकार (कहा)।

---

१. ....तिनमें घाति निवारी,
श्री अरिहन्त सकल परमातम, लोकालोक निहारी। - छहढाला, पं. दौलतरामजी

२. ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता॥ - छहढाला, पं. दौलतरामजी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

निश्चय वस्तुस्वरूप

अब, निश्चय से वस्तु का स्वरूप जैसा है वैसा उसका कुछ वर्णन किया जाता है। वस्तु का अपना निजस्वरूप अनन्तगुणमय है, उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रधान हैं। काहे से ? कि – देखने-जानने, परिणमनद्वारा वेदने से रसास्वाद अनुभव होता है, वहाँ सुख-सम्यक्त्व प्रगट होता है। उनके द्वारा चेतना जानने में आयी, तब चेतनसत्ता, चेतनवस्तुत्व, चेतनद्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व कहे। इसलिए दर्शन, ज्ञान, चारित्र जीववस्तु का सर्वस्व है। द्रव्य, गुण, पर्याय यह वस्तु की अवस्था हैं। अनादिनिधन वस्तु अखण्ड चेतनारूप वर्तती है, परन्तु अनादि कर्मयोग से अशुद्ध हो रही है; सुख-निधान को नहीं जानती तथापि शुद्धस्वरूप है।

जैसे किसी ने किसी एक ज्ञानवान पुरुष से पूछा कि 'हमें शुद्ध चेतन की प्राप्ति बतलाओ।' तब उस पुरुष ने कहा कि – अमुक एक ज्ञानवान है, उसके पास जाओ, वह तुम्हें बतलाएगा-प्राप्ति कराएगा।

तब वह (वहाँ) गया। जाकर प्रश्न किया कि 'हमें चेतन की प्राप्ति कराओ।' तब उसने उससे कहा कि – समुद्र में एक मच्छ रहता है, उसके पास तुम जाओ; वह मच्छ तुम्हें चैतन्य-प्राप्ति कराएगा।

तब उसके उपदेश से वह पुरुष उस मच्छ के पास गया। जाकर प्रश्न किया कि 'हमें शुद्धचैतन्य की प्राप्ति कराओ।' तब मच्छ ने ऐसा वचन कहा कि – हमारा एक काम है वह पहले

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कर दो, तो फिर तुम्हें चिदानन्द में लीन करें। तुम महान संत हो। हमारा कार्य किसी ने अभी तक नहीं किया है। तुम पराक्रमी दिखायी देते हो; इससे यह नियम (निश्चय) है कि हमारा कार्य कर देने पर अवश्य तुम्हारा कार्य कर देंगे – ऐसा सत्य जानो। तब वह पुरुष बोला कि – तुम्हारा कार्य करूँगा, सन्देह मत करो। तब मच्छ ने उससे कहा कि – मैं बहुत दिनों का प्यासा इस समुद्र में रहता हूँ, मेरी प्यास नहीं बुझी, पानी का योग नहीं मिला, कहीं से यत्न करके पानी लाओ, बड़ा उपकार करो, मेरी प्यास बुझाओ। महाजन की रीति है कि परदुःख मिटाए; इसलिए इतना उपकार करो, मैं तुम्हें चिदानन्द प्रत्यक्ष बतलाकर प्राप्ति कराऊँगा।

तब वह पुरुष बोला कि – तुम ऐसा क्यों कहते हो ? सदा जलसमूह में तो रहते हो, (इसलिए) ऐसा न कहो कि 'जल लाओ', 'समुद्र की ओर देखो; यह जल से प्रत्यक्ष भरा है।'

तब मच्छ बोला कि – यदि तुम ऐसा कहते हो, यह बात तुम मानते हो ? (तो) तुम चिदानन्द प्रत्यक्ष हो; चेतना है तो, ऐसा विचार तुमने किया है। अब तुम हमसे पूछने आए हो, परन्तु चिदानन्द हंस परमेश्वर तुम्हीं हो; इसलिए स्थिर होकर (स्व-अवलोकनपूर्वक) सन्देह छोड़ो, अपने चैतन्यस्वरूप का अनुभव करो; पर के अनादियोग में भी आत्मा ज्यों का त्यों है; पर में अत्यन्त गुप्त हुआ है; तथापि देखने का स्वभाव नहीं गया, ज्ञानभाव नहीं गया, परिणाम (पररूप) नहीं हुए हैं। पर के आवरण से आवृत्त हुए, मलिन हुए; परन्तु निश्चय से अखण्ड-स्वरूप चिदानन्द अनादि का है। वह ज्यों का त्यों बना हुआ है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहीं घटा या बढ़ा नहीं है, (मात्र) भ्रम-कल्पना से स्वरूप भूला है। पर को ही स्व मानने से क्या हुआ[१] ? सो कहते हैं -

जैसे कोई हाथ में रहे हुए चिन्तामणि को भूलकर, काँच के टुकड़े को रत्न मानकर चलाए तो वह रत्न नहीं हो जाता और चिन्तामणि को काँच जाने तो वह काँच नहीं हो जाता; चिन्तामणिपना नहीं जाता; उसीप्रकार आत्मा को पर जाने तो पर नहीं हो जाता और पर को आत्मा जाने तो वह आत्मा नहीं हो जाता।[२] वस्तु अपने स्वभाव का त्याग किसी काल नहीं करती। वस्तु वस्तुत्व को नहीं छोड़ती, अपने द्रव्य को नहीं छोड़ती, अपने प्रमाण को नहीं छोड़ती, अपने प्रदेश को नहीं छोड़ती, इत्यादि भाव को नहीं छोड़ती; इसलिए वह अनादिप्रदेश प्रमाण को (अनादि से चले आ

---

१. निहचै निहारत ही आतमा अनादि सिद्ध,
आप निजभूल ही तैं भयौ विवहारी है।
ज्ञायकसकति यथाविधि सो तो गोप्य दई,
प्रगट अज्ञानभाव दशा विसतारी है।
अपनो न रूप जानै और ही स्यो और माने,
ठाने बहु खेद निज रीति न सँभारी है।
ऐसे तो अनादि कहो कहा सिद्धि साधी,
अब नैकहू निहारौ निधि चेतना तुम्हारी है॥४७॥ - ज्ञानदर्पण

२. ज्ञान उपयोग योग जाकौ न वियोग होय,
निहचैं निहारै एक तिहूँ लोक भूप है।
चेतना अनन्त चिद्‌रूप सासतौ विराजमान,
गति गति भम्यौं तोऊ अचल अनूप है।
जैसें मणिमाँहिं कोइ काँचखण्ड मानै तोऊ,
महिमा न जाय वामैं वाही को सरूप है।
ऐसे ही सम्भारिकै सरूपको विचार्यो में,
अनादि को अखण्ड मेरौ चिदानन्दरूप है॥३०॥ - ज्ञानदर्पण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहे अपने प्रदेशप्रमाण को) नहीं छोड़ती। (वस्तु) शुद्ध-अशुद्ध दोनों अवस्था में अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की दशा नहीं छोड़ती। (उसकी) महिमा अनन्त अमिट है, (अर्थात्) किसी की मिटायी नहीं मिटती, निश्चय से जो है सो है। (इसलिए) निज-वस्तु को श्रद्धान, ज्ञानादि अनन्त गुणमात्र (रूप) जानकर अनन्तसुख करे तो सुखी हो। उपाय से उपेय को प्राप्त किया जाता है। वह उपेय, आनन्दघन परमात्मा परमेश्वर है। उसका उपाय इसलिए करना कि 'संसार-अवस्था में ही शरीर में कर्मबन्ध से गुप्त हुआ, परभावना से दुःखी हुआ, अपना परमेश्वरपद नहीं पाया'। उसका उपाय हो तो उपेय को प्राप्त करे। वह उपाय कहा जाता है -

अपने स्वरूप को प्राप्त करने का उपाय, अपना उपयोग है। अन्य[१] उपाय तप-जप-संयमादि शुभकर्म हैं। जिसमें परमात्मा की भक्ति, शुभ भी प्रतीति से, कारण भी है; क्योंकि ध्यान से कार्य की सिद्धि होती है। ग्रन्थ-उपदेश भी कारण है; परन्तु उपयोग आने पर शुद्ध होता है। इससे उपयोग की एकदेश शुद्धता की वृद्धि ज्यों-ज्यों हो त्यों-त्यों मोक्षमार्ग में चढ़ता है। यह श्री जिनेन्द्र भगवान का निराबाध उपदेश है। सकल उपाधि अनादि से लगी आ रही है (किन्तु) जब उपयोग से समाधि लगे तब साक्षात् शिवपन्थ सुगम होता है। अनेक सन्त, स्वरूप-समाधि धर-धरकर पार हुए हैं। ●

१. यह कथन निमित्त से है।

मैं देह न न मन न वाणी सभी का कारण नहीं ॥१६०॥

- **प्रवचनसार, गाथा १६०, पृष्ठ-२४७**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधि वर्णन

अब कुछ समाधि वर्णन करते हैं –

समाधि तो प्रथम ध्यान होने से होती है। वह ध्यान एकाग्र–चिन्तानिरोध होने से होता है। वह चिन्तानिरोध राग–द्वेष को मिटाने पर होता है। वह राग–द्वेष इष्ट–अनिष्ट–समागम मिटाने पर मिटता है। इससे जो जीव समाधि–वाँछक हैं, वे इष्ट–अनिष्ट का समागम मिटाकर, राग–द्वेष को छोड़कर (अन्य) चिन्ता मिटाकर ध्यान में मन धरकर, चित्स्वरूप में समाधि लगाकर निजानन्द को भेटो। स्वरूप में वीतरागता से ज्ञानभाव हो तब समाधि उत्पन्न होती है (और) वह अपने स्वरूप में मन लीन करता है। द्रव्य–गुण–पर्याय में परिणाम लीन (रहते हैं), स्वसमय समाधि ऐसी होती है।

तब इन्द्रादि सम्पदा के भोग रोगवत् भासते हैं। 'द्रव्य[१]' ऐसा नाम द्रवण से होता है। परिणाम में गुणों को द्रवे (प्राप्त हो) वह द्रव्यत्वलक्षण है; इसलिए गुणद्रव्य में (गुणसमुदायरूप द्रव्य में) परिणाम लीन होते हैं। गुणद्रव्य में द्रव्यत्व लक्षण है। जब परिणाम से द्रव्यगुण मिल गए, तब द्रव्यत्व की एकदेशता (परिणाम की एकदेशलीनता) साधक को ऐसी हुई कि वह अनेक परीषह की वेदना नहीं वेदता है। रसास्वाद में लीन आनन्दरस तृप्त हुआ। जब मन परमेश्वर में मिलकर लीन होता है, (वहाँ से बाहर) नहीं निकलता; परमानन्द का वेदन करता है, तब स्वरूप की धारणा होती है।

१. गुणान्द्रवन्ति गुणैः वा द्रूयन्त इति द्रव्यं। – सर्वार्थसिद्धि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निरन्तर जहाँ अचलज्योति का विलास अनुभव-प्रकाश में हुआ, (वहाँ) उपयोग में परिणाम जुड़े। ज्यो-ज्यों दर्शन-ज्ञान-चेतना अनूप, अखण्डित, अनन्त गुणमण्डित स्वरूप को जानकर रसास्वाद ले, त्यों-त्यों परविस्मरण होकर, पर उपाधि की लीनता मिटकर, समाधि प्रकटती है; तब सम्यक्प्रकार से उत्कृष्ट स्वरूपवेत्ता होता है। सम्यग्ज्ञान होने पर वस्तु की महिमा जानता है, जानने पर आनन्द होता है। ज्ञान, ज्ञान को जानता है, ज्ञान दर्शन को जानता है, ज्ञान सर्वगुणों को जानता है, द्रव्य को जानता है, पर्याय को जानता है, एकदेश भेद से साधकज्ञान जानता है। ज्ञान से वस्तु को जानने पर परमपद प्राप्त करता है। उसके जैसा (परमपद जैसा) सुख परोक्ष ज्ञान में भी है। प्रत्यक्ष प्रतीति में वेदता है। वहाँ आनन्द ऐसा होता है। सम्प्रज्ञात-समाधि में दुःखादि की वेदना प्रत्यक्ष होने पर भी वेदता नहीं है। विधान, स्वरूप वेदने का है। मन विकार जितने अंश में विलय हो प्राप्त हुए उतनी समाधि हुयी, (और) सम्यग्ज्ञान से वस्तु का जितना भेद (रहस्य) गुणों (सामर्थ्य) द्वारा जाना उतना सुख-आनन्द बढ़ा। विश्राम होने से स्वरूप-स्थिरता प्राप्त की, समाधि लगी, ज्ञानधारा निरावरण हुयी। ज्यों-ज्यों निजतत्त्व जानता है त्यों-त्यों केवल विशुद्धता द्वारा ज्ञानपरिणति परम पुरुष के साथ मिलकर निज-महिमा को प्रकट करती है, वहाँ अपूर्व आनन्दभाव की झलक (पहचान) हो, तब स्वरूप की समाधि कहते हैं।

वहाँ आकुलता का मूल जो अनादि के अज्ञान का भ्रम-भाव था वह मिटा। अनात्म के अभ्यास के अभाव से सहजपद का भाव भाने से भव-वासना विलय को प्राप्त होती है; गुण का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निधान ऐसा परमपद का स्थान दिखता है। प्रमाणभाव द्वारा अम्लान भगवान के सकल पदार्थों को जाननेरूप ज्ञान की प्रतीति में नवनिधान आदि जगत का विधान (सुख) झूठ भासित हुआ; तब आत्मभाव प्रकाशित हुआ। (उसकी) पहचान (स्वयं) अपने से की, तब चेतनभाव लिया। शुद्ध धारणा धरके, निजभावना करके, शिवपद को अनुसरके, आनन्दरस से भरके, भवबाधा हरके, जहाँ जितनी सदा प्रमोदपूर्वक अबाधा (करी) वहाँ उतनी शक्ति बढ़ी। शिवसुखदायी, चिदानन्द की अधिकायी, ग्रन्थ ग्रन्थों में (प्रत्येक सद्ग्रन्थ में) गायी (कही) सो समाधि से प्राप्त हो जाती है।

इस स्वरूपानन्द-पद का भेदी (मर्मज्ञ) समाधि से होता है। वस्तु के स्वरूप को, गुण के जानने से जानता है। गुण का पुञ्ज वस्तुमय है। वस्तु अभेद है। गुणगुणी का भेद गुण से हुआ। इसलिए गुण का भेद, अभेद वस्तु को जानने में (पहचानने में) कारण है।

वितर्क अर्थात् द्रव्य का शब्द, उसके अर्थ को माना। भावश्रुत, श्रुत में स्वरूपानुभव-करण को कहा। परमात्मा को उपादेय कहा। उसी रूप भाव सो भावश्रुतरस, उसे पी। अमरपद समाधि से है। विचार, अनादि के भवभावना का नाश, चिदानन्द के द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार न्यारा जानकर, दर्शन-ज्ञान की वानगी को पहचानकर, चेतन में मग्न होने पर, ज्यों-ज्यों उपयोगस्वरूप लक्षण को लक्ष्य कर (पहचान कर) रसास्वाद पिए, त्यों-त्यों स्व-परभेद विचार में (ज्ञान में) सारपद को पाकर समाधि लगी। जिसकी अपार महिमा है - ऐसे परमपद को प्राप्त हुआ। अनादि से पर-इन्द्रिय-जनित आनन्द मानता था वह मिटा। ज्ञानानन्द में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधि हुयी, वस्तु को वेदकर आनन्द हुआ, गुण को वेदकर आनन्द हुआ। परिणति ने स्वरूप में विश्राम लिया, तब आनन्द हुआ। एकदेश स्वरूपानन्द ऐसा है।

जहाँ इन्द्रिय-विकारबल विलय को प्राप्त हुआ है, मन-विकार नहीं है, सुख अनाकुल रसरूप समाधि जागी है, "अहं ब्रम्ह", "अहं अस्मि" (मैं ब्रम्ह हूँ; मैं हूँ) ऐसी ब्रम्ह-प्रतीति की भावना में, स्थिरता में समाधि हुयी, वहाँ आनन्द हुआ। पहले तो कुछ एक काल तक 'अहं' (मैं) ऐसा भाव रहता है, पश्चात् समाधि में 'अहंपना' तो छूटे (और) 'अस्मि' अर्थात् 'हूँ' ऐसा भाव रहे, वहाँ 'दर्शन-ज्ञानमय हूँ, मैं समाधि में लगता हूँ' ऐसे 'मैं' का रहना भी विचार है।

वह (विकल्प) मिटने पर विशेष इसप्रकार होता है कि - द्रव्यश्रुतवितर्कपना मिटकर स्वरूप में एकत्व हुआ, एकतान रसरूप में मन लीन होकर समाधि लगी, वहाँ विचारभेद मिटा। वीतरागरूप अनुभव-स्वसंवेदनभाव हुआ। एकत्वचेतना में मन लगा, लीन हुआ, वहाँ इन्द्रियजनित आनन्द का अभाव होने से स्वभावदर्शन[१] (स्वभावज्ञान) का रसास्वाद करने से आनन्द में वृद्धि हुयी, वहाँ जो 'अस्मिभाव' ज्ञानज्योति में था वह भी थका (अटका, शांत हुआ)।

अब विवेक का स्वरूप, परिणतिशुद्धि का (निर्जरा का) स्वरूप इस प्रकार है - जहाँ परमात्मा का विलास निकट हुआ, वहाँ अनन्तगुण के रस को पुनः परिणाम में वेदन कर समाधि लगी। निर्विकार धर्म का विलास-प्रकाश हुआ, प्रतीति में रागादि

१. स्वभाव लखाव का।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहित भावना में मनोविकार अधिक गया तब आगे अंश प्रज्ञात हुआ, तब पर के जानने में विस्मरणभाव आया, तब केवलज्ञान अति शीघ्रकाल में प्राप्त करता है, परमात्मा होकर लोकालोक को जानता है। ऐसी अनुभव की महिमा, मन् का विकार मिटने पर होती है। वह मन-विकार, मोह का (दर्शन मोह का) अभाव होने पर मिटता है। दर्शनमोह, सर्व जीवों का महारिपु (जहरीला वैरी) है। अनादि से संसारी जीवों को चौरासी में नचाता है और संसारी जीव हर्ष मान-मानकर भवसमुद्र में गिरता है, कूदता है, (तथापि) अपने को धन्य मानता है। देखो! भूल से कैसी धृष्टता पकड़ी है। अनन्त सुखदायक यथार्थ निजनिधि को नहीं सँभालता!! इसलिए उन्हीं जीवों को श्रीगुरु-उपदेशामृत पीने-योग्य है। जिससे दर्शनमोह मिटे (और) अनुभव प्रकटे, वह कहा जाता है –

प्रथम, श्री जिनेन्द्रदेव की आज्ञा की प्रतीति करे, तत्पश्चात् भगवत्प्रणीत उपादेय तत्त्व विचारे कि – अनन्त सुखधाम, अमल, अभिराम, आत्माराम, पररहित चैतन्यप्रकाश उपादेय है, पर हेय है। स्व-पर भेदज्ञान के निरन्तर अभ्यास से शुद्धचैतन्यतत्त्व की लब्धि (प्राप्ति) होती है, उससे राग-द्वेष-मोह मिटता है, कर्म का संवर होता है, तब कर्म मिटने से निजज्ञान से निर्जरा होती है; तब सकल कर्म क्षय (रूप) निजपरिणाम होने से भावमोक्ष होता है; तब द्रव्य मोक्ष होता ही होता है। इसलिए भेदज्ञान के अभ्यास से परमपद सिद्ध (होता) है। वह भेदज्ञान प्रकट करने का विचार करने में आता है –

ज्ञानभाव-जाननेरूप उपयोग-विभावभाव को अपना जानता है; उस विभाव को जानने की शक्ति को आत्मा अपनी जाने।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाननेरूप (ज्ञानरूप) परिणमन करे। ज्ञानरस पिए। विभावों को न्यारा-न्यारा जाने। विभावरूप कर्मधारा, ज्ञानपरिणामरूप सुधाधारा दोनों धाराओं को न्यारी-न्यारी जाने। पुद्गल-अंश आठ कर्म और शरीर भिन्न हैं, जड़ हैं; चेतन उपयोगमय है; (ऐसा) उनका विवेचन (पृथक्करण) करे। भिन्न प्रतीतिभाव करे कि शरीर प्रत्यक्ष जड़रूप रहता है, सदा (कभी भी) जिसमें चेतना का प्रवेश नहीं होता, चेतना जड़ नहीं होती; यह प्रत्यक्ष सर्वग्रन्थ कहते हैं, सर्वजन कहते हैं, जिनवाणी विशेषरूप से कहती है; (तथा) अपने जानने में भी आता है। जड़ शरीर अनन्त छोड़े; (किन्तु) दर्शन-ज्ञान सदा साथ बने रहे; इससे वर्तमान में भी देखने-जाननेवाला मेरा यह उपयोग, वही मेरा स्वरूप है। इससे उपयोगी-अनुपयोगी को विचारने से जड़-चेतन की प्रतीति होती है। विभाव कर्मचेतना है। कर्म - रागद्वेष-मोहरूप भावकर्म - उनमें चेतना परिणमती है, तब चिद्विकार होता है। उस चिद्विकार को अपना मानकर अपने को मलिन किया है। केवलज्ञानप्रकाश आत्मा का विलास है, उसे नहीं सँभालता। मोहवश से ग्रन्थ को सुनता है तथा जानता है; शरीर विनशेगा, परिवार, धन, स्त्री, पुत्र भी नहीं रहेंगे; परन्तु उनसे प्रेम करता है; नर का बन्ध हो, (ऐसे) अनन्तदुःख के कारण को सुख समझता है।

ऐसी अज्ञानता मोहवश से है; इसलिए ज्ञानप्रकाशरूप मेरा उपयोग सदा मेरा स्वरूप है, इससे सदा मेरा स्वभाव मुझमें है। कभी भी जिसका वियोग न हो, अनन्त महिमा भण्डार, अविकार, सारसरूप (सारस्वरूप), दुर्निवार मोह से रहित हो (ऐसे) अनुपम आनन्दघन की भावना करना। जड़ और परजीवरूप सर्व पर का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रत्येक अंश स्वरूप से भिन्न जानकर दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि अनन्त गुणमय मेरा स्वरूप है - ऐसा भाव प्रतीति में करने से, पर न्यारा भासित होता है। विभावरूप उफदमल (औपाधिकभाव) अपने भ्रम से हुआ, इससे भ्रम मिटाने से विभाव नहीं होता, स्वभाव प्रगट होता है। अनादि के अज्ञान से ज्ञान गुप्त हुआ है। शुद्ध-अशुद्ध दोनों दशा में ज्ञान शाश्वत शक्ति सहित है। चिद्विकारभाव क्रोधादिरूप होने पर होते हैं, उन भावों को मिटाकर, स्वयं निर्विकार सहजभाव को, अपने में आचरण-विश्राम-स्थिरता के परिणाम करके, करो। जो बाह्य में परिणाम उठते हैं, वे अशुद्ध हैं, उन परिणामों का कर्ता अशुद्ध होता है। चेतनानाम (चेतनाभाव) बाह्य विकार में नहीं आता। उपयोगरूप अपनी इस ज्ञायकशक्ति को यथार्थ (बराबर, निश्चय से) जानो तो निजरूप स्थिर होगा। चेतन-उपयोग की प्रतीति करते-करते, पर से स्वामित्व मिटा-मिटाकर, स्वरूपरसास्वाद चढ़ता-चढ़ता जाए; तब शुद्धोपयोग स्वरसपूर्ण विस्तार को प्राप्त हो और तब कृतकृत्य होकर रहे। यह श्री जिनेन्द्रशासन में स्याद्वाद-विद्या के बल से निजज्ञानकला को प्राप्त कर अनाकुल पद को अपना बनाए। यहाँ सर्व कहने का तात्पर्य यह है कि पर को अपना बनाना सर्वथा मिटाकर स्वरस-रसास्वादरूप शुद्ध उपयोग करो। राग-द्वेष विषय-व्याधि (पाठान्तर-विषमव्याधि) है, उसे मिटा-मिटाकर परमपद अमर होता है। अतीन्द्रिय, अखण्ड, अतुल, अनाकुल सुख को अपने पद में स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से वेदो। सर्व सन्त-मुनिजन पंच परमगुरु स्वरूप का अनुभव करते हैं। इसलिए महाजन जिस पंथ को पकड़कर पार हुए वही अविनाशीपुर का पंथ ज्ञानीजनों को पकड़ना अनन्त कल्याण का मूल है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चेतनापरिणाम चेतनद्रव्य में लीन होने से ज्ञानज्योति का अचलपद उद्योत होता है। "एकदेश उपयोग शुद्ध करके स्वरूपशक्ति को ज्ञानद्वार में जानन-लक्षण द्वारा (ज्ञानलक्षण द्वारा) जानना"। अपना लक्ष्य-लक्षण प्रकाश अपने में भासे, तब सहज धारावाही निजशक्ति व्यक्त (प्रकट) करते-करते सम्पूर्ण व्यक्तता करे, तब यथावत्, जैसा तत्त्व है वैसा प्रत्यक्ष जानता है। देखो! कोई भगल-विद्या द्वारा कंकड़ों को नीलम, हीरा, मोती बनाकर दिखलाता है, झाड़ू के तिनके को सर्प बनाकर दिखलाता है, वहाँ वस्तु लोगों को सच्ची दिखलायी देती है, परन्तु वह सच्ची नहीं है; उसीप्रकार पर में निजपना मानकर अपने को सुख की कल्पना करता है, वह सर्वथा झूठ है। सुख का प्रकाश परम अखण्ड चेतना के विलास में है। शुद्धस्वरूप स्वयं पर में खोज करे तो नहीं पाएगा। बारम्बार इसलिए कहा जाता है – अनादि का अविद्या में डूब रहा है, मोह की अत्यन्त निविड़ गाँठ पड़ी है, जिससे स्वपद की भूल हुयी है। भेदज्ञान से अमृतरस पिए, तब अनन्त गुणधाम, अभिराम आत्माराम की अनन्तशक्ति की अनन्त महिमा प्रकट करे, यह इस सर्व कथन का मूल है। पर-परिणाम को दुःखधाम जानकर, पर की मान्यता मिटाकर, स्वरस का सेवन करना और निदान पर (लक्ष्य पर) दृष्टि लगाना।

दुःख का मूल ऐसे विनश्वर पर का अनादि से सेवन किया, इससे जन्मादि दुःख हुए। अब नरभव में सत्संग से तत्त्वविचार का कारण मिला, तो फिर किसलिए अनादि के भव-संतान की बाधा करनेवाले परभावों का सेवन करें? जिससे यह अखण्डित, अनाकुल, अविनाशी, अनुपम (और) अतुल आनन्द हो, वही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाव करना चाहिए। जिन भावों को मनोहर जानकर मोह करता है वह अपने आत्मा को झूठी अविद्या के विनोद द्वारा ठगता है। सकल जगत्चरित्र झूठा ही बना है, वह मोहवश नहीं जानता। यदि स्वरससेवन (करे) तो परप्रीति की रीति रंच भी न धारे, (और) अनन्त महिमा भण्डार को ज्ञानचेतना में अपनेरूप अनुभवे। 'जो-जो उपयोग उठता है सो मैं हूँ' – ऐसा निश्चय भावों में करेगा, वह तरेगा ही तरेगा। अनादि विचार करे कि अनादि से पर में अपने को जानकर दुःख सहा। अब श्रीगुरु ने ऐसा उपदेश[१] कहा है उसे सत्यरूप मानते ही श्रद्धा से मुक्ति का नाथ होता है, इसलिए धन्य है सद्गुरु को कि जिन्होंने भवगर्भ में से निकलने का उपाय बतलाया। इससे श्रीगुरु जैसा उपकारी कोई नहीं है – ऐसा जानकर श्रीगुरु की प्रवचन-प्रतीति से पार होना।

जितना अनुराग विषयों में करता है, मित्र, पुत्र, भार्या, धन, शरीर में करता है – उतनी रुचि, श्रद्धा, प्रतीतिभाव स्वरूप में तथा पंच परमगुरु में करे तो मुक्ति[२] अति सुगम हो। पंच परमगुरु

---

१. भैया जगवासी तू उदासी ह्वैकै जगतसौं,
एक छः महिना उपदेश मेरौ मानु रे।
और संकल्प-विकल्पके विकार तजि,
बैठिकै एकान्तमन एक ठौर आनु रे।
तेरौ घट सर तामैं तू ही है कमल ताकौ,
तू ही मधुकर ह्वै सुवास पहिचानु रे।
प्रापति न ह्वै है कुछ ऐसौ तू विचारतु है,
सही ह्वै है प्रापति सरूप यों ही जानु रे॥३॥

– समयसार नाटक, अजीव द्वार

२. जैसी भक्ति हराममैं तैसी जिनमें होय।
भेदज्ञानतैं सहज लहि परमातमपद सोय॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का राग भी ऐसा है; जैसे संध्या की लाली सूर्य की अस्तता का कारण है, प्रभात की संध्या की लाली सूर्योदय को करती है। उसीप्रकार विविध (पंच प्रकार के) परमगुरु के बिना, शरीरादि का राग केवलज्ञान की अस्तता का कारण है, (और) पंच परम-गुरु का राग केवलज्ञान के उदय का कारण है। इसलिए विशेषतः परमधर्म के दाता के प्रति परमधर्म के अनुभव के प्रति राग सुखदायक है। अर्थ (लक्ष्मी) अनन्त अनर्थ को करता है, वह किसी अर्थ का नहीं है; अर्थ तो वही कि जो परमार्थ को साधे। उसके द्वारा काम से क्या काम? निजकामना से काम, वह सुकाम को सुधारती है। मिथ्यारूपधर्म अनन्त संसार को करता है, वह धर्म कैसा? सर्वज्ञप्रणीत निश्चय निजधर्म है, व्यवहार रत्नत्रयरूप कारण है। मोक्ष वही कि जो पुनः कर्मबन्ध न करे, (इसलिए) ऐसा विचारना कि - जिसप्रकार दीपक को मन्दिर में रखने से प्रकाश हो तो सर्व सूझता है, उसीप्रकार ज्ञानी को ज्ञानप्रकाश से सर्व सूझता है।

किसप्रकार ? ज्ञान द्वारा विचारे - शरीर में चेतन है। दृष्टि द्वार से देखता है, ज्ञानद्वार से जानता है। अपने उपयोग द्वारा स्वयं चेतन हूँ। स्वयं ऐसा जाने कि देह में देह को देखनेवाला मेरा स्वरूप चेतनरूप है - तो जड़ को चलाता[१] है, चेतन प्रेरक है। अचेतन अनुपयोगी जड़ देखता नहीं है, जानता नहीं है यह तो प्रसिद्ध है। यदि शरीर देखता-जानता हो तो जब जीव गत्यान्तर होता है, तब शरीर क्यों नहीं देखता ? इसलिए इस देखने-जानने

१. यह कथन निमित्त से है। निमित्त कथन करके देखने-जाननेवाला स्वयं चेतनारूप है - ऐसा निश्चित करते हैं। वास्तव में तो जड़ जड़ को चलाता है, चेतन जड़ को नहीं चलाता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्वारा अपने को चेतनरूप प्रत्यक्ष बराबर निश्चय करके, स्वरूप को चेतन मानकर, अचेतन का अभिमान छोड़ना (वह) मोक्ष का मूल है।

शरीर वासना को त्यागकर, अपना स्वरूप अवगाढ़ चेतनस्वरूप करके (चेतनस्वरूपरूप) माना। उज्जड़ को बस्ती मानता है (और) चेतनबस्ती को उज्जड़ मानता है, ऐसी भूल मिटाकर, तेरी चेतनाबस्ती शाश्वत है, वहाँ बसे तो अपना अनन्तगुणनिधान न लुटाए, निजधन का धनी परम शाह हो, तब अनन्त सुखव्यापार में अविनाशी लाभ हो। अनादि से पर में अपनत्व माना, पर को ग्रहण करते-करते परवस्तु का चोर हुआ। जगत् में (जन्मादि के) दुःखदण्ड भोगता है। विवेक राजा का अमल (शासन) हो और परग्रहणरूप चोरी मिटे, तब स्वयं शाहपद धारण कर सुखी हो। तब निजपरिणति रमणी से अपना निजघर स्थिर करे।

अनादि से अस्थिरपद का प्रवेश था, उसे त्यागकर अखण्ड अनिवाशी पद में पहुँचे। स्वरूप का अनुभव वह साक्षात् शिवमार्ग (मोक्षमार्ग) है, स्वरूप का अनुभव वह शिवपद है, अनुभव त्रिभुवनसार है, अनुभव अनन्त कल्याण है, अनुभव महिमा भण्डार है, अनुभव अतुल बोधफल है, अनुभव स्वरस है, अनुभव स्वसंवेदन है, अनुभव तृप्तिभाव है, अनुभव अखण्डपद सर्वस्व है, अनुभव रसास्वाद है, अनुभव विमलरूप है, अनुभव अचल ज्योतिरूप को प्रकट करनेवाला है। अनुभव, अनुभव के रस में अनन्त गुना रस है, पंच परमगुरु अनुभव से[१] हुए और होंगे।

१. गुण अनन्त के रस सबै अनुभवरसके माँहिं।
यातैं अनुभौ सारिखौ और दूसरो नाँहिं ॥१५३॥ -ज्ञानदर्पण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सकल संत, महंत, भगवन्त अनुभव में लगे हैं; इसलिए जो गुणवान हैं वे अनुभव करो। सकल जीवराशि स्वरूप को अनुभवो। इस अनुभव-पंथ को निर्ग्रन्थ साध-साधकर भगवान हुए।

परिग्रहवान सम्यग्दृष्टि भी कभी-कभी अनुभव करते हैं, वे धन्य हैं, मोक्ष के साधक हैं। जिससमय स्वरूप-अनुभव करता है, उससमय सिद्धसमान अम्लान आत्मतत्त्व को अनुभवता है। एकदेश स्वरूपानुभव में स्वरूपानुभव की सर्वस्व जाति पहचानी है। अनुभव पूज्य है, परम है, धर्म है, सार है, अपार है, उद्धार करता है, अविकार है, भवपार करता है, महिमा को धरता है, दोष को हरता है, उससे चिदानन्द का सुधार है।

(सवैया)

देव जिनेन्द्र मुनीन्द्र सबै अनुभौ रस पीयकै आनंद पायौ;
केवलज्ञान विराजत हैं नित सो अनुभौ रस सिद्ध लखायौ।
एक निरञ्जन ज्ञायकरूप अनूप अखण्ड स्वस्वाद सुहायौ;
ते धनि हैं जगमाँहिं सदैव सदा अनुभौ निज आपकौं भायौ।।१।।

(आडिल्ल)

यह 'अनुभव-प्रकाश' ज्ञान निज दाय है;
करि याकौ अभ्यास संत सुख पाय है।
यामैं अर्थ अनूप सदा भवि सरद है;
कहै "दीप" अविकार आप पदकौं लहे।।१।।

इति श्री दीपचन्द साधर्मी कृत 'अनुभव-प्रकाश' नामक ग्रन्थ सम्पूर्ण। ●

पंच परमगुरु जे भये जे होंगे जगमाँहिं।
ते अनुभौ परसादतैं यामैं धोखो नाँहिं ॥१५४॥ - ज्ञानदर्पण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परमानंददशा प्रगट हो...

जीव अनादि से अपनी संभाल न करके पर में अपना स्वरूप मानता है। यह मान्यता कर्म के कारण नहीं हुई है। वर्तमानदशा में स्वयं को पर के अस्तित्व में मानकर स्वरूप को भूल गया है, अत. विपरीतदशा हुई है। स्वयं पर्याय में पुण्य-पाप कर रहा है, किसी ने कराये नहीं हैं। स्वयं सहज आनन्दस्वभाववाला होने पर भी अपनी संभाल न करके पर को अपना मान रहा है। शरीर, पुत्र, मकान आदि बाह्य संयोग जीव की पर्याय में नहीं आते, जीव मात्र कल्पना-राग किया करता है। पर में अपने को मानकर स्वरूप को भूल रहा है। उन्हीं परिणामों को सुलटाकर स्वसन्मुख होने से मुक्तदशा को प्राप्त करता है। वे ही परिणाम अर्थात् पर्याय में जो विपरीत (उल्टे) परिणाम कर रहा है, उन्हें सुलटे कर ऐसा कहते हैं। द्रव्य-गुण बदलते नहीं, क्योंकि वे तो कूटस्थ हैं, किन्तु वर्तमान परिणाम परसन्मुख झुके हैं, उन्हें स्वभावसन्मुख झुका सकते हैं। आत्मा अनन्त गुणों का पिण्डरूप है, उसको निज मानना और पर का विस्मरण करना। (कोई करावे - ऐसा नहीं कहा) यदि इसप्रकार जीव करे तो आत्मा की परमानंददशा प्रगट हो।

- अनुभवप्रकाश प्रवचन से साभार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्री परमात्मने नमः

श्रीदीपचन्दजी कासलीवाल-प्रणीत

आत्मावलोकन

अनुवादक

पण्डित राजकिशोर जैन, बड़ौत

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट

173/175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

अन्य कोई उपाय नहीं है...

श्रद्धा में निर्णय किया कि ज्ञानस्वभाव जाननेमात्र है, राग करे या निमित्त को लाये-हटाये - ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है, किन्तु वह तो राग अथवा निमित्तादि का जाननेवाला है। ज्ञान निश्चय से अपने को जाननेवाला और स्व-पर प्रतिभासरूप है। दर्शन देखनेमात्र है। विकार को उत्पन्न करे, नष्ट करे अथवा संयोगों को लावे-हटावे - ऐसा उसका स्वरूप नहीं। सत्ता उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त है। निरन्तर नई दशा उत्पन्न हो, पूर्व पर्याय नष्ट हो और स्वयं कायम रहे - ऐसी सत्ता है। अन्य का कुछ करे ऐसा आत्मा का स्वरूप नहीं है तथा वीर्यगुण से पर को चलाये अथवा पर को समझाये - वैसा बल आत्मा में नहीं है। वस्तु में अनन्त गुणों की सामर्थ्य की प्राप्तिमात्र कार्य वीर्य का है - ऐसी श्रद्धा करनी चाहिए। आत्मा केवल ऐसे गुणों का पिण्ड है - ऐसा प्रतीतिभाव करने को श्रद्धा कहते हैं। आत्मा ऐसे गुणोंवाला है - ऐसा जो देव-शास्त्र-गुरु कहते हैं, उनके प्रति रागसहित श्रद्धा को व्यवहार श्रद्धा कहते हैं और निजस्वरूप की श्रद्धा को निश्चय श्रद्धा कहते हैं - ऐसी श्रद्धा करने से और आनन्दकन्द में कैलि करने से सुखी हुआ जाता है, अन्य कोई उपाय नहीं है।

- अनुभवप्रकाश प्रवचन से साभार

ॐ

श्री परमात्मने नमः

आत्मावलोकन

देवाधिकार

मंगलाचरण

दप्पणदंसणेण य ससरुवं पस्सदि कोवि णरो।
तह वीयरायायारं दिट्ठा सयं राये तमहं हि ॥१॥

दर्प्पणदर्शनेन च स्वस्वरूपं पश्यति कोपि नरः।
तथा वीतरागाकारं दृष्ट्वा स्वयं रागे तत् अहं हि ॥१॥

यथा कोपि नरः दर्पणदर्शनेन स्वस्वरूपं पश्यति तथा रागे सति च पुनः वीतरागाकारं बिम्बं दृष्ट्वा तत् स्वयं अहं हि।

अर्थ :– जैसे कोई पुरुष दर्पण देखकर उसमें अपने मुख का रूप निःशंकरूप से देखता है, उसीप्रकार निश्चय से स्वयं सरागता में होते हुए भी वीतराग प्रतिबिम्ब को देखकर वह वीतराग ही अपने आपमें, निःसंदेह मैं ही हूँ – ऐसा जानता है।

भावार्थ :– दर्पण के दृष्टान्त द्वारा यहाँ इतना भाव लेना कि दर्पण का देखना और उसमें अपने मुख का देखना होता है। इस दृष्टान्त का इतना भाव लेना। वह दृष्टान्त इसप्रकार है – इस संसार में किसी पुरुष को दर्पण देखने से (उसको) अपने मुख की भले प्रकार प्रतीति होती है – ऐसा निःसंदेहरूप से दिखाई देता है। इस दृष्टान्त की भाँति यह जो आसन्न भवि (निकट भव्य) जीव

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है; वह जीव भी जब जिस काल में सर्वथा सर्वकाल में सर्वप्रकार से वीतरागरूप परिणमित हुआ, तब उस काल में जैसे यह प्रत्यक्ष जो पद्मासन या कायोत्सर्ग पाषाण की मूर्ति का आकार है, (उनका) न सिर काँपता है; न पलक, भौंह, नेत्र, नासिका काँपती है; न जीभ, दाँत, ओंठ काँपते हैं; न कंधा, भुजा, हाथ, अंगुली काँपती है; न हृदय, पेट, जाँघ, पिंडली, पैर काँपते हैं; न रोम तक हिलते हैं, न नख बढ़ते हैं, न बाल बढ़ते, न हिलते हैं, न उठते हैं, न बैठते हैं; जैसे प्रत्यक्ष इस पाषाण की मूर्ति को देखते हैं; उसीप्रकार जब यह जीव सर्वथा वीतरागरूप परिणमता है, उसीसमय यह देह परमौदारिक कायोत्सर्ग या पद्मासन आकार होती है, चेतनप्रतिमा, पाषाणप्रतिमा समान होती है। पाषाण और परमौदारिक प्रतिमा में भेद कुछ नहीं होता, दोनों वज्र की मूर्ति हैं। वीतराग जीव की ऐसी चेतनमूर्ति अथवा स्थापना मूर्ति, इन दोनों को निकट भव्य जीव देखकर मन में ऐसा विचार करता है – वह विचार कैसा होता है ?

वीतराग तो परमात्मदशा है, परमेश्वर है, सर्वज्ञ है। वीतराग का अर्थ यह है कि वीत अर्थात् गया है; राग अर्थात् रंजना होना; ऐसा भाव तन्मयरूप हो जाये उसको वीतराग कहते हैं। इससे यह जाना जाता है कि अपनी पूर्व अवस्था में वह पुरुष रागी था; क्योंकि गया तो तब कहलाये जब (पूर्व में) हो, अन्यथा ऐसा नाम प्राप्त न करे; अतः उसके राग था, जब राग गया तब वीतराग परमेश्वर कहलाया।

यहाँ एक दूसरा विचार आता है – जो जायेगा वह वही वस्तुत्व द्वारा उत्पन्न नहीं है। वह कोई (अन्य) वस्तु के द्वारा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(परवस्तु के आश्रय से) दोष उत्पन्न किया हुआ है और जो (स्व) वस्तुत्व से (स्वाश्रय से) उत्पन्न है, वह कभी नहीं जाता। यह प्रगट बात है। किन्तु एक बात और है, यह जो दोष है, वह उस वस्तुत्व के ही (अनित्य अस्तित्व में) उत्पन्न होता है, वस्तु बिना उत्पन्न नहीं होता है। फिर भी वह विकार काल पाकर जाता है। तब वह जो कुछ वस्तुत्व भाव है, वही रह जाता है। इसमें धोखा नहीं है।

जैसे पानी से उष्णतारूप विकार दूर हुआ और शीतल वस्तुभाव सहज ही रह जाता है। जैसे स्वर्ण से काला कलंक जिससमय दूर होता है उसीसमय सोलह वर्ण वस्तुभाव सहज ही रह जाता है; अतः यह बात ठीक है कि जो भाव जाता है, वह विकार है। उस विकार के जाने से जो कुछ वस्तुभाव है, वह सहज ही रह जाता है। इससे भले प्रकार जाना जाता है कि जिसके जब राग व्यतीत होता है-छूटता है, तब जो वस्तुत्वभाव था, वही प्रत्यक्ष रह जाता है। वह वस्तुत्वभाव तो स्वयं परमपुरुष है, वही हैं। जो कुछ स्वयं स्व वही वस्तु है। जो गया वह विकार ही था। (जो गया वह) उस पुरुष का ही कुछ भूलरूप भ्रम है। पुरुष का मूल वस्तुत्वभाव तो वह है, जो इस भूल के जाने पर रहता है।

जब इस विधि को (प्रकार) यथार्थरूप से (समझ) वीतराग की जंगम-स्थावर (चेतन या जड़) प्रतिमा देखने से विचार आया, तब ही अपनी ओर (तरफ) स्व-संबंध में विचार आया। विचार करने पर स्वयं को भी क्या देखा ? निःसंदेह स्वयं को सरागी देखा। इसप्रकार स्वयं को सरागी देखने से यह निर्णय हुआ कि जैसे यह जीव (भी पूर्व दशा में) सरागी था, (अब) वीतराग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होकर वस्तुत्वभावरूप रह गया है, वैसे ही मेरा भी विकार-राग वीतेगा (छूटेगा) तब मैं भी वस्तुत्वभाव के रूप को इसीप्रकार प्रत्यक्ष बाहर निकालूँगा (प्रगटाऊँगा)।

निःसंदेह तो मैं जो मूल वीतराग वस्तुत्वभाव है, वही मैं हूँ। उस वस्तुभाव से मैं अभेद ही हूँ और जो यह रागादि का प्रकार है, वह विकार है। कुछ वस्तुत्वभाव में तो वह नहीं है। वस्तुत्वभाव के ऊपर-ऊपर कुछ दोष उत्पन्न हुआ है। मूलरूप से मैं वही हूँ, जो इस विकार के जाने पर रह जाता है। निःसंदेह मैं वही हूँ और यह विकार का सर्व प्रसार काल पाकर जायेगा तो जाओ, परन्तु मैं तो मूल वीतरागरूप स्वभाव हूँ। तो इसप्रकार वीतराग की प्रतिमा देखने से स्वयं को ही वीतराग से अभेद सम्यक् (भलीप्रकार) जाने के परिणाम होते हैं। अतः जिसप्रकार दर्पण का देखना मुख के देखने को प्रगट करता है उसीप्रकार वीतराग की जड़, चेतन प्रतिमा का दर्शन भी संसारी जीव के वस्तुत्वभाव प्रगट करने-दिखलाने को कारण है। इसकारण इस प्रतिमा को देवत्व नाम प्राप्त हुआ। क्यों ?

(क्योंकि) इन वीतराग की प्रतिमा का देखना निःसंदेह संसारी के निजरूप दिखलाने का कारण है। इसकारण से प्रतिमा के देवत्व का कथन इसप्रकार आया है। ऐसा देवत्व अन्य स्थान पर नहीं पाया जाता। ऐसा देव इन (निज) परिणामों को, नीचे की व्यवहार-अवस्था में कारण है ॥१॥

॥इति देव अधिकारः॥

वंदनीय हो गए प्रभु, निज का वंदन कर। हुए जगत आराध्य, स्वयं का आराधन कर।
परमभाव की श्रद्धा से श्रद्धेय हो गए, आप आपको ध्याय ध्यान के ध्येय हो गए॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुरु–अधिकार

वियरायं वियरायं, जियस्य णिय ससरुओ वियरायं।
मुहु मुहु गणदि वियरायं, सो गुरुपयं भासादि सया ॥२॥

वीतरागं वीतरागं जीवस्य निजस्वस्वरूपो वीतरागं।
मुहुर्मुहुः गृणनाति वीतरागं, स गुरुपदं भासति सदा ॥२॥

वीतरागं वीतरागं जीवस्य निजस्वरूपो वीतरागं मुहुर्मुहः गृणनाति कथयति स पुरुष गुरुपदं स्थानं भासति शोभते कथयति स सदा।

अर्थ :– जीव का निजस्वरूप वीतराग है – ऐसा बारम्बार कहता है, वही गुरु पदवी को शोभित होता है।

भावार्थ :– अट्ठाईस मूलगुण, बाईस परीषह, पंचाचार आदि सहित विराजमान, परमाणुमात्र बाह्य परिग्रह नहीं है और अंतरंग में भी परमाणुमात्र परिग्रह की इच्छा नहीं है, अनेक उदासीन भावों से विराजमान है और निजजातिस्वरूप को साधते हैं, सावधान हो समाधि में लीन होते हैं, संसार से उदासीन परिणाम किये हैं, ऐसे जो जैन साधु होते हैं, अपने को तो वीतरागरूप अनुभवते ही हैं और मन को स्थिरीभूत करके जब किसी को उपदेश भी देते हैं तो अन्य सब छोड़कर जीव के एक निज वीतरागस्वरूप को ही बारम्बार कहते हैं। उनके अन्य कुछ अभ्यास नहीं है, यही एक अभ्यास है। स्वयं भी अंतरंग में स्वयं को वीतरागरूप अभ्यास करते हैं और बाह्य में भी जब बोलते हैं, तब आत्मा का वीतराग-स्वरूप है, यही वचन बोलते हैं। ऐसा वीतराग का उपदेश सुनते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही निकट-भव्य को निःसंदेहरूप से निज वीतरागत्व-रूप की सुधि होती है। इसमें संशय नहीं है। जिस साधु के वचन में ऐसा वीतराग का ही कथन है, उस जैन साधु को ही 'निकटभव्य' गुरु कहते हैं; क्योंकि अन्य कोई पुरुष तत्त्व का ऐसा उपदेश नहीं कहता है, अतः इस पुरुष को ही गुरु की पदवी शोभायमान होती है, अन्य को शोभायमान नहीं होती। यह निःसन्देह रूप से जानना।

॥इति गुरु-अधिकारः॥

श्री साधुस्तुति

(सवैया इकतीसा)

ग्यानकौ उजागर सहज-सुखसागर,
सुगुन-रतनाकर विराग-रस भरयौ है।
सरन की रीति हरै मरनकौ न भै करै,
करनसौं पीठि दे चरन अनुसरयौ है॥
धरमकौ मंडन भरमकौ विहंडन है,
परम नरम ह्वै कै करमसौं लरयौ है।
ऐसौ मुनिराज भुवलोकमैं विराजमान,
निरखि बनारसी नमसकार करयौ है॥५॥

सम्यग्दृष्टि की स्तुति

(सवैया छन्द, ८ भगण)

भेदविज्ञान जग्यौ जिन्हके घट,
सीतल चित्त भयौ जिम चंदन।
केलि करैं सिव मारग मैं,
जग माहिं जिनेसुरके लघु नंदन॥
सत्यसरूप सदा जिन्हकै,
प्रगट्यौ अवदात मिथ्यात-निकंदन।
सांतदसा तिन्हकी पहिचानि,
करै कर जोरि बनारसि वंदन॥६॥

- नाटक समयसार, पृष्ठ-५-६

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

धर्माधिकार

अहमेव वीयरायं, मम णिय ससरुवो वीयरायं खलु।
तम्हा हि वीयरायत्तं, फुड णियधम्मसहावो तप्पदि ॥३ ॥

अंहमेव वीतरागं, मम निज स्वस्वरूपो वीतरागं खलु।
तस्मात् हि वीतरागत्वं, स्फुटं निजधर्मस्वभावो तप्यति ॥३ ॥

अहं एव वीतरागं खलु मम निज स्वस्वरूपो वीतरागं तस्मात् स्फुटं निजधर्म स्वभावो हि वीतरागत्वं तप्यति।

अर्थ :– निश्चय से मैं वीतराग हूँ और निश्चय से मेरा निजरूप वीतराग है। इसकारण से प्रगट निजजाति वस्तुस्वरूप-स्वभाव निश्चय से वीतरागभाव से ही दैदीप्यमान है।

भावार्थ :– जब अनादि से भ्रमते–भ्रमते भव्यजीव को काललब्धि* प्राप्त हुई, अपना निजस्वरूप व्यक्तरूप परिणमित

---

* जहाँ–जहाँ काललब्धि शब्द आये, वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक अ. ९ पेज ३१०–३११ के अनुसार ऐसा अर्थ लगाना –

प्रश्न :– मोक्ष का उपाय काललब्धि आने पर भवितव्यानुसार बनता है या मोहादिक का उपशमादि होने पर बनता है अथवा अपने पुरुषार्थ से उद्यम करने पर बनता है, सो कहिए। जो पहले दो कारण मिलने पर बनता है तो हमको उपदेश क्यों देते हो ? और पुरुषार्थ से बनता है तो उपदेश सब सुनते हैं, उनमें कोई उपाय कर सकता है, कोई नहीं कर सकता है, सो कारण क्या ?

समाधान :– एक कार्य होने में अनेक कारण मिलते हैं। मोक्ष का उपाय बनता है, तब तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलते हैं और नहीं बनता है, तब तीनों ही कारण नहीं मिलते। पूर्वोक्त तीनों कारणों में काललब्धि या होनहार तो कुछ वस्तु नहीं है। जिस काल में कार्य बने, वही काललब्धि और जो कार्य हुआ वही

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हुआ, तब से अपना वीतरागरूप जानता है, देखता है, आचरण करता है। वह निजधर्म 'वीतराग' है – ऐसा अनुभव करता है। अन्य सर्व भाव अशुद्ध, भिन्न, अधर्म जानता है।

॥इति धर्माधिकारः॥

होनहार तथा कर्म का उपशमादि है, सो पुद्‌गल की शक्ति है। उसका आत्मा कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है तथा पुरुषार्थ से उद्यम करते हैं, वह आत्मा का कार्य हैं। अतः आत्मा को पुरुषार्थ द्वारा उद्यम करने का उपदेश देते हैं। तब यह आत्मा जिस कारण से कार्यसिद्धि अवश्य हो उस कारणरूप उद्यम करता है, वहाँ तो अन्य कारण मिलते ही मिलते हैं और कार्य की भी सिद्धि होती ही होती है तथा जिस कारण से कार्यसिद्धि हो अथवा नहीं भी हो उस कारणरूप उद्यम करता है, तब अन्य कारण मिलते हैं, तो कार्यसिद्धि होती है, नहीं मिलते तो सिद्धि नहीं होती। जिनमत में जो मोक्ष का उपाय कहा है, उससे मोक्ष होता ही होता है। अतः जो जीव पुरुषार्थ द्वारा जिनेश्वर के उपदेश अनुसार मोक्ष का उपाय करता है, उसके काललब्धि या होनहार भी हुई और कर्म का उपशमादि भी हुआ है, तो वह ऐसा उपाय करता है। अतः जो पुरुषार्थ द्वारा मोक्ष का उपाय करता है, उसको सब कारण मिलते हैं – ऐसा निश्चय करना और उसको अवश्य प्राप्ति होती है।

समताभाव मात्र ही में सुख है

(सवैया इकतीसा)

हांसीमैं विषाद बसै विद्यामैं विवाद बसै,
कायामैं मरन गुरु वर्तनमैं हीनता।
सुचिमैं गिलानि बसै प्रापतिमैं हानि बसै,
जैमैं हारि सुंदर दसामैं छबि छीनता॥
रोग बसै भोगमैं संजोगमैं वियोग बसै,
गुनमैं गरब बसै सेवा मांहि हीनता।
और जग रीति जेती गर्भित असाता सेती,
साता की सहेली है अकेली उदासीनता॥११॥

– नाटक समयसार, पृष्ठ-३४०

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विधिवाद

सहावं कुणोदि दव्वं, परणमदि णियसहाव भावेषु।
तमयं दव्वस्य विहिं, विधिवादं भणइ जिनवाणी ॥४॥

स्वभावं करोति द्रव्यं परिणमति निजस्वभाव भावेषु।
तमयं द्रव्यस्य विधिर्विधिवादं भणति जिनवाणी ॥४॥

खलु निश्चयेन जीव द्रव्यस्य वस्तुनो अयं प्रत्यक्ष विधिरर्थं यथार्थयुक्तिः, निजस्वभावभावे स्वजातिस्वरूपविषये मध्ये जीवद्रव्यं वस्तुस्वभावं स्वस्वरूपं करोति, उत्पद्यते वा अथवा परिणमति, एवं जिनवाणी दिव्यध्वनित्वं स्वरूपपरिणमनं विधिवादं वस्तुरीति युक्ति कथनं भणति कथयति।

अर्थ :– निश्चय से वस्तु की यह सच्ची रीति है कि निज जाति अपने स्वरूप में वस्तु (जीव) अपने ही स्वरूप से उत्पन्न होती है, परिणमती है, जिनवाणी (द्वादशांगवाणी) उसको विधिवाद कहती है।

भावार्थ :– एक तो इस द्वादशांग में ऐसा कथन प्रचलित है – वह क्या ? जीव अपने ही स्वरूप ज्ञान–दर्शन–चारित्ररूप परिणमता है, उस रूप परिणमते कर्मों का संवर होता है, कर्मों की निर्जरा होती है और कर्मों का मोक्ष होता है। तब परमानन्द निजसुख उत्पन्न होता है। ऐसी जीव की स्वरूपपरिणति जीव को विधियोग्य है, क्योंकि जीव सुखी होता है और जो जीव की परभावरूप अशुद्धपरिणति है, उस परिणतिरूप परिणमते कर्मों का आस्रव होता है और आत्मप्रदेशों से परस्पर एक क्षेत्रावगाह होकर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कर्मों का बन्ध होता है। पुण्य-पाप विपाक होने पर दु:खी होता है। तो ऐसी जीव की अशुद्धपरिणति जीव को अविधिरूप है-अयोग्य है, क्योंकि जीव दु:खी होता है; अत: इस जीव को परमानंदसुख होने के लिये स्वरूपपरिणति विधियोग्य है; इसलिए जब स्वरूपपरिणतिरूप परिणमता है, तब सहज ही उन परिणामों द्वारा अविधि परिणति (अवैधपरिणति) नष्ट हो जाती है और वचन व्यवहार द्वारा भी उसीप्रकार कहते हैं-स्वरूप परिणतिरूप प्रवृत्त होओ, यह प्रवर्तन तुम्हें योग्य है।

॥इति विधिवाद:॥

हितोपदेश

(कवित्त ३१ मात्रा)

सदगुरु कहै भव्यजीवनिसौं,
तोरहु तुरित मोहकी जेल।
समकितरूप गहौ अपनौ गुन,
करहु सुद्ध अनुभवकौ खेल।
पुद्गलपिंड भाव रागादिक,
इनसौं नहीं तुम्हारौ मेल।
ए जड़ प्रगट गुपत तुम चेतन,
जैसें भिन्न तोय अरु तेल॥१२

परमार्थ की शिक्षा

(सवैया इकतीसा)

बनारसी कहै भैया भव्य सुनौ मेरी सीख,
कैहूं भांति कैसैहूंकै ऐसौ काजु कीजिए।
एकहू मुहूरत मिथ्यातकौ विधुंस होइ,
ग्यानकौं जगाइ अंस हंस खोजि लीजिए।
वाही कौ विचार वाकौ ध्यान यहै कौतूहल,
यौंही भरि जनम परम रस पीजिए।
तजि भव-वासकौ विलास सविकाररूप,
अंतकरि मोहकौ अनंतकाल जीजिए॥२४॥

- नाटक समयसार, पृष्ठ-३४, ४३

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चरितानुवाद

रायदोहभावाणं, उदियभावाणं कहाकहणं जहा।
तं चरियाणुवायं हि, जिणसमय णिदिट्ठं तहा॥५॥

रागदोषभावानां औदयिकभावानां कथाकथनं यथा।
तं चरितानुवाद हि, जिनसमये निर्दिष्टं तथा॥५॥

हि सत्येन यथा येन प्रकारेण रागदोषभावानां पराचरण-भावानां वा औदयिकभावानां दुखास्वादभावानां कथाकथनं स्वरूपकथनं तं कथनं चरितानुवादं-चरित्रवादं-जिनसमये द्वादशांगैः निर्दिष्टं कथितं।

अर्थ :– निश्चय से जिस-जिसप्रकार से पर आचरणभावों ही का अथवा शुभ-अशुभ स्वादभावों का ही जो स्वरूपकथन, उस कथन को चरितानुवाद संज्ञा (नाम) द्वारा द्वादशांग में कहा गया है।

भावार्थ :– पुद्गल स्वामित्वरूप मिथ्यात्व वह पर आचरण का कथन है और उच्चस्थान से गिरना और वह गिरना भी पराचरण को ही प्रगट करता है। अज्ञानी के स्थूल बन्ध और जघन्य ज्ञानी के अबुद्धिपूर्वक सूक्ष्मबंध, इसप्रकार बंध ही का भाव, वह भी पराचरण की प्रसिद्धता है तथा सरागी जीवभाव वह भी पराचरण की प्रसिद्धता है; ऐसे-ऐसे भावों का जो कथन वह केवल पराचरण चारित्र है और यह क्रोध पुद्गल उदयरस का भोग, मान, माया, लोभ, अनंतानुबंधी या अप्रत्याख्यान या प्रत्याख्यान या संज्वलन नोकषाय इन सर्व पुद्गल उदयरस का भोग, गतिसंबंधी पुद्गलों का, योगसंबंधी पुद्गलों का, इन्द्रिय-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विषय आवरणसंबंधी पुद्गलों का, अन्तरायसंबंधी पुद्गलों का, इन्द्रिय विषयसंबंधी पुद्गलों का, पुण्य–पाप संबंधी पुद्गलों का, इसप्रकार सर्व पुद्गलउदयरस का भोग – ऐसे भोग होते जीव को क्रोधी कहते हैं, मानी कहते हैं, मायावी कहते हैं, लोभी कहते हैं, मनुष्य कहते हैं, देव कहते हैं, पुण्यशाली कहते हैं, पापी कहते हैं, और दुःखी कहते हैं; इसप्रकार जो सर्व जीवों का कथन है, वह सब पुद्गल विपाक के भोगभाव का विभिन्नप्रकार के चरित्र द्वारा प्रगटपना है। इसप्रकार इन दोनों पराचरण औदयिक भावों के विभिन्नप्रकार के रूप द्वारा उन्हीं का दरसाव होता है अर्थात् वे ही प्रगट होते हैं। ऐसे इन दोनों के सर्व ही भावों को चारित्र नाम से कहते हैं। इसप्रकार का वह चारित्र कथन भी द्वादशांग में प्रचलित है।

॥इति चरितानुवाद॥

आत्मा ही में चारों पुरुषार्थ हैं

(सवैया इकतीसा)

धरमकौ साधन जु वस्तुकौ सुभाउ साधै,
अरथकौ साधन विलेछ दर्व षटमैं।
यहै काम–साधन जु संग्रहै निरासपद,
सहज सरूप मोख सुद्धता प्रगट मैं॥
अंतर की द्रिष्टिसौं निरंतर विलोकै बुध,
धरम अरथ काम मोख निज घटमैं।
साधन आराधनकी सौंज रहै जाके संग,
भूल्यौ फिरै मूरख मिथ्यातकी अलटमैं॥१५॥

– नाटक समयसार, पृष्ठ–१८१–१८२

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

यथास्थितिवाद

अहमज्झउड्ढलोया, लोयालोया हि सव्वदव्वाणि।
सासयं चिट्ठंति जहा, जहाठियेतं भणइ समये॥६॥

अधः मध्यऊर्ध्वलोकाः लोकालोका हि (षट्) सर्वद्रव्यानि।
शाश्वतं तिष्ठंति यथा, यथास्थितं भणाति समये॥६॥

अधमध्यऊर्ध्वलोकाः त्रैलोक्य लोकालोकावा षट् सर्व द्रव्यानि हि स्फुटं यथा येन येन प्रकारेण शाश्वतं नित्यं तिष्ठन्ति तं यथा शाश्वतं भावं समये परमागमे यथास्थितं भणति।

अर्थ :- जो अधोलोक, मध्यलोक, उर्ध्वलोक हैं तथा लोक अलोक हैं तथा छहद्रव्य हैं, वे सब अपनी-अपनी शाश्वत स्थिति से जैसे-जैसे स्थित हैं, उस शाश्वत स्थिति को जिनागम में यथास्थिति कहते हैं।

भावार्थ :- सात नरकों की जैसी शाश्वत स्थिति है, असंख्यात द्वीप-समुद्रों की, सोलहस्वर्ग, नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश, पंच अनुत्तर (विजयादि) विमान, सिद्धशिला, सर्व (तीनों) वातवलय - इनकी जैसी शाश्वत स्थिति है, वैसी स्थिति सदा शाश्वत रहती है तथा लोकाकाश की और अलोकाकाश की जैसी स्थिति है, वैसी स्थिति शाश्वत है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल - ये छहों द्रव्य अपने-अपने जैसे-जैसे गुणों द्वारा अपनी-अपनी जैसी-जैसी पर्यायों द्वारा सदा शाश्वत स्थिति से स्थित हैं, अपनी-अपनी भिन्न भिन्न सत्ता द्वारा अपनी-अपनी जैसी-जैसी स्थिति है, वैसी स्थिति से कभी भी चलायमान नहीं होते। सदा जैसे के तैसे ही रहते हैं, उसका नाम यथास्थितिभाव है - ऐसा यथास्थिति भाव का कथन भी द्वादशांग में प्रचलित है। ॥इति यथास्थितिवाद॥

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञेयवाद

णाणस्स जाव विसया, सपर सव्व दव्व गुणा तिपज्जाया।
सहाव विहावभावा, णेयं हवदि तं खलु समये॥७॥

ज्ञानस्य यावद्विषयाः, स्वपरसर्वद्रव्यगुणाः त्रिपर्यायाः।
स्वभाव विभावभावाः, ज्ञेयं भवति तं खलु समये॥७॥

यावद्विषयाः पदार्था ते तावत् ज्ञानस्य ज्ञेयं ज्ञातुं योग्यं भवति। ते के ? स्वपरसर्वद्रव्यगुणा, अतीत-अनागत-वर्तमानाः त्रय पर्यायाः, स्वभावविभावाः, निजवस्तु जातिभाव, पर-विकारभावा, खलु स्फुटं तं ज्ञेयं समये आगमे भणितम्।

अर्थ :– जितनी भी वस्तु हैं, उतनी सब ज्ञान के जानने के योग्य होती हैं। वे कौन ? जितने भी निजद्रव्यगुण-परद्रव्यगुण हैं, और जितनी भी अतीत, अनागत, वर्तमान द्रव्य की पर्यायें हैं और जितने भी निज-निजभाव, परभाव हैं, वे सब प्रगट हैं। उन सबको आगम में ज्ञेयभाव कहा है।

भावार्थ :– हे भव्य! यह जो ज्ञान अर्थात् जानना है, उस जानने में जितना भी जानना है, वह सब ज्ञेय नाम पाता है। वह क्या-क्या है ? जानना गुण निजद्रव्यसत्ता को जानता है, एक निज द्रव्य के अनंतगुणों को जानता है, उन एक-एक निजगुण की अनंतशक्ति को जानता है तथा निजद्रव्य-गुण का परिणमन तीनों काल का भिन्न-भिन्न जानता है तथा जानना स्वयं है, अपने जानने रूप (ज्ञायकरूप) को भी जानता है। इसीप्रकार परद्रव्यों को भिन्न-भिन्न जानता है, उन एक-एक परद्रव्य के अनंतगुणों को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जानता है, उन एक-एक पर गुण की अनंतशक्ति जानता है तथा उन पर द्रव्य-गुणों का परिणमन तीनों काल का भिन्न-भिन्न जानता है तथा छहों द्रव्यों के गुण-पर्यायों के निजजाति स्वभावरूप भाव को भिन्न जानता है तथा जीव के परभाव को भिन्न जानता है, पुद्गल के परभाव को भिन्न जानता है। संसारपरिणति और मुक्ति-परिणति को जानता है।

जितना द्रव्य-गुण-पर्यायभाव है, उतना सब साक्षात् जानता है – ऐसा जो कुछ भी है, सर्व ज्ञानगुण के जानने के गोचर होना, वह सब ज्ञेय नाम पाता है। ज्ञान के गोचर को आगम में ज्ञेय कहा जाता है, सो जानना।

॥इति ज्ञेयवाद॥

(कवित्त मात्रिक)

जाकै उदै होत घट-अंतर,
बिनसै मोह-महातम-रोक।
सुभ अरु असुभ करम की दुविधा,
मिटै सहज दीसै इक थोक॥
जाकी कला होत संपूरन,
प्रतिभासै सब लोक अलोक।
सो प्रबोध-ससि निरखि बनारसि,
सीस नवाइ देत पग धोक॥२॥

(सवैया इकतीसा)

जेते जगवासी जीव थावर जंगमरूप,
तेते निज बस करि राखे बल तोरिकैं।
महा अभिमानी ऐसौ आस्रव अगाध जोधा,
रोपि रन-थंभ ठाड़ौ भयौ मूछ मोरिकैं॥
आयौ तिहि थानक अचानक परम धाम,
ग्यान नाम सुभट सवायौ बल फोरिकैं।
आस्रव पछारयौ रन-थंभ तोरि डारयौ ताहि,
निरखि बनारसी नमत कर जोरिकैं॥२॥

– नाटक समयसार, पृष्ठ-९५, १०९

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

हेय व्याख्या

जह ससहावे परिणमदि, तह विभावो सयं सहयेण हीयदि।
तं तत्थ हेयभावं, हेयभावमिणयं जिणणिदिट्ठं ॥८॥

यथा स्वस्वभावे परिणमति, तथा विभावो स्वयं सहजेन हीयति।
तं तत्र हेयभावं, हेयभावमिदं जिननिर्दिष्टं ॥८॥

स्वस्वभावे ज्ञानदर्शनचरित्रात्मनि निजजातिस्वरूपे यथा येन येन क्रमेण परिणमति, चरति, तिष्ठति वा अनुभवति वा विश्रामति, तथा तेन तेन क्रमेण विभावो विकारभावः तत्र तस्मिन्काले सहजेन अयत्नपूर्वकेन स्वयं हीयति नश्यति विलयं याति तं हेयभावं नास्तिभावं इदं जिननिर्दिष्टं जिनकथितम्।

अर्थ :– यह आत्मा अपने निजजातिरूप में जैसे-जैसे परिणमता है-विश्राम लेता है, तैसे-तैसे अशुद्धभाव उसी काल में यत्न बिना ही अपने आप ही नाश हो जाता है। वह अशुद्धभाव अनित्यभाव है। यह हेयभाव जिनवचन में कहा है।

भावार्थ :– हे भव्य! यह चारित्रगुण जैसे-जैसे निजस्वरूप को प्राप्त होता है, वैसे-वैसे स्थिर विश्राम लेता है; उसी-उसी काल में सर्व गुणों की अशुद्धता-विकारभाव-अनित्यभाव-क्षणभंगुरभाव अपने आप ही नष्ट होते जाते हैं-विलय होते जाते हैं; अतः उसे जिनदेव ने हेयभाव कहा है – ऐसा हेयभाव का कथन जिनागम में प्रचलित है – ऐसा जानना।

॥इति हेय व्याख्यानं॥

* हेय-उपादेयपना जीव की परिणति का नाम है – १. द्रव्य की शुद्धता प्रगट करने के अर्थ में उपादेय है, २. अशुद्धता हेय है और ३. आश्रय करने के अर्थ में त्रैकालिक निज परमात्मद्रव्य ही उपादेय है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपादेय स्वरूप व्याख्यान

ससमयस्स समयपत्तो णियसरूवमायरइ परिणामेहिं।
परिणमदि वा ससरूवं, तमुवादेयं भणइ जिणो ॥९ ॥

स्वसमयस्स समयप्राप्तौ, निजस्वरूपमाचरयति परिणामैः।
परिणमति वा स्वस्वरूपं, तं उपादेयं भणति जिनः ॥९ ॥

समयप्राप्तौ काललब्धिप्राप्तौ सति स्वसमयस्य चारित्रस्य निजस्वरूपस्य परिणामैः आचरयति व्याप्नोति वा अथवा एवं स्वरूपं परिणमति तं स्वस्वरूपं उपादेयं आचरणं जिन भणति।

अर्थ :– जैसे-जैसे काललब्धि की प्राप्ति होती जाती है, उस-उस काललब्धि की प्राप्ति में स्वचारित्रगुण का आचरण परिणामों द्वारा व्यक्त होता है अथवा इसप्रकार भी कहो, वह स्वरूपाचरण ही प्रवर्तता है। उसी स्वचरण परिणमन को (स्वरूपाचरण के परिणमन को) जिनदेव उपादेय संज्ञा द्वारा कहते हैं।

भावार्थ :– जो-जो स्व-चारित्र की शक्तियाँ विकाररूप हो रही हैं, वह-वह काललब्धि प्राप्त होने पर (निज) परिणामों के परिणमन से उस स्वचारित्र का निजरूप होता है, वही स्वरूप ग्रहण है। इसप्रकार कोई कहे कि उस स्व.चारित्र का स्वरूप प्रगट होकर प्रवर्तता है, वह भी स्वरूपग्रहण का ही कथन है – ऐसे प्राप्तिरूप स्वरूप के परिणमन* को उपादेयसंज्ञा जिनदेव ने भी कही है, उसे 'उपादेय' आगम में जानना। इति उपादेय स्वरूप व्याख्यानं।

---

* संवर-निर्जरा और मोक्षपर्याय प्रगट करने के अर्थ में उपादेय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संसारपरिणति का नास्तिपना वह 'हेय' जानना और स्वरूप की शुद्धता का प्रगट होना, वह उपादेय जानना। एक ही काल में दोनों होते जाते हैं। यही निश्चय हेय-उपादेय जानना। व्यवहार से परपरिणति राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभादि सर्व अवलम्बन हेय करना। संसारी जीवों को एक चित् आत्मपिण्ड में अवलम्बन करना, वैराग्य, उदासीनता, (तथा) संवर को उपादेय करना - ऐसा उपदेश करना। इसप्रकार व्यवहार हेय-उपादेय जानना।

सम्यग्दृष्टि का विलास वर्णन

(सवैया इकतीसा)

कोऊ बुद्धिवंत नर निरखै सरीर-घर,
भेदग्यानदृष्टिसौं विचारै वस्तु-वासतौ।
अतीत अनागत वरतमान मोहरस,
भीग्यौ चिदानंद लखै बंधमैं विलासतौ॥
बंधकौ विदारि महा मोहकौ सुभाउ डारि,
आतमाकौ ध्यान करै देखै परगासतौ।
करम-कलंक-पंकरहित प्रगटरूप,
अचल अबाधित विलोकै देव सासतौ॥१३॥

- नाटक समयसार, पृष्ठ-३५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्यवहार वर्णन

पज्जाय भावना सव्वे, सव्वे भेय करणा च जोग खिरणाहि।
ससहाव दोणकधणा, तं ववहारं जिणभणिदं ॥१०॥

पर्यायभावना सर्वे, सर्वे भेद करणा च जोग क्षरणाहि।
स्वभाव तो अन्य कथना, तं व्यवहारं जिनभणितं ॥१०॥

सर्वे पर्याय भावनां सर्व पर्याय जाता भावा व्यवहारं भवंति हि स्फुटं। सर्वे भेदा करणाभावा व्यवहारं भवंति च पुनः जोग क्षरनाव बन्धमोक्ष व्यवहारं भवंति, पुनः स्वभावतः अन्य कथना अन्य वादा व्यवहारं भवंति, तं व्यवहारं जिनभणितं कथितम्।

अर्थ :– सर्व जितने भी पर्याय के भाव होते हैं, वे सर्व व्यवहार नाम पाते हैं और जितने भी एक के अनेक भेद करना, वे-वे सर्व व्यवहार नाम पाते हैं और ज़ितना भी बंध और मुक्त, उतना सर्व व्यवहार नाम पाता है। स्वभाव से जो अन्य भाव हैं, वे सर्व ज्यवहार नाम पाते हैं। वही व्यवहार जिनागम में कहा है।

भावार्थ :– आकाश में सर्व द्रव्यों का रहना, ज़ीव-पुद्‌गलादि को धर्म-अधर्म गति, स्थिति में सहकारी होना अथवा सर्व द्रव्यों के परिणाम परिणमाने को काल की वर्तना सहकारी होना तथा पुद्‌गलादि की गति द्वारा कालद्रव्य का प्रमाण परिमाण उत्पन्न होता है, छहों द्रव्य परज्ञेय ज्ञान में हैं, ज्ञान छहों परज्ञेय में, ज्ञान-दर्शन-गुणों की एक-एक शक्ति एक-एक स्व-परज्ञेय भेदों के प्रति लगाना – ऐसे-ऐसे भाव तथा परस्पर सर्व द्रव्यों का मिलाप होना,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसे-ऐसे पर्यायों के भाव तथा विकार उत्पन्न हुआ, स्वभाव नष्ट हुआ, पुनः स्वभाव उत्पन्न हुआ, विकार नष्ट हुआ, जीव उत्पन्न हुआ, जीव का मरण हुआ, यह पुद्गल स्कन्धरूप हुआ, संसार-परिणति नष्ट हुई, सिद्धपरिणति उत्पन्न हुई तथा मोह, अंतराय कर्मों की रोक नष्ट हुई। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनंत-स्वचरित्र, अनन्तवीर्य प्रगट हुए। मिथ्यात्व नष्ट हुआ, सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ, अशुद्धता नष्ट हुई, शुद्धता उत्पन्न हुई, पुद्गल से जीव बंध को प्राप्त हुआ, जीव का निमित्त प्राप्त होने पर पुद्गल कर्मरूप हुए। जीव ने कर्म नष्ट किये, यह-यह उत्पन्न हुआ, यह-यह नष्ट हुआ, वह उत्पन्न हुआ, वह नष्ट हुआ, ऐसे-ऐसे पर्यायों के भाव ऐसे-ऐसे पर्यायों के उत्पन्न और नष्ट भाव सर्व व्यवहार नाम पाते हैं।

तथा एक आकाश के लोक-अलोक भेद करना, काल की वर्तना को अतीत, अनागत, वर्तमान भेद करना तथा इसीप्रकार एक वस्तु का द्रव्य, गुण, पर्याय से भेद करना। एक सत् का उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से भेद करना। एक वस्तु का कर्ता-कर्म-क्रिया से भेद करना, एक जीववस्तु का बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा, एक द्रव्य समूह का असंख्यात अथवा अनंतप्रदेशों से भेद करना। एक द्रव्य का अनंतगुणों से भेद करना, एक गुण का अनंतशक्तियों से भेद करना, एक पर्याय का अनंत परिणामों से भेद करना, एक वस्तु का अस्ति-विधि से, नास्ति-अविधि से भेद करना। एक वस्तु का द्रव्य, सत्त्व, पदार्थ, गुणी, पर्यायी, अन्वयी, अर्थ, नित्य ऐसे-ऐसे नामभेद करना। एक जीव का आत्मा, परमात्मा, ज्ञानी, सम्यक्त्वी, चारित्री, सुखी, वीर्यधारी, दर्शनी (दर्शनवंत), सिद्धवत्, चेतन, चिदानन्द, चित्-दर्शन-ज्ञान-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चारित्र, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सुखी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी – इसप्रकार नामभेद करना। ज्ञान, बोध, ज्ञप्ति, सम्यक्त्व, आस्तिक्य, श्रद्धान, नियत-प्रतीति-यत्-यत् (वह), एतत् (यह) तथा चारित्र, आचरण, स्थिर-विश्राम, समाधि, संयम, एकान्त मग्न स्थगित अनुभवन, प्रवर्तन, सुख, आनंद, रस, स्वाद, भोग, तृप्ति, संतोष, वीर्यबल, वीर्यशक्ति, उपादान, तेज, ओज। एक अशुद्ध का विकार, विभाव, अशुद्ध, समल, परभाव, संसार, आस्रव, रंजकभाव, क्षणभंग, भ्रम और अन्यत् (कोई एक) एक-एक के इसप्रकार नाम द्वारा भेद करना।

एक ज्ञान का मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल पर्याय से भेद करना एवं अन्यत् (इसीप्रकार और भेद करना)। ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि एक-एक के कुछ, थोड़ा, जघन्य, उत्कृष्ट से परिणति भेद करना। एक के अनेक भेद करना। एक वस्तु का निश्चय-व्यवहारपरिणति भेद करना। इस-इसप्रकार एक का भेद करना, वे सब भेदभाव व्यवहारसंज्ञा को प्राप्त हैं।

गुण बंध-गुणमोक्ष, द्रव्यबंध-द्रव्यमोक्ष ऐसे-ऐसे सर्व भावों को भी व्यवहार कहते हैं तथा विकार, कालभाव के वश से स्वभाव छोड़कर द्रव्य-गुण-पर्यायों को अन्य ही भाव कहना। ज्ञानी को अज्ञानी, सम्यक्त्वी को मिथ्यात्वी, स्वसमयी को परसमयी, सुखी को दुःखी, अनंत ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख-वीर्य को कतिपय (कुछ, थोड़ा-सा) कहना।

ज्ञान को अज्ञान, सम्यक्त्व को मिथ्यात्व, स्थिर को चपल, सुख को दुःख, उपादेय को हेय, अमूर्तिक को मूर्तिक, परमशुद्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को अशुद्ध, एक प्रदेशी पुद्गल को बहुप्रदेशी, पुद्गल को कर्मत्व, एक चेतनरूप जीव को मार्गणा-गुणस्थानादि जितनी परिणतियों से निरूपण करना तथा एक जीव को पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, बंध, मोक्षपरिणति द्वारा निरूपण करना तथा जितना वचनपिंड* द्वारा कथन वह सब व्यवहार जानना तथा आत्मा से भिन्न अन्य सबको व्यवहार कहते हैं। स्वभाव से अन्य जो ऐसे-ऐसे भाव देखते हैं, जानते हैं; वे सब व्यवहारसंज्ञा को प्राप्त होते हैं तथा एक सामान्य से समुच्चय से व्यवहार का इतना अर्थ जानना, इतना ही व्यवहार जानना - "जिस भाव का वस्तु से अव्यापकरूप संबंध है, व्याप्य-व्यापक एकमेक संबंध नहीं है, वह व्यवहारसंज्ञा को प्राप्त होता है - ऐसा व्यवहारभाव का कथन द्वादशांग में प्रचलित है, सो जानना।

।इति व्यवहारः॥

---

* वचनपिंड भाषा वर्गणा

(सवैया इकतीसा)

कबहू सुमति ह्वै कुमतिकौ विनास करै,
कबहू विमल जोति अंतर जगति है।
कबहू दया ह्वै चित्त करत दयालरूप,
कबहू सुलालसा ह्वै लोचन लगति है॥
कबहू आरती ह्वै कै प्रभु सनमुख आवै,
कबहू सुभारती ह्वै बाहरि बगति है।
धरै दसा जैसी तब करै रीति तैसी ऐसी,
हिरदै हमारै भगवंतकी भगति है॥१४॥

- नाटक समयसार, पृष्ठ-११-१२

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निश्चय लक्षण

जेसिं गुणाणं पचयं, णियसहावं च अभेवभावं च।
दव्व परिणमनाधीनं, तं णिच्छय भणियं ववहारेण ॥११ ॥

येषां गुणानां प्रचयं, निजस्वभावं च अभेदभावं च।
द्रव्य परिणमनाधीनं, तं निश्चयं भणितं व्यवहारेण ॥११ ॥

येषां गुणानां प्रचयं एक समूहं तं निश्चयम्। पुनः येषां द्रव्य-गुण-पर्यायाणां निजस्वभावं निजजातिस्वरूपं तं निश्चयम्। पुनः येषां द्रव्य-गुणानां गुणशक्तिपर्यायाणां यं अभेदभासं एक प्रकाशं तं निश्चयं। पुनर्येषां द्रव्याणां यं द्रव्य परिणमनाधीनं तस्य द्रव्यस्य परिणाम आश्रयं भावं तं निश्चयं, एतादृशं निश्चयं व्यवहारेण वचनद्वारेण भणितं वर्णितम्।

अर्थ :– जिन-जिन अनन्त निजगुणों का जो परस्पर एक ही समूह-पुंज वह निश्चय का रूप जानना तथा निज-निज द्रव्य-गुण-पर्यायों की जो निज केवल जातिस्वरूप वह भी निश्चय का रूप जानना। एक द्रव्य के अनन्तगुणों का, एक गुण की अनन्तशक्ति पर्यायों का जो एक ही स्वरूप द्वारा भाव प्रगट होता है, वह भी निश्चयभाव जानना और जिस द्रव्य के परिणामों के परिणमन के आधीन द्रव्य के भाव का उस ही द्रव्य के परिणामरूप परिणमना, अन्य परिणामरूप न परिणमना सो निश्चय जानना। ऐसे-ऐसे भावों की वचनद्वार से निश्चयसंज्ञा कही है।

भावार्थ :– हे संत! जो ये निज-निज अनंतगुण मिलकर एक पिंडभाव-एक संबंध हुआ, उसे गुणों का पुंज कहते हैं। उस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुण पुंज का 'वस्तु' ऐसा नाम कहते हैं। सो यह वस्तुत्व नाम गुणों के पुंज के बिना अन्य किसको कहना ? इस गुणपुंज को वस्तु कहते हैं। इस वस्तुत्व की निश्चयसंज्ञा जानना।

जो-जो जिस-जिस रूप धारण किये हुए जो-जो गुण उत्पन्न हुआ है, वह-वह अपना-अपना रूप धारण करता है। गुण का अन्य गुणों से अपना पृथक् रूप अनादि-अनंत रहता है, इस पृथक् रूप को निजजाति कहते हैं। आप ही आप अनादिनिधन है। वह रूप किसी अन्य रूप से नहीं मिलता। जो रूप वही गुण, जो गुण वही रूप - ऐसा तादात्म्यलक्षण है। जो कोई इस रूप की नास्ति चिंतवन करे तो उसने गुण की नास्ति चिंतवन की। ऐसा जो आप ही आप रूप है, उस रूप को निजजातिस्वभाव कहते हैं। ऐसे निजरूप को निश्चयसंज्ञा कहते हैं।

पुनः अनंतगुणों का एक पुंज भाव देखना तथा भिन्न नहीं देखना, पुनः अनंतशक्तिवान् जो गुण है उस एक गुण को देखना, उन शक्तियों को न देखना तथा जघन्य उत्कृष्ट भेद न देखना - ऐसा जो अभेददर्शन-एक ही रूप का दर्शन है, उस अभेददर्शन को भी निश्चयसंज्ञा कहते हैं।

पुनः हे सन्त! गुण के पुंज में कोई गुण तो नहीं है, यह तो निःसंदेह इसीप्रकार है; परन्तु वह भाव उन गुणों का परिणाम धारण कर परिणमता है, वह भाव इन गुण परिणामों से भिन्न नहीं है; उसी भाव से पूर्ण परिणमता है। वह कहाँ पाया जाता है ?

जैसे पुद्गल वस्तु में स्कंध कर्म विकार कोई गुण तो नहीं है; परन्तु इस पुद्गल वस्तु के परिणाम उस स्कंध कर्म विकारभाव का स्वांग धारण किये हुए परिणमते हैं। अन्य द्रव्य के परिणाम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस कर्म विकारभाव को धारण कर परिणमन करते हैं। यह एक पुद्गल ही निःसंदेह स्वांग धारण कर वर्तता है। पुनः इस जीव वस्तु के परिणामरंजक, संकोचविस्तार, अज्ञान, मिथ्यादर्शन, अविरतादि चेतना विकारभाव हुए परिणमन करते हैं, सो ऐसा चेतन विकारभाव जानना तथा (वे विकारभाव) उस चेतनद्रव्य के परिणामों में तो पाये जाते हैं, अचेतनद्रव्य के परिणामों में तो कभी भी नहीं पाये जाते हैं; यह निःसंदेह है। ऐसे विकारभाव अपने ही अपने द्रव्य परिणामों में ही होते हैं, उसी-उसी द्रव्य के परिणाम आश्रित पाये जाते हैं, वह भी निश्चयसंज्ञा को प्राप्त होते हैं। इति निश्चय।

चकार से अन्य भी निश्चयभाव जानने। जितनी निजवस्तु की परिमिति (सीमा) उतनी परिमिति में ही द्रव्य-गुण-पर्याय, व्याप्य-व्यापक होकर वर्तता है, उस वस्तु की सीमा के बाहर नहीं। अपनी-अपनी सत्ता में व्याप्य-व्यापक होकर अनादि-अनंत रहते हैं। इसको भी निश्चय कहते हैं तथा जो भाव जिस भाव का प्रतिपक्षी वैर (शत्रुता) करता है, वह उसी से वैर (शत्रुता) करता है, अन्य से नहीं करता है, वह भी निश्चय जानना तथा जो प्रतिज्ञा करना, नियम करना, उसे भी निश्चय कहते हैं तथा जो जिस काल में जैसी जो होनी है, वैसी ही वह होती है, उसे भी निश्चय कहते हैं तथा जिस-जिस भाव की जैसी-जैसी रीति से प्रवर्तना है, वैसी-वैसी रीति प्राप्त होने पर परिणमता है उसे भी निश्चय कहते हैं तथा एक आपका, स्वद्रव्य का भी निश्चय नाम है तथा एक है, एकरूप गुण मुख्य लेने पर अन्य सर्व अनन्त निजगुणरूप, उस गुणरूप के भाव होते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भावार्थ – कथन में तो एक भिन्न रूप लेकर कहते हैं; परन्तु वही एक गुण का रूप है, वही सर्व रस का (रूप) है तथा जो कोई इसीप्रकार मानता है–एकरूप में अन्यरूप नहीं है, एक ही है, वहाँ अनर्थ उत्पन्न होता है। जैसे एक ज्ञानगुण है, उस ज्ञान में अन्य नहीं है, तो उस पुरुष ने वह ज्ञान चेतनरहित, अस्तित्व, वस्तुत्व, जीवत्व, अमूर्त्तादि सर्व रहित माना। वह तो माना, परन्तु वह ज्ञानगुण कैसे रहा ? किस रीति से रहा ? वह न रहा। अतः यहाँ यह बात सिद्ध हुई कि जो एक-एक गुण रूप है, वह सर्व स्वरस है। इसप्रकार सर्व स्वरस को भी निश्चय कहते हैं।

तथा कोई द्रव्य किसी द्रव्य से नहीं मिलता, कोई गुण किसी गुण से नहीं मिलता, कोई पर्यायशक्ति किसी पर्यायशक्ति से नहीं मिलती, इसप्रकार जो अमिश्रण (पृथक्) भाव उसे भी निश्चय कहते हैं।

जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा॥३२१॥
तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि।
को सक्कइ चालेदुं इन्दो वा तह जिणिंदो वा॥३२२॥

भावार्थ :– जो जिस जीव के, जिस देश में, जिस काल में, जिस विधान से, जन्म तथा मरण उपलक्षण से दुःख, सुख, रोग, दारिद्र आदि सर्वज्ञदेव ने जाना है, वह वैसे ही नियम से होगा, वही उस प्राणी के, उस ही दशा में, उसी काल में, उसी विधान द्वारा नियम से होता है, उसको इन्द्र तथा जिनेन्द्र, तीर्थंकरदेव कोई भी निवारण नहीं कर सकते हैं। (स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

जो जो देख्यो वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे।
बिन देख्यो होसी नहीं कोई काहे होत अधीरा रे॥१॥
समयो एक बढ़ै नहीं घटसी जो सुख दुख की पीरा रे।
तू क्यों सोच करै मन कूड़ो होय वज्र ज्यौं हीरा रे॥२॥

– ब्रह्मविलास, परमार्थ पद पंक्ति, २२वाँ राग माढ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निश्चय को सामान्य अर्थ से इतना कहना-संक्षेप से इतना ही अर्थ जानना – "निजवस्तु से जो भाव का व्याप्य-व्यापक एकमेक संबंध सो निश्चय जानना।" कर्त्ताभेद में, कर्मभेद में भी, क्रियाभेद में भी, इन तीन भेदों में एक ही भाव देखना, ये तीनों एक भाव के उत्पन्न हुए, ऐसे एक भाव को भी निश्चय कहते हैं। स्वभाव गुप्त है अथवा प्रगट परिणमता है; परन्तु नास्ति तो नहीं है – ऐसे अस्तित्वभाव को निश्चय कहते हैं। ऐसे-ऐसे भावों को निश्चयसंज्ञा जाननी। ऐसा जिनागम में कहा है।

॥ इति निश्चय संपूर्णम्॥

(अडिल्ल छन्द)

भेदग्यान संवर-निदान निरदोष है।
संवरसौं निर्जरा, अनुक्रम मोष है॥
भेदग्यान सिवमूल, जगतमहि मानिये।
जदपि हेय है तदपि, उपादेय जानिये॥६॥

(चौपाई)

भेदज्ञान संवर जिन्ह पायौ। सो चेतन सिवरूप कहायौ॥
भेदग्यान जिन्हके घट नांही। ते जड़ जीव बंधैं घट मांही॥८॥

(दोहा)

भेदग्यान साबू भयौ, समरस निरमल नीर।
धोबी अंतर आतमा, धोवै निजगुन चीर॥९॥

(छप्पय छन्द)

प्रगटि भेद विग्यान, आपगुन परगुन जानै।
पर परनति परित्याग, सुद्ध अनुभौ थिति ठानै॥
करि अनुभौ अभ्यास, सहज संवर परगासै।
आस्रव द्वार निरोधि, करमघन-तिमिर विनासै॥
छय करि विभाव समभाव भजि,
निरविकलप निज पद गहै॥
निर्मल विसुद्धि सासुत सुथिर,
परम अतीन्द्रिय सुख लहै॥११॥

– नाटक समयसार, पृष्ठ-१२५, १२६, १२८

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साक्षात् धर्म

गुण णियसहावं खलु पज्जायससहाव दव्वं च।
अप्पा किल परमप्प धम्मं, तं धम्मंवायं हि बोधव्वा ॥१२॥

गुण निज स्वभावं खलु, पर्याय स्वस्वभावं द्रव्यं च।
आत्मा किल परमात्म धर्मं तं धर्मवादं हि ज्ञातव्याः ॥१२॥

खलु निश्चयेन आत्मा किल सर्वथा अनंतगुण निजस्वभावं निजजातिस्वरूपं-यं याति तं परमात्मधर्मं उत्कृष्ट केवल रूपं, पुनः आत्मा सर्वथा पर्याय स्वस्वभावं यं यातं तं परमात्मधर्मं उत्कृष्ट स्वभावं पुनः आत्मा सर्वथा स्वभावद्रव्यं यं यातं तं परमात्मधर्मं उत्कृष्ट स्वभावं एतादृशं उत्कृष्टभावं तं जिनसमये धर्मवादं-स्वभावरूप कथनं-हि यथा स्यात्तथा ज्ञातव्याः।

अर्थ :– निश्चय से आत्मा के अनन्तगुण जब सर्वथा अपने निजजातिरूप को प्राप्त हुए, तब आत्मा को परमस्वभाव कहते हैं। उसके द्वारा आत्मा की सर्वथा षट्गुणी हानि–वृद्धि पर्याय निज-जातिरूप उत्पन्न हो, तब आत्मा का परमस्वभाव कहते हैं तथा जब–जब आत्मा का द्रव्य, प्रदेशों में निःप्रकंप निजस्वभावरूप सर्वथा उत्पन्न हुआ, तब उस आत्मा का परमस्वभाव कहते हैं। ऐसे केवल–सर्वथा द्रव्य–गुण–पर्याय स्वभावरूप को ही प्राप्त हुए। ऐसा भाव का कथन जिनागम में जानना।

भावार्थ :– अनादिकाल से पुद्गल निमित्त प्राप्त होने पर इस आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, आत्माचरण, वीर्य, आत्मभोगादि-गुण; इसप्रकार अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व, अवीर्य (निर्बल), पराचरण, परभोगादि विकाररूप परभावरूप हुए। फिर जैसे–जैसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

काललब्धि प्राप्त हुई, वैसे-वैसे वह परभाव क्षय होता गया, स्वभाव प्रगट होता गया – इसप्रकार होते-होते जिस काल में वह परभाव सर्वथा नष्ट हुआ, उसी समय में सर्वथा अनंतज्ञान, अनंत-दर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्यादि, अनंतगुण निजरूप से केवल प्रगट हुए-सर्वथा अपने ही रूप हुए-अन्यथारूप नष्ट हो गया-सर्वथा साक्षात् गुणों का निजरूप ही रहा तथा कथंचित् अन्य का लगाव* गया, साक्षात् निजजातिरूप हुआ सो ऐसा आत्मा के गुणों का परमभाव जानना तथा उसी काल उन्हीं साक्षात् गुणों की पर्याय परिणमन एकसमय सूक्ष्म में षट्गुणी हानि-वृद्धि से स्वस्वरूप हुई, वह पर्याय साक्षात् केवलरूप उत्पन्न हुई – ऐसी षट्गुणी हानि-वृद्धि सूक्ष्मपर्याय के स्वस्वरूप को भी आत्मा का परमभाव कहते हैं।

तथा जीवद्रव्य के प्रदेशों का कायादियोग पुद्गल वर्गणा के उठने-बैठने के निमित्त से संकोच विस्ताररूप कंपन होता था तथा जब कायादि पुद्गल वर्गणाओं का सर्वथा प्रकार से अभाव हुआ, तब जीवद्रव्य के प्रदेश का वज्रवत् निःप्रकंपस्वभाव सर्वथा साक्षात् हुआ – ऐसा भी आत्मा का परमभाव जानना। ऐसे द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों सर्वथा साक्षात् परम स्वरूपरूप हुए, तब इस आत्मा के केवल निजस्वभाव ही धर्म होता है। एक सर्वथा निजजाति केवल एक स्वरूपरूप प्रवर्तना है, इसकारण से इस आत्मा का ऐसा ही धर्म कहते हैं; क्योंकि वहाँ उस काल में निज ही रूप है, अन्य कुछ भाव नहीं है। अतः 'धर्म' ऐसा आत्मा कहा जाता है। सो ऐसा साक्षात् धर्म का कथन जिनागम में जानना। ।।इति साक्षात् धर्मः।।

---

* लगाव=संबंध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बहिर्धर्म

जत्थ गुणविभावं सिय पज्जाय विभावं च दव्वविभावं च।
अप्पा किल बहिधम्मं, पुणो तं अधम्मवायं णायव्वा ॥१३॥

यत्र गुणविभावं स्यात् पर्याय विभावं च द्रव्यविभावं च।
आत्मा किल बहिर्धर्मं पुनः तं अधर्मवादं ज्ञातव्यः ॥१३॥

यत्र यस्मिन् काले आत्मा गुणविभावं गुणविकारं यं किल सर्वथा स्यात् तं बहिधर्म, पुनः आत्मा पर्याय विभावं यं किल सर्वथा स्यात् तं बहिःधर्म पुनः आत्मा द्रव्य विभावं यं किल सर्वथा स्यात् तं बहिःधर्म, एतादृशं बहिःधर्म अधर्मवादं-अस्वभाववादं-परस्वभाव कथनं जिनागमे ज्ञातव्यः।

अर्थ :– जिस काल में आत्मा के गुण सर्वथा परभावरूप होते हैं, उस काल में आत्मा को बहिर्स्वभाव कहते हैं। जिस काल में आत्मा की पर्याय सर्वथा विकाररूप होती है, उस काल में इस आत्मा को बहिर्धर्म कहते हैं तथा जिस काल में आत्मा का द्रव्य* सर्वथा विकाररूप परिणमित होता है, उस काल में इस आत्मा को बहिर्धर्म कहते हैं – ऐसा अधर्म का कथन जिनागम में जानना।

भावार्थ :– अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व, पराचरण, अवीर्य, पररस भोग इत्यादि जो गुणों का विकारभाव है, वह एक अक्षर के अनंतवें भाग विकार छोड़कर अन्य सर्वथा विकाररूप हुआ, गुण सर्वथा उस विकारभावरूप होते हैं, स्वभावरूप कुछ भी नहीं। ऐसे सर्वथा गुण के विभाव को बहिर्धर्म कहते हैं तथा जो

---

* सर्वथा विकाररूप अर्थात् मिथ्यात्वरूप-पराश्रयरूप अशुद्धदशा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुण ही सर्वथा विकाररूप हुए, तो उनके परिणाम, परिणमनभाव सहज ही सर्वथा विकाररूप हुए। जैसे पानी रँगा गया तो उसकी लहर रंगीन सहज ही हो गई। ऐसी विकार पर्याय स्थूल पर्याय है। वह विकार परिणाम इन्द्रियज्ञान द्वारा कुछ जाना जाता है। वह क्या है ?

बहुत काल तक उस एक विकारभाव के परिणमन प्रवाहित होते रहते हैं, वह स्थूल काल के प्रवाह से जाना जाता है – ऐसी गुणों की सर्वथा विकार स्थूलपर्याय भी आत्मा का बहिर्स्वभाव है तथा जब गुण-पर्याय सर्वथा विकाररूप हुए, तब द्रव्य तो (उसी समय पर्याय अपेक्षा) स्वयं ही सर्वथा विकाररूप हुआ। जैसे सर्व तंतु रंगीन हुए तो वस्त्र सहज ही सर्वथा रंगीन हुआ। तंतु से वस्त्र कहीं पृथक् नहीं था। तंतुओं के मिलाप को ही वस्त्र कहते हैं। इसप्रकार द्रव्य सर्वथा विकारी हुआ, तब उस आत्मा को बहिर्भाव कहते हैं – ऐसे सर्वथा विकाररूप द्रव्य-गुण-पर्याय को आत्मा का (विभावरूप अनित्यस्वभाव) बहिर्स्वभाव कहते हैं; क्योंकि अपनी वस्तु[१] में कुछ भाव नहीं होता है; परन्तु[२] अन्य ही परभाव-विकारभाव-वस्तु समुदाय से बाहर का ऊपरी भाव हुआ है; अतः इसको बहिर्धर्म कहते हैं तथा यह आत्मधर्म नहीं हैं; अतः इसको आत्मा का अधर्मभाव कहते हैं।

।।इति बहिर्धर्मः।।

---

१. नित्य ऐसे वस्तुस्वभाव में अशुद्धता कैसी ?

२. अनित्य ऐसे पर्याय स्वभाव में।

महाव्रत महान पुरुषों द्वारा, महा पुरुषार्थ पूर्वक, महासुख के लिए धारण किए जाते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

मिश्रधर्मकथन

गुण धम्माधम्मं परिणमदि, दव्व पज्जायं च धम्माधम्मं फुडं।
मिस्सधम्मं जया अप्पा, तं मिस्सधम्म भणइ जिणो ॥१४॥

गुण धर्माधर्मं परिणमति, द्रव्यं पर्यायं च धर्माधर्मं स्फुटं।
मिश्रधर्मं यदा आत्मानं मिश्रधर्मं भणंति जिनोः ॥१४॥

यदा यस्मिन् काले स्फुटं प्रगटं आत्मा गुण धर्माधर्मं परिणमति, गुणस्वभाव (गुणस्वभावो) विभावं परिणमति यं तं मिश्रधर्मं विकारकलंकनिजस्वभावं, पुनः तदा आत्मपर्यायं द्रव्यं धर्माधर्मं सहजेन आयातं तं मिश्रधर्मं एतादृशं मिश्रधर्मं जिनो भणति कथयति।

अर्थ :– जिस काल में आत्मा के गुण धर्माधर्म रूप परिणमते हैं, उस काल में प्रगट आत्मा को मिश्रधर्म कहते हैं तथा जब आत्मा के गुण मिश्रधर्मरूप हों, तब द्रव्यरूप आत्मा के पर्याय तो सहज ही मिश्रधर्मरूप हुए – ऐसे आत्मा के मिश्रधर्म को जिनेन्द्र ने प्रगट कहा है।

भावार्थ :– जब निकट भव्यजीव को काललब्धि प्राप्त हुई, तब जो पूर्व में मिथ्यात्वरूप परभेष धारण किये हुए प्रवर्तन कर रहा था, वह प्रवर्तन समाप्त हुआ–नष्ट हुआ। उसी काल में निज स्वभाविक स्वरूप द्वारा व्यक्तरूप प्रवर्तन हुआ। उस भव्यजीव को निजरूप क्या प्रगट हुआ ? वह कहते हैं –

जीव का एक सम्यक्त्व गुण है। उस गुण का लक्षण आस्तिक्य अर्थात् प्रतीति–दृढ़ता – यह बात इसीप्रकार है, इसमें हलचल

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं है – ऐसी आस्तिक्यशक्ति है। उस आस्तिक्यशक्ति के दो भाव होते हैं – एक निजजातिभाव और एक विकाररूप औपाधिक दोषरूप अर्थात् निजजाति से अन्य – ऐसा परभाव। उस आस्तिक्य शक्ति का अनादि से निजजातिभाव तो गुप्त है। परभाव का भेष प्रगट होकर आस्तिक्यशक्ति प्रवृत्त हुई। वह परभावरूप धारण करती है। आस्तिक्यशक्ति कैसी है ?

जो भ्रम है, झूठ है, मिथ्या है, जो कुछ (प्रयोजनभूत तत्त्व में) मिथ्या बात है, उनको ठीक माननेरूप (मिथ्यात्व का) प्रवर्तन है, उसी को (वह) आस्तिक्य कहते हैं। ऐसे परभाव का आस्तिक्य पुद्गल कर्मविपाक[१] के रहने तक रहता है।

तथा इसी-इसीप्रकार क्रम वर्तते हुए, पुद्गल विपाक के नास्ति की काललब्धि[२] आई, तब पुद्गल विपाक नष्ट हुआ। तभी

---

१. यहाँ पुद्गलकर्म के विपाक के रहने तक परभावरूप रागादि क्यों कहा? कि यह जीव स्वद्रव्य का अवलम्बन पूर्णतया करे तो परभाव-रागादि नहीं होते, किन्तु रागादि में तो परद्रव्य का ही आलम्बन होता है। यहाँ उपादान-निजशक्ति में जब स्वाश्रय हुआ, तब से प्रकाश होते ही अंधकार उत्पन्न नहीं होता और उसी दृष्टान्तवत् त्रैकालिक पूर्ण ज्ञानस्वभाव का स्वामित्व और आलम्बन करने पर सर्वथा मिथ्यात्व का और भूमिकानुसार रागादिक उतपन्न ही नहीं होता निमित्त का ज्ञान कराने में ऐसा समझना कि निज शुद्ध उपादान जागृत हुआ है, तभी पुद्गल कर्म विपाक का अभाव हुआ और स्वाश्रय के बल से हेय-उपादान की यथार्थ जाननेरूप निज परिणाम की प्राप्ति होती है।

२. यहाँ काललब्धि की एक विवक्षा है, कार्तिकेयानुप्रेक्षा में प्रत्येक समय छहों द्रव्य की काललब्धि कही है। जीव में जब पात्रता की पक्वता-भव्यभाव का विपाक अर्थात् निजपरिणामों की प्राप्तिरूप सम्यक् पुरुषार्थ होता है, उसी परिणाम को अध्यात्मभाषा में स्वकाल स्वसन्मुख परिणाम अंतरंग स्वकीय उपादान परिणामाधीनपना कहा है। देखो श्री रायचंद्र जैन शास्त्रमाला समयसार जयसेनाचार्य सं. टीका पृष्ठ ३१३ ''धर्मलब्धिकाले, पृष्ठ ३१८, गाथा ७१ तथा'' कालादिलब्धि वशेन भव्यत्वशक्तिर्व्यक्तिभवति तदा अयं जीवः सदा शुद्धपारिणामिक-भावलक्षण निजपरमात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणपर्यायेण परिणमति। तच्च परिणमनमागमभाषयौपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकभावत्रय भण्यते।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसी काल में आस्तिक्यशक्ति का जो परभावरूप प्रवर्तन था वह नष्ट हुआ; क्योंकि ज्यों-ज्यों पुद्गल* के मिथ्यात्व विपाक का नाश हुआ, तैसे वह परभाव तो जोकि इस विपाक के रहने से होता था, जबकि वह विपाक नष्ट हुआ तब इसका (परभाव का) तो सहज ही नाश हो गया। तभी उसी काल में आस्तिक्यशक्ति का परभाव इस प्रकार नष्ट हुआ। उस काल में आस्तिक्यशक्ति

* जीव ने मिथ्या आस्तिक्य का स्वसन्मुखता द्वारा जिस समय नाश किया, उसी समय पुद्गल मिथ्यात्वविपाक का नाश हुआ है। देखो, समयसार गाथा २७७ जयसेनाचार्य संस्कृत टीका पृ. ३७० ''यस्तु तादृशमात्मानमुपादेयं श्रद्धते तस्य सप्त प्रकृति उपशमादिकं विद्यते स तु भव्यो भवति।'' पुद्गल मिथ्यात्व विपाक का नाश हुआ कहा, वह निमित्त का ज्ञान कराने की विवक्षा है। कारण कि पराश्रय की श्रद्धा से ही पराश्रयी बनने से ही परभाव-मिथ्यात्व होता था। नित्यस्वभाव भाव के सच्चे आलम्बन से तो विभाव होता ही नहीं।

(देखो समयसार गाथा ११२ से ११६)

* जीव के अशुद्धभाव का व्यय होकर शुद्धता का उत्पाद हुआ, वह जीव की पर्याय है। जहाँ कर्म के विपाक का अस्तित्व रहना कहा है, वह तो जड़ कर्मरूप पुद्गल की पर्याय है, अतः वह तो उसके उपादान से होती है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अपने-अपने उपादानकारण से होती है। मिथ्यात्व रागादि होने में परद्रव्य का ही आलंबनरूप निमित्तकारण होने से जीव को परद्रव्य पुद्गल कर्म की पर्याय के साथ सम्बन्ध होने पर परभावों की उत्पत्ति होती है। इस विवक्षा से, कर्म का विपाक रहे वहाँ तक परभावों का रहना कहा है और यह कथन तो काल बतलाकर निज शुद्धात्मा का आलम्बन करने का समझाने के लिये कहा है। यदि एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय का सच्चा कारण हो तो द्रव्यों की एकता हो जाय; किन्तु ऐसा कभी नहीं होता। अतः प्रत्येक द्रव्य की पर्यायें अपने-अपने स्वतंत्र कारण से होती हैं, तब बहिरंग उचित संयोग को निमित्त व्यवहार-उपचारकारण कही जाती हैं, अतः जहाँ कर्म के विपाक के रहने तक जीव में परभाव का कथन है, वह तो कालसूचक है भावसूचक नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो निजजातिभाव गुप्तरूप-शक्तिरूप हो रहा था, वही जातिभाव अतिशयकरि व्यक्त-प्रगट हुआ। उस जातिभाव का कैसा रूप है?

जो निजवस्तु जाति की निश्चयवस्तु गुण-पर्यायों का प्रत्यक्ष सत्तारूप तथा परद्रव्य-गुण पर्यायों का भिन्न प्रत्यक्ष सत्तारूप यथार्थता ऐसा आस्तिक्यशक्ति का जातिभाव है, वह नित्य ही है। ऐसी एक सम्यक्त्वगुण की आस्तिक्यशक्ति निजरूप परिणमित हुई। उसी काल में उस निकट भव्यजीव को एक ज्ञानगुण है, जिसका लक्षण 'जानना' है। उस 'जानने' के भी दो भाव, एक तो वैभाविकरूप विकाररूप-उपाधिरूप-परभाव, एक निजजातिरूप अपने-रूप स्वभावभाव। जानने का स्वभावभाव अनादि से शक्तिरूप गुप्त हो रहा था तथा अन्य परभावरूप जानना व्यक्त-प्रगटरूप हो रहा था। सो परभाव धारण करते हुए कैसा जानना होता है ?

अवस्तु को वस्तु, अवगुण को गुण, अपर्याय को पर्याय, पर को स्व, हेय को उपादेय इत्यादि जो कुछ वस्तुरूप नहीं है, मिथ्यामति (मिथ्यादृष्टि) उसे ही जानने को प्रवर्तता है। ऐसा जानने का परभाव है, वह परभाव पुद्गल आवरण के विपाक* के रहने से रहता है, इसी-इसीप्रकार अनादि से प्रवर्तते हुए उस दुष्ट पुद्गल आवरण के कुछ विपाक उदय के नष्ट होने का काल आया, उसके आने से (उस काललब्धि के समय) कुछ विपाक नष्ट हुआ, उससे वह जो दुष्ट-कुत्सित जानने का परभाव था वह उसी काल में नष्ट हुआ। तभी कुछ जानने का निज जातिस्वभावभाव व्यक्त-प्रगटरूप परिणमित हुआ। (सम्यग्ज्ञान हुआ) वह कैसा प्रगट हुआ ?

* देखो, फुटनोट, पृष्ठ-३४ तथा ३७

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीवों की निजजाति वस्तु गुण-पर्यायों की सत्य प्रत्यक्ष स्वजाति जीव जानी (ज्ञात हुई) अथवा ज्ञायक जानी अथवा दर्शन जानी अथवा उपयोगमई जानी, चेतना जानी अथवा वेदक (अनुभवरूप) जानी अथवा बुद्ध जानी अथवा शांतमई जानी, ऐसी तो जीव की निजजाति नित्य जानी तथा सर्व परभावों की अन्य पाँचद्रव्य-गुण-पर्यायों की सत्य प्रत्यक्ष अजीव जाति जानी अथवा अज्ञायक जानी अथवा अदर्शनमई जाति जानी अथवा उपयोगरहित जाति जानी है वा अचेतन जाति जानता है – ऐसी परभावों की नित्य जाति जानी (ज्ञात हुई है)।

तथा धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल पाँच वस्तुओं की अजीव जाति ज्ञात हुई तथा वस्तुभाव भिन्न ज्ञात हुआ, अवस्तुभाव भिन्न ज्ञात हुआ, यथार्थ भिन्न ज्ञात हुआ, आप जीव अपनी निज जाति सत्ता भिन्न जानता है, पर जीव-अजीव सत्ता भिन्न जानता है। मिथ्यात्व भिन्न जानता है, यथार्थ भिन्न जानता है, मिश्रार्थ भिन्न जानता है, उस ज्ञानगुण की निजजाति भावशक्ति ऐसी सम्यक् परिणति हुई – ऐसी प्रगट हुई तथा उसी काल में उस निकट भव्यजीव के एक चारित्रगुण भी है, उस चारित्रगुण का लक्षण-आचरण-प्रवर्तन भी है। उस आचरण के दो भाव हैं – एक तो विभावरूप-उपाधिरूप-विकाररूप परभाव, दूसरा निजजातिरूप-अपनारूप-स्वभावरूप वह स्वभावभाव। आचरण का स्वभाव तो अनादि से शक्तिरूप गुप्त हो रहा था तथा अन्य परभावरूप आचरण प्रगट हो प्रवृत्त हुआ। वह आचरण परभाव को धारण करता है। (वह) कैसा प्रगट हुआ है ?

क्रोधरूप आचरण; मान, माया, लोभ आचरण, हास्य, रति,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पुरुषवेद आदि रूप आचरण। रंजक (रागरूप) पुद्गल परभावों में चंचलरूप-विश्राम स्थितिरूप प्रवर्तन करना, वही परभावरूप आचरण है – ऐसा आचरण पररूप है। चारित्रमोह कर्म के विपाक* के अस्तित्व से इसका अस्तित्व है तथा इसीप्रकार वर्तते-वर्तते काललब्धि प्राप्त हुई, कुछ चारित्रमोह कर्म का विपाक नष्ट हुआ; तब वह कुत्सित आचरण परभावरूप भी नाश हुआ। अनादि से आचरण का निजजातिरूप-स्वभावशक्तिरूप-स्वभावभाव शक्तिरूप गुप्त हो रहा था, तभी वह भाव कुछ व्यक्तरूप हो-प्रगटरूप परिणमित हुआ। वह कैसा प्रगट हुआ ?

जो नित्य एक जातिरूप स्वजीव-वस्तुस्वभाव, वह निजस्वभाव वस्तु के मध्य में स्थिररूप से विश्राम-समाधि स्थिति आचरण-

* कर्म विपाक के अस्तित्व से इसके अस्तित्व का अर्थ – जीव के अशुद्धभाव का व्यय होकर शुद्धता का उत्पाद हुआ, वह जीव की पर्याय है। कर्म के विपाक का अस्तित्व रहना कहा है; वह तो कर्मरूप पुद्गल की पर्याय है; अतः वह तो उसके उपादान से है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अपने-अपने उपादान के कारण से होती है। मिथ्यात्व रागादि विकार होने में परद्रव्य का आलम्बन निमित्तकारण होने से जीव को परद्रव्य-पुद्गलकर्म की पर्याय के साथ संबंध होने पर विकार की उत्पत्ति होती है। इस विवक्षा से कर्म का विपाक रहे, वहाँ तक परभावों का अस्तित्व रहता है – यह कथन है जो काल बतलाकर (जीव को विकार में आश्रयरूप कारण बतलाना है तो जड़कर्म निमित्त है – ऐसा बतलाकर) निजशुद्धात्मा का आलम्बन करने का समझाने के लिये कहा है। यदि एक द्रव्य की पर्याय दूसरा द्रव्य की पर्याय का सच्चाकारण हो तो दो द्रव्य की एकता हो जाय; किन्तु ऐसा कभी नहीं होता। अतः प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अपने-अपने स्वतंत्र कारण से होती है। कर्म के विकार के रहने तक जीव में विकार यह तो निमित्त का कथन है, जो कालसूचक है; भावसूचक नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवर्तता हुआ परिणमित हुआ, केवल निजवस्तु सुख का आस्वादन लेता हुआ परिणमित हुआ – ऐसा आचरण निजजातिरूप स्वभाव परिणमित हुआ, व्यक्त हुआ, उस काल में भव्यजीव के ये तीनों मुख्य गुण इसप्रकार स्वभावभावरूप परिणमित हुए। अभेद से वह वस्तु ही स्वभावरूप परिणमित हुई। यह वस्तु का निज जातिस्वभाव तो कुत्सित विपाकभाव वह रंगरहित-दैदीप्यमान है, इसकारण इसको वीतरागभाव कहते हैं तथा वह परभाव पुद्गल विपाक रंगभावना पडत्थदा (प्रतिध्वनि) से व्याप्त है। वह पुद्गल रंग पडत्थदा (प्रतिध्वनि) विनाश होने से कुछ भी नहीं है; अतः जैसे-जैसे जबतक पुद्गल विपाकभाव काल प्राप्त होने पर प्रगट होता है, उसी-उसी के अनुसार पुद्गलविपाक की जाति के अनुरूप इस चित् परभाव के रूप की जाति होती है तथा पुद्गल विपाक की भाँति जिस जाति का नाश होता है, उस उस जाति का चित् परभाव का भी नाश होता ही है। तात्पर्य यह है कि उस पुद्गलविपाक के अस्तित्व से इस परभाव का अस्तित्व है और उस पुद्गल कर्म विपाक की जैसी-तैसी कम-अधिक अस्ति-नास्ति जाननी, वैसी-वैसी परभाव की कम-अधिक अस्ति-नास्ति जाननी; अतः परभाव का अस्तित्व पुद्गलकर्म विपाक के आधीन है तथा इसकारण से केवल पुद्गलकर्म विपाक रंग की जाति समान इस परभाव की जाति है; इसलिए परभाव सरागमय हैं तथा वह निजजाति जीववस्तु स्वभावभाव निजवस्तु सत्ता के आधीन है। वह स्वयं ही वस्तुभाव है। वही पुद्गलकर्म विपाक के नाश से स्वभावभाव का प्रवर्त्तना-प्रगट होना है। अतः स्वभाव भाव पुद्गल कर्म विपाक रंग से सहज ही रहित है, जिसकारण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से स्वभाव को एक वीतराग नाम भी प्राप्त हुआ और निकट भव्य को प्रगट परिणमित स्वभावभाव है।

भावार्थ – जिसप्रकार अनादि से जीव की परिणति अशुद्ध हो रही है, उसीप्रकार कहते हैं। अनादि से पुद्गल तो जीव की चित् विकार परिणति होने को निमित्त हुआ। फिर वही चित् विकार परिणति परिणमित होती हुई, उस पुद्गल को कर्मत्व परिणाम होने को निमित्त होती है। इसप्रकार अनादि से परस्पर निमित्त-नैमित्तिक हो रहे हैं। सो यहाँ जीव की परिणति का व्याख्यान करते हैं –

जब यह पुद्गल सहज ही अपनी द्रव्यशक्ति से कर्मत्व उदय परिणतिरूप परिणमित हुआ, तभी उस पुद्गल कर्मत्व उदय परिणतिरूप परिणमन का निमित्त पा करके यह जीव स्वयं चित् विकाररूप हो करके परिणमता है। जैसे प्रातःकाल सूर्य का उदय होने पर लोक स्वयं ही स्नान, वाणिज्य आदि कार्य करते हैं; वैसे ही पुद्गलकर्म की उदयपरिणति प्राप्त होने पर जीव स्वयं ही विकाररूप परिणमित होता है। कोई जानेगा कि पुद्गल जीव को विकाररूप परिणमाता है, सो इसप्रकार तो कभी भी नहीं होता (नहीं बनता)। अन्य द्रव्य अन्य द्रव्य की परिणति का कर्त्ता नहीं होता तथा कोई इसप्रकार जानेगा कि चित्‌विकाररूप तो जीव परिणमता है; परन्तु यह पुद्गल उसके परिणमन के लिये स्वयं निमित्त का कर्त्ता होता है।

परभाव का कर्तृत्व मानने में दोष –

जब यह जीव विकाररूप परिणमित हो, उसके लिये यह पुद्गल स्वयं निमित्त कर्त्ता होकर प्रवर्तन करे, सो इसप्रकार तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कभी भी नहीं होता। यदि यह पुद्‌गल उस चित्‌विकार के होने के लिये जान-जानकर स्वयं कर्मनिमित्तरूप होता है तो पुद्‌गल ज्ञानवंत हुआ। ऐसा होते अनर्थ उत्पन्न हुआ। जो अचेतन था वह चेतन हुआ, एक तो यह दूषण है। दूसरे पुद्‌गलकर्म की कर्मत्व विभावता पुद्‌गल के आधीन होगी, पुद्‌गल स्वाधीन अपने आप कर्म विभावों का कर्त्ता हो जायेगा, निमित्त प्राप्त होने पर कर्म का कर्त्ता नहीं होगा, तब विभाव कर्मत्व पुद्‌गल का स्वभाव होगा; यह दूसरा दूषण है।

तथा तीसरा दूषण यह होगा कि जो पुद्‌गल जीव को विकार रूप होने के लिये कर्मपने द्वारा निमित्तरूप हुआ करे तो यद्यपि कोई द्रव्य किसी द्रव्य का शत्रु नहीं है; परन्तु यहाँ तो पुद्‌गल जीव का शत्रु हुआ। यह तीसरा दूषण है।

और जो कोई इसप्रकार कहे कि जीव तो विकाररूप परिणमित नहीं होता, (पुद्‌गल ही अनेकप्रकार स्वयं ही कर्मस्वरूप हुआ परिणमता है) सो इसप्रकार तो कभी भी नहीं होगा, क्यों ?

यदि पुद्‌गल विकाररूप परिणमता है तो परिणमा; परन्तु जीव को संसार मुक्ति होना तो न ठहरा। ज्ञानी अज्ञानी हुआ, वह कोई अन्य दशा हुई। वह अन्य दशा तो नहीं दिखाई देती है तथा जीव के संसार, मुक्त परिणाम तो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, अत: जीव को तो विकार होना ठहरा।

अब यदि कोई इसप्रकार कहता है कि जीव चित्‌विकाररूप स्वयं तो नहीं परिणमित होता; परन्तु पुद्‌गल से व्याप्य-व्यापकरूप होकर परिणमित होता है तो इसप्रकार तो नहीं है; क्योंकि कोई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य किसी द्रव्य से व्याप्य-व्यापक नहीं होता। जो होवे, तो चेतनद्रव्यका नाश हो जावे – यह कहने का भाव है।

तथा, यदि कोई इसप्रकार कहता है कि पुद्गल सहकारी निमित्त कुछ नहीं, जीव स्वयं को स्वयं ही निमित्त होकर स्वयं ही चित् विकाररूप परिणमित होता है, सो इसप्रकार तो नहीं है, क्यों ?

यदि पुद्गल कर्मत्व सहकारी निमित्त बिना ही जीव चित्विकार रूप परिणमता है तो यह चित्विकार जीव का निज-स्वभावभाव हो जावे, स्वाधीन शक्ति हो जावे; निर्विकार निजस्वभाव चेतना का नाश हो जावे, यह अनर्थ होता है।

तथा यदि कोई इसप्रकार कहे कि पुद्गल के कर्मत्व विकार होने के लिये जीव चित्विकाररूप परिणमता है, सो इसप्रकार तो नहीं है, क्यों ? कोई द्रव्य किसी द्रव्य का शत्रु नहीं है। इसप्रकार निषेध है।

तथा यदि कोई इसप्रकार कहे – जीव-पुद्गल दोनों मिलकर एक अशुद्ध विकारपरिणति उत्पन्न हुई है; सो इसप्रकार भी नहीं है; क्योंकि दो द्रव्य मिलकर एक परिणतिरूप नहीं होते – ऐसा मानने से दो द्रव्यों में से कोई द्रव्य निःपरिणामी (परिणाम रहित का) हो; परन्तु यहाँ तो सर्व द्रव्य निजपरिणामी हैं, चेतन के चेतन परिणाम, अचेतन के अचेतन परिणाम – इसप्रकार दोनों मिलकर एक अशुद्धपरिणति मानने का निषेध हुआ।

अब जिसप्रकार इन दोनों विकार की उत्पत्ति का रूप है, उसी प्रकार कहते हैं – पुद्गल कर्मत्व विकार होने की ऐसी कथा है–

इस त्रिलोक में कार्माण जाति की वर्गणा (स्कंध) भरी हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जब जिस जीव के जैसी-जैसी जाति का मंद, तीव्र चित्विकार रागभाव होता है, उसी काल में उसी जीव का राग चिकनाई का निमित्त पाकर यथायोग्य कर्मवर्गणा उसी जीव के समीप आकाश प्रदेशों में पुद्गलवर्गणा उस जीव के प्रदेशों से एकक्षेत्रावगाहरूप चिपकती हैं अथवा बँधती हैं, इसप्रकार बँधकर वही कार्मणवर्गणा निज-निज कर्मत्व कार्य में व्यक्त होकर परिणमित होती है, उदयरूप होती है – ऐसा चित्विकार राग कर्मवर्गणा को कर्मत्व व्यक्तरूप अनेकप्रकार परिणमन को निमित्तमात्र है। जैसे दृष्टांत –

जैसे किसी पुरुष के शरीर में तेल लगा है, उसी तेल का कारण पाकर अन्य धूलि मल उस तेल से बँधकर धूलि व्यक्तपने मैलरूप परिणमती है तो भी वह पुरुष उस मैल से मैला होता है – यहाँ ऐसा इतना ही द्रव्यकर्मत्व होने में राग निमित्त का भाव जानना।

विकार की उत्पत्ति –

उसी जीव से एक क्षेत्रावगाह होकर जो कार्मणवर्गणा चिपकी थी। वे सहज आप ही काललब्धि प्राप्त होने पर कर्मत्व व्यक्त परिणामरूप होकर परिणमती हैं। तभी उसी काल में उन वर्गणाओं का व्यक्त कर्मत्व उदय निमित्तमात्र प्राप्त होने पर यह जीव चित्विकारभावरूप प्रगट हो परिणमता है। इति सामान्य निरूपण।

तथा यहाँ एक संक्षेप-सा दृष्टांत जानना – जैसे एक बिल्ली और लोटन नाम जड़ी है। उस जड़ी की जैसी वासना है, वैसी वासनारूप जड़ी अकारण सहज ही अपने आप प्रगट है – ऐसी जड़ी की वासना का निमित्तमात्र इतना ही प्राप्त होने पर सयानी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(चतुर) अपनी गतियों में प्रवीण बिल्ली उस जड़ी की वासना में अपनी सर्व सूरत रंजती धरी (रंजनारूप परिणाम को धारण करती हुई) अपनी चेष्टा की सूरत (रूप) विसर गई (भूल गई)। तब उस बिल्ली के क्या विकार उत्पन्न होता है ? वह बिल्ली उसी जड़ी को तो जाना करती है और उसी जड़ी को देखा करती है; फिर भी उसी जड़ी से मन विरक्त नहीं होता है, उसमें रंजायमान हुआ करती है। इसप्रकार होती हुई बिल्ली उस जड़ी के आगे लोटा करती है। जिसप्रकार इस जड़ी की वासना का निमित्तमात्र इतना ही प्राप्त होने पर बिल्ली लोटने की क्रिया करती है, उसीप्रकार कर्मवर्गणा का कर्मत्व व्यक्त परिणति का निमित्तमात्र इतना ही प्राप्त होने पर यह जीव स्वयं ही चित्‌विकार की क्रिया को करता है। इति सामान्य दृष्टांत द्राष्टांत।

चित्‌विकार वर्णन –

जो एक क्षेत्रावगाही वर्गणा है, वही वर्गणा जिस काल में कर्मत्वरूप व्यक्त होकर आप ही आकार रूप होकर धारा प्रवाहरूप परिणति से परिणमित होती है; तभी उसी काल में उस पुद्‌गल व्यक्त प्रवाह–परिणाम–परिणति का निमित्तमात्र इतना ही प्राप्त होने पर यह जीव वस्त्वंतर (वस्तु+अंतर) होता है, सो क्या ?

इस जीव में स्वरूपाचरणरूप स्वयं में ही विश्राम लेने के भावरूप निजपरिणति की धारा उत्पन्न नहीं होती और कर्ममल व्यक्त परिणाम–प्रवाह परिणति में, पराचरणरूप पर ही में विश्राम लेने के भावरूप पर–परिणति की प्रवाहधारा उत्पन्न होती है। उसी परकर्म–परकर्मत्व व्यक्तधारा में रंजक–रागरूप–जीव पर विश्राम धाराप्रवाह से प्रवृत्त हुआ, स्वयं में विश्राम लेना छूट गया, पुद्‌गल

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में अस्पर्श विश्रामभाव किया, उसका नाम वस्त्वंतर है – ऐसा जब जीव स्वयं ही वस्त्वंतर हुआ, तब यह जीव ऐसे विकाररूप स्वयं ही धारारूप परिणमता है। क्या विकार उत्पन्न हुआ ?

इस जीव का ज्ञानगुण तो अज्ञानरूप प्रवाहरूप परिणमित हुआ। वह अज्ञान विकार कैसा है ? क्रोध, मान, माया, लोभ, इंद्रिय, मन, वचन, देह, गति, कर्म, नोकर्म, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और अन्य जीव – इसप्रकार जितनी भी परवस्तु हैं, उतने को आपरूप जानता है, ये हैं सो मैं ही हूँ, मैं इनका कर्ता हूँ, ये सर्व मेरे कार्य हैं, मैं हूँ सो ये हैं, ये हैं सो मैं ही हूँ, इसप्रकार परवस्तु को जो आप जाने, आपको पर जानता है। तब लोकालोक जानने की सर्वशक्ति अज्ञानभावरूप परिणमित हुई है सो जीव के ज्ञानगुण के अज्ञान विकार उत्पन्न हुआ।

तथा इसीप्रकार जीव का दर्शनगुण था, वह भी जितने परवस्तु के भेद हैं; उतने भेदों को आपरूप ही देखता है। 'यह है सो मैं ही हूँ' इसप्रकार आपको पर देखता है। लोकालोक देखने की जितनी शक्ति थी, उतनी सर्व शक्ति अदर्शन रूप हो गई, इसप्रकार जीव का दर्शनगुण विकाररूप परिणमित हुआ।

तथा जीव का सम्यक्त्व गुण था, वह जीवों के भेदों की अजीवरूप श्रद्धा करता है, अजीव के भेदों की जीवरूप श्रद्धा करता है। चेतन को अचेतन, विभाव को स्वभाव, द्रव्य को अद्रव्य, गुण को अवगुण, ज्ञान को ज्ञेय, ज्ञेय को ज्ञान, स्व को पर, पर को स्व – इसीप्रकार अन्य सर्व विपरीत ही आस्तिक्य श्रद्धा करता है। इसप्रकार जीव का सम्यक्त्व गुण मिथ्यात्वरूप विकाररूप परिणमित हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथा जीव का स्व-आचरण गुण था, वह जितनी भी परवस्तु हैं, उन पर को स्व-आचरण किया करता है, पर में ही तिष्ठा करता है, पर ही को ग्रहण करता है। अपनी चारित्रगुण की सर्वशक्ति पर में ही लग रही है। इसप्रकार जीव का स्वचारित्रगुण विकाररूप हो परिणमता है।

तथा इस ज़ीव का सर्वस्वरूप परिणमित होने का बलरूप सर्व वीर्यगुण था, वह भी सर्व वीर्यशक्ति अत्यन्त निर्बलरूप हो परिणमित हुआ। स्वरूप परिणमन का बल प्रगट नहीं हुआ, पररूप निर्बल हो परिणमित हुआ। इसप्रकार जीव का वीर्यगुण विकाररूप हुआ।

तथा इस जीव का आत्मस्वरूपरूप रस जो परमानन्द भोगगुण था, वह पर-पुद्गल का कर्मत्व व्यक्त साता-असाता, पुण्य-पापरूप-उदय पर-परिणामों के विविध चित्‌विकार परिणामों का रस भोगता रहता है, रस लिया करता है। उस परमानन्दगुण की सर्वशक्ति पर-परिणामों का स्वाद सो परस्वाद परम दुःखरूप है। इसप्रकार जीव का परमानन्दगुण दुःख विकाररूप परिणमित हुआ। इसीप्रकार इस जीव के अन्य गुण जैसे-जैसे विपरीत विकाररूप हुए हैं, सो अन्य ग्रंथों से जान लेना।

इस जीव के सर्वगुणों में विकार को चित्‌विकार नाम संक्षेप से कहते हैं। इसप्रकार यह जीव एक क्षेत्रावगाही कर्मवर्गणाओं से व्यक्त जो कर्म उदयपरिणति का निमित्तमात्र प्राप्त होने पर आप ही वस्त्वंतर हुआ। वस्त्वंतर होने से आप ही चित्‌विकाररूप, धाराप्रवाहरूप होकर उस बिल्ली की भाँति इस त्रिलोक में यह जीव नाचता-फिरता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :– ऐसे चित्‌विकाररूप तो जीव आप ही परिणमित होता है; परन्तु इस एक क्षेत्रावगाही कर्मत्व उदय का निमित्तमात्र प्राप्त होने पर विकाररूप हो, सो इतने निमित्तमात्र से क्या है ?

उत्तर :– इतने निमित्त से यह है कि जीव का इतना विकार भाव अनित्य स्थापित किया, विकार की अनित्यता जड़ (निश्चित) हुई, विकार अवस्तु भाव ठहरा, विकार विकार ही ठहरा, स्वभाव न ठहरा; क्योंकि जिस काल उस कर्मत्व[१] व्यक्त उदयपरिणति की स्थिरता है–जैसा उसका अस्तित्व है, तब यह जीव भी चित्‌विकार का कर्त्ता होता है तथा जिस काल वही एक क्षेत्रावगाही कर्मवर्गणा कर्मत्वरूप नहीं हुई, सहज ही उसी काल इस जीव ने भी चित्‌विकाररूप भाव नहीं किया। इस चित्‌विकार को उस कर्मत्व का निमित्त इतना कारण है। इस चित्‌विकार का अस्तित्व केवल उस कर्मत्व व्यक्त उदय के अस्तित्व से है। वह जाता है तो यह चित्‌विकार भी जाता है; इसलिए इस विकार को अनित्यपना ठहरा तथा यह स्वाधीन वस्तुस्वभाव न ठहरा तथा प्रत्यक्ष विकार, विकार ही ठहरा; क्योंकि स्वभाव की नास्ति तो तब हो, जब इस जीववस्तु का नाश हो जाय; परन्तु वस्तु का कभी भी नाश नहीं है, अतः वस्तुत्वस्वभावभाव आप ही नित्य ठहरा। इस स्वभावभाव का अस्तित्व निजवस्तुत्व के अस्तित्व से है; इसकारण यह स्वभावभाव निजजातिस्वभाव ही ठहरा, सो केवल स्वयं वस्तु ही ठहरी।

तथा इस विकार का अस्तित्व पर के अस्तित्व से है, (पर

1. कर्मत्व व्यक्त उदय का अभिप्राय पुद्गल स्कन्ध के उदय के साथ जीव की परिणति का जुड़ान अर्थात् संबंध है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के अवलम्बन से है।) इसकारण यह अनित्य है, इसका अस्तित्व पराधीन ठहरा तथा जब यह विकारभाव मिट जाता है, तब वह वस्तु तो जैसी की तैसी ही रह जाती है, इसकारण से प्रत्यक्ष जाना जाता है कि यह वस्तु का वस्तुस्वभाव नहीं है। यह भाव इस वस्तु में ऊपरी है, अन्य जैसा ही है। अत: जो अन्य जैसा ही भाव आता है, वह विकारभाव स्वयं को प्रत्यक्ष विकाररूप ही दिखलाता है, मैं इस वस्तु का वस्तुस्वभाव नहीं, पर मैं इस वस्तु में उपाधि हूँ; इसप्रकार आता हुआ वह विकारभाव प्रत्यक्ष दिखलाता है।

तथा जो कोई इसप्रकार प्रश्न करे, जब वस्तु विकाररूप प्रगट होती है, उस काल में स्वभावभाव का क्या होता है ? नाश हो जाता है कि रहता है ? उसका उत्तर स्वभावभाव गुप्तरूप रहता है।

भावार्थ – यह स्वभावभाव तो प्रगट परिणमनरूप है। यह तो नष्ट नहीं हुआ है; परन्तु जो वस्तु है, वह वस्तुस्वभावभाव तो आप स्वयं ही है। उस विकार के जाते ही व्यक्तपरिणाम भावरूप होना सरल है। जैसे वह बिल्ली है तो उसका स्वभावभाव भी नहीं गया है (नष्ट नहीं हुआ है।); क्योंकि जिस काल जड़ी का निमित्त जाता है, निमित्त के जाते ही उस बिल्ली का लोटनेरूप विकार जाता है, तभी उस बिल्ली के निजजातिस्वभाव प्रगट होता है तथा जो लोटते हुए बिल्लीपना मिट गया होता तो वह बिल्ली का स्वभाव कहाँ से प्रगट होता ? न होता। इसकारण लोटते हुए बिल्लीपना नहीं जाता है, बिल्लीपना तो रहता है। जैसे बिल्लीपना रहता है, वैसे स्वभावभाव स्वयं ही रहता है तथा जो रहता है तो व्यक्तरूप होना सरल है। इति तात्पर्य।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार अनादि से इस जीवने चित्विकाररूप होकर भ्रमण किया, अनेक-अनेक विकारभावरूप नृत्य किया। नृत्य करते-करते जब अनन्तकाल व्यतीत हुआ, तब किसी भव्यजीव को वस्तुस्वभावभाव प्रगट परिणामभाव होने की काललब्धि प्राप्त हुई। वह संसारी जीव कैसा है? संज्ञी पंचेन्द्रिय है। ऐसे जीव के काललब्धि आने पर स्वभाव परिणाम जैसे प्रगट होता है, वह रीति कहते हैं -

पौद्गलिक दर्शनमोह की तीन प्रकृति - मिथ्यात्व, मिश्र-मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व - इन तीन प्रकृतियों का मूल से ही विनाश (क्षय) हुआ अथवा उपशम हुआ अथवा क्षयोपशम हुआ अथवा दो प्रकृतियों का तो क्षयोपशम हुआ और एक सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व का उदय है; इसप्रकार तो पौद्गलिक चारित्रमोह की अनंतानुबंधी चौकड़ी का मूल से नाश हुआ अथवा उपशम अथवा क्षयोपशम हुआ, इसप्रकार अनंतानुबंधी की अवस्था हो गई तथा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अंतराय - इन तीनों पौद्गलिक कर्मों के संक्षेप से कितने ही कर्म अंश क्षयोपशम हुए, सो वह क्षयोपशम कैसा जानना ?

कर्म अंशों के उदयरूप होने का अभाव (नाश) होना क्षय है तथा उन कर्म अंशों के सत्ताभाव की सत्ता उपशम है। इन अंशों की दशा ऐसे क्षयोपशमरूप हुई, इसप्रकार इन पुद्गलकर्मों के नष्ट होते ही उसी काल में चित्विकार भी सहज ही नष्ट हो जाता है।

कोई यहाँ प्रश्न पूछता है कि चित्विकार के मिटते ही पुद्गलकर्म का नाश क्यों नहीं कहते हैं ? उसका उत्तर - इस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चित्विकार की स्थिति पुद्गल कर्म की स्थिति के आधीन है। पुद्गल कर्म की स्थिति चित्विकार की स्थिति के आधीन नहीं। इस पुद्गल कर्म की स्थिति कालद्रव्य के आधीन है, जितने काल तक जिन-जिन पुद्गलद्रव्यों को जिस जीव के संग कर्मत्वरूप परिणमना है, उतने ही काल तक कर्मत्व-स्थिति रहती है। उस कर्मत्व परिणमन के काल की जब मर्यादा पूर्ण होती है, तभी पुद्गलकर्मत्व परिणमन की स्थिति समाप्त हो जाती है; अतः काल की मर्यादा पूर्ण होने पर पुद्गल कर्मत्व स्थिति समाप्त होती है। उस पुद्गल कर्मत्व स्थिति के समाप्त होते ही चित्विकार की स्थिति समाप्त हो जाती है; अतः पुद्गल कर्मत्व परिणमने की स्थिति समाप्त हुई, इसप्रकार चित्विकार नष्ट हो जाता है, जीव के जब चित्विकार नष्ट हो जाता है, तब जीव का निजजाति वस्तुस्वभाव जैसा था, वैसा ही परिणामरूप व्यक्त हो प्रवाह को प्राप्त होता है। उसे कहते हैं –

अनादि से जीव का जो स्वभाव आचरणभाव राग, मोहरूप होकर सर्व पर-पुद्गलों में आत्मा मानकर तिष्ठा था, वही स्वरूपाचरणरूप हुआ। कितना ही (भाव) निजवस्तु में ही मग्न हुआ, स्थिरीभूत उत्पन्न हुआ। इति सामान्य कथन।

विशेषरूप से दर्शनमोह पुद्गल की स्थिति जब ही नष्ट हुई, तभी इस जीव का जो स्वसम्यक्त्वगुण मिथ्यात्वरूप परिणमित हुआ था, वही सम्यक्त्वगुण सम्पूर्ण स्वभावरूप हो परिणमित हुआ, प्रगट हुआ। चेतनवस्तु द्रव्य, गुण, पर्याय जीववस्तु जाति की भिन्न आस्तिक्यता-टंकोत्कीर्ण प्रतीति और अचेतनवस्तु द्रव्य,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुण, पर्याय, अजीववस्तु जाति की आस्तिक्यता-टंकोत्कीर्ण भिन्न प्रतीति, सो ऐसा सर्वांग सम्यक्त्व गुण निजजाति स्वरूप हो परिणमित हुआ-प्रगट हुआ।

उसी काल में वह ज्ञानगुण अनंतशक्तियों से विकाररूप अनादि से हो रहा था, उस ज्ञानगुण की उन अनंतशक्तियों में से कितनी ही शक्तियाँ चेतन निजजाति वस्तुस्वरूप स्वज्ञेय जानने को प्रत्यक्ष निजरूप होकर सर्व असंख्यात जीव प्रदेशों में प्रगट हुईं। उनका सामान्य से नाम 'भावमति-श्रुत' कहते हैं अथवा निश्चय श्रुतज्ञानपर्याय कहते हैं अथवा ज्ञानी कहते हैं, श्रुतकेवली कहते हैं या एकदेश प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं या स्वसंवेदनज्ञान कहते हैं अथवा जघन्यज्ञान कहते हैं। उनके अतिरिक्त सर्व ज्ञानशक्तियाँ अज्ञान विकाररूप होती हैं। इन सर्व विकारशक्तियों का सामान्य नाम कर्मधारा कहते हैं - इसप्रकार उस सम्यक्त्वगुण स्वरूप परिणमन के काल में ज्ञानगुण की अनंतशक्तियों में से कितनी ही स्वरूपरूप को प्राप्त हुईं।

तथा उसी काल में जीव के दर्शनगुण की अनादि से अदर्शन विकाररूप अनंतशक्तियाँ हो रही थीं, वे भी कितनी ही शक्तियाँ दर्शन निजजाति स्वस्वरूप होकर असंख्यात जीवप्रदेशों में प्रत्यक्ष प्रगट हुईं और जिसप्रकार ज्ञान की शक्ति प्रत्यक्ष होने की रचना कही थी, उसीप्रकार दर्शनगुण की कितनी ही (शक्तियाँ) प्रत्यक्ष होने की रचना हुई तथा जिसप्रकार ज्ञान की शक्ति कर्मधारारूप कही, उसीप्रकार दर्शनगुण की कितनी ही शक्तियाँ प्रत्यक्ष होने की रचना होकर अन्य शक्तियाँ कर्मधारारूप प्रवाहित होती हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसी काल में जीव के स्वचारित्रगुण की अनंतशक्तियाँ अनादि से पराचरणरूप द्वारा रागरूप हो रही थीं, उन अनंत आचरण शक्तियों में से कितनी ही आचरण शक्तियाँ वीतराग निजजाति होकर निजवस्तु स्वस्वरूप में, स्थिररूप-विश्रामरूप प्रगट हुईं। निज वस्तुस्वरूप आचरण किया, स्थिरता प्राप्त की तथा श्रुतकेवली जीव के अबुद्धिरूप जो चारित्रगुण की कितनी ही शक्तियाँ हो रही हैं, वे चारित्र की शक्तियाँ रागरूप हैं। जहाँ राग वहाँ बंधन है; अतः श्रुतकेवली के बुद्धिरूप-चारित्रगुण शक्तियों से आस्रव-बंध नहीं है। अबुद्धिरूप चारित्र रागशक्तियों से सूक्ष्म आस्रव-बंध होता है – इसप्रकार जघन्यज्ञानी को स्वचारित्रगुण की कितनी ही शक्तियाँ सर्व जीवप्रदेश निजवस्तु में वीतराग होकर स्थिरीभूत विश्राम को प्राप्त हुईं तथा चारित्र की रागरूप (शक्तियाँ) अबुद्धि विकाररूप प्रवर्तती हैं।

तथा उसी काल में इस जीव के एक स्वपरमानन्दभोग गुण की अनंतशक्ति चित्‌विकाररूप, पुण्य, पाप, दुःख भोगरूप अनादि से प्रवर्तती थीं, उनमें से कितनी ही शक्तियाँ स्वपरमानन्दरूप हो सुख भोगरूप प्रवृत्त हुई हैं। जितनी चारित्रगुण की शक्तियाँ स्वआचरण स्थिररूप प्रवृत्त हुईं, उतनी शक्तियाँ परमानन्द भोगगुण के स्वसुख भोगरूप प्रगट हुईं और अन्य शक्तियाँ पुण्य-पाप भोगरूप प्रवर्तती हैं।

तथा उसीकाल में इस जीव के वीर्य (बल) गुण की सर्व शक्ति अनादि से स्वरूप परिणमन के लिए निर्बल हो रही थीं। उनमें से कितनी ही शक्तियाँ निजस्वरूप प्रगट होने को बलवान होकर प्रवृत्त हुईं। सम्यक्त्वगुण और ज्ञानगुण की जितनी शक्ति,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दर्शनगुण की जितनी शक्ति, चारित्रगुण की जितनी शक्ति, परमानन्द गुण की जितनी शक्ति, जितनी परमार्थस्वरूप होकर प्रवृत्त हुई, उतनी ही वीर्यगुण की शक्ति सर्व जीवप्रदेशों में वीर्यबलरूपधारी प्रवृत्त हुई। इसप्रकार किसी भव्यजीव को काललब्धि प्राप्त होने पर सम्यक्त्वगुण, ज्ञान, दर्शन, स्वचारित्र, परमानन्द भोगस्वभाव, वीर्यगुणों की कितनी ही शक्तियाँ स्वस्वभाव रूप प्रगट होकर प्रवृत्त हुईं। उसी जीव के असंख्यात प्रदेशों में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, परमानन्द आदि गुणों की शक्ति बुद्धिरूप शुद्ध अबुद्धिरूप चित्‌विकार होकर अशुद्ध प्रवर्तती हैं – इसप्रकार स्वरूप (ज्ञानधारा) विकाररूप (कर्मधारा) – दो धाराएँ, बारहवें गुणस्थान तक रहती हैं। इस कारण से इस जीव को इतने काल तक मिश्रधर्म परिणति कहते हैं। क्यों ?

स्वभाव तो प्रगट हुआ है; परन्तु गुण विकारी भी प्रवर्तता है, जिससे वह जीवद्रव्य उतने काल तक मिश्रधर्मी कहलाता है तथा जिस काल में मन, इन्द्रिय बुद्धि (ज्ञान) शक्ति सर्वथा स्वभावरूप होगी, तब ही जानो कि गुणों की अनंतशक्ति स्वभावरूप होगी। वहाँ सर्वथा स्वभावरूप गुण कहेंगे। इति मिश्रधर्म अंतरात्मा परिणति कथन समाप्तम्।

॥ इति मिश्रधर्मवाद ॥

हे आत्मन्! जबतक तुझे वृद्धावस्था नहीं पकड़ लेती है, जबतक रोगरूपी अग्नि देहरूपी कुटिया को नहीं जला डालती है और जबतक इन्द्रियों की शक्ति क्षीण नहीं हो जाती है, तबतक तुम आत्मकल्याण कर लो।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

जीवाधिकार वर्णन

मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति, पर-परिणति फल भोगादि चित्‌विकारभाव तथा इस चित्‌विकार होने से जीव के संसार - मुक्त भाव उत्पन्न होते हैं। वे कौन ?

जीव के पुण्य-पाप, शुभ-अशुभभाव, राग-चिकने परिणामरूप जीव का बंधभाव, राग-द्वेष-मोह जीव के आस्रवभाव, परभाव का आचरण नहीं करने रूप जीव का संवरभाव, चित्‌विकार के अंश नष्ट होनेरूप जीव का निर्जराभाव, सर्व चित्‌विकार का नष्ट होना जीव का मोक्षभाव, इतने चित्‌विकार संसार मुक्तिभाव भेषों में एक व्याप्य-व्यापक तो जीव हुआ है; अन्य कोई द्रव्य नहीं हुआ है। इनरूप जीव एक अपने आप है; परन्तु यह भाव कोई जीव का निजजातिस्वभाव नहीं है। इतने भावों में जो चेतना व्याप्त हो रही है, उसी एक चेतना को तू जीव का निजजातिस्वभाव जानना। यह चेतना ही केवल जीव है। वह अनादि-अनंत एकरस है। इसकारण यह चेतना स्वयं साक्षात् जीव जानना तथा इन रागादि विकारभावों को इस जीव के स्वांगभेष निःसंदेह जानने, अतः जीव शुद्धचेतनारूप स्वयं है।

इन रागादिभावों में अपने आप जीव चेतनरूप प्रवर्तता है। चेतना है वह जीव है, जो जीव है वह चेतना है; अतः जीव चेतनरूप अपने आप होकर तिष्ठा है। जीव का निश्चय से चेतना इतना भाव है। अन्य सर्वभाव जीवपद का कोई नहीं है।

॥इति जीवाधिकार॥

अजीवाधिकार वर्णन

पाँच वर्ण, दो गंध, पंच रस, आठ स्पर्श, पाँच शरीर, छह संहनन, छह संस्थान, पाँच मिथ्यात्व, बारह अविरति, पच्चीस कषाय, पंद्रह योग, मोह, राग, द्वेष, वर्गणा-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय, नोकर्म, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक इत्यादि सर्व भेद पुद्गल परिणाममय प्रगट जानने तथा यह पुद्गल जीव के रागादिक का निमित्त प्राप्त होने पर जीव के साथ एकक्षेत्रावगाही होता है-एकीभूत होता है। इसप्रकार जीव से पुद्गल एकीभूत हुए हैं। उस जीव के समीप तिष्ठे हुए पुद्गल जिस-जिस लक्षणरूप हो परिणमते हैं, वे सर्व लक्षण पुद्गलपरिणाम मय जानने। उन लक्षणों को कहते हैं -

तीव्र, मंद, मध्यम कर्म प्रकृतियों के सुख-दुःखरसरूप लक्षण होते हैं, मन, वचन, काय के हलन-चलनरूप लक्षण होते हैं, कर्मों की प्रकृति परिणामरूप लक्षण होते हैं, कर्मत्व के निजफल होने को समर्थ उदयरूप लक्षण होते हैं; चारों गतिरूप लक्षण होते हैं, पाँच इन्द्रियरूप लक्षण होते हैं, छह कायरूप लक्षण होते हैं, पंद्रह योगरूप लक्षण होते हैं, कषाय परिणामरूप लक्षण होते हैं, जीव के ज्ञानगुण की पर्याय में (सुमति-कुमति आदि) आठ नाम संज्ञामात्र वचन-वर्गणा उत्पन्न करने के नाम रचनारूप आठ अवस्था लक्षण होते हैं, जीव के चारित्रगुण की पर्याय में सात नाम-संज्ञामात्र वचनवर्गणारूप रचना कार्य उत्पन्न करने रूप लक्षण होते हैं; जीव के सम्यक्त्वगुण की पर्याय में छह नाम-संज्ञावचन वर्गणारूप रचनामात्र कार्य उत्पन्न करनेरूप लक्षण होते हैं।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीव के छह कर्मरूप रंग नाम भेदकर लेश्यारूप लक्षण होते हैं, जीव संज्ञीभाव के दो नाममात्र भेद रचना उत्पन्न करनेरूप लक्षण होते हैं, जीव के भव्य और अभव्य नाममात्र रचना उत्पन्न करनेरूप लक्षण होते हैं; आहारक, अनाहारकरूप नाममात्र रचना उत्पन्न करने रूप लक्षण होते हैं; प्रकृतियों का निजकाल मर्यादा तक रसरूप रहता है सो स्थितिवश लक्षण होता है, कषायों का उत्कृष्ट विपाकरूप लक्षण होता है, कषायों का मंद विपाकरूप लक्षण होता है; चारित्रमोह विपाक का यथाक्रम से नष्ट होना, वह संयमरूप लक्षण होता है।

पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म, बादर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, तीन इंद्रिय, चार इन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, चौरासीलाख भेदादिरूप लक्षण होते हैं। प्रकृतियों के उदय और उदय अभावरूप अवस्था से भिन्न-भिन्न गुणस्थान होते हैं, वह मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरति, देशविरति, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति-करण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांत-मोह, क्षीण-कषाय, सयोग, अयोग इतने लक्षण होते हैं। ये सर्व लक्षण कहे, वे सर्व पुद्गल परिणाममय जानने।

यह पुद्गल जब जीव प्रदेशों से एकक्षेत्रावगाही पुद्गल होता है, तब जीव के समीप तिष्ठे पुद्गल उपर्युक्त लक्षणों रूप परिणमते हैं; इसकारण से इन लक्षणरूप पुद्गल परिणामों को जीव समीपी (निकटवर्ती) कहते हैं; अतः ये सर्व पुद्गल परिणाम अचेतन पुद्गलमय जानने। इनमें चेतन का भ्रम न करना। सदाकाल अन्य द्रव्य ही जानना। इनको जीवरूप प्रतीति करना ही मिथ्यात्व है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यक् ज्ञाता इनको अचेतन परद्रव्य और भिन्न ही जानता है, स्वयं को चेतनारूप चेतनद्रव्य जानता है भिन्न आचरण करता है (अनुभव करता है)।

तथा जब जीव से एकक्षेत्रावगाही पुद्गल है, वह उदयरूप परिणमित होते हैं, उसी काल में सहज ही जीव का चित्विकार भी उस उदय का निमित्तमात्र प्राप्त होने पर उसी भाँति उसीप्रकार वे भाव से, उसीप्रकार बनकर, उसीप्रकार स्वाँग कर, उसीप्रकार अनुसरण करके चित्विकारभाव होते हैं।

जो क्रोधरूप पुद्गल उदयरूप परिणमित हो, तो उसी काल में चित्विकार भी उसीप्रकार का होता है, इसप्रकार सर्व जानना। जीव के इसप्रकार के चित्विकार भावों को औदयिकभाव कहते हैं अथवा जब इन एक क्षेत्रावगाही पुद्गल प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय – इन तीनप्रकार से नष्ट होने के उपाय द्वारा पुद्गल प्रकृति नष्ट होती है। तब उसी काल में इस जीव का उस प्रकार का चित्विकार भी निःसंदेह नष्ट हो जाता है। जब चित्विकार नष्ट हुआ, तब केवल एक चित् स्वयं ही प्रगट हो जाता है; परन्तु एक विशेष बात है –

जिसप्रकार की प्रकृतियों के नष्ट होने का भाव हो, चित् शुद्धता को उसीप्रकार का नाम प्राप्त होता है। प्रकृतियों का उपशम हो तो चित् को उपशम शुद्धता नाम प्राप्त होता है। प्रकृतियों के क्षयोपशम से चित् को क्षयोपशम शुद्धता नाम प्राप्त होता है प्रकृतियों के क्षय से चित् को क्षायिक शुद्धता नाम प्राप्त होता है। इसप्रकार जीव के औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चार भाव हुए। जो कोई जीव के निजजाति स्वभाव को इन भावों रूप देखता है, वह मिथ्यात्वी है।

अब, इन चारों भावों में प्रवृत्त एक चित् – इनरूप चित् ही हो गया है, वह चित् (जिस जीव ने स्वयं को) एक, केवल, जिन* देखा, वह जीव निजजाति का ज्ञाता हुआ। इन चारों भावों में व्याप्त एक चेतना, वह चेतना (एक जीव) निजरूप होकर प्रगट हुई तथा शुद्धाशुद्ध लक्षण उसी चेतना के भाव ठहरे। जब शुद्धभाव हैं, तब अशुद्ध नहीं हैं, जब अशुद्धभाव हैं, तब शुद्ध नहीं हैं तथा कितने ही काल तक शुद्ध-अशुद्ध दोनों भाव भी होते हैं; परन्तु तो भी यह चेतना इन भावों में सदा पाई जाती है (प्राप्त होती है), कभी भी अस्त नहीं होती; क्योंकि अनादि-अंनत रहती है। अतः ज्ञाता के चेतना ही का जीवरूप आचरण है। एक चेतना ही द्वारा जीवरूप प्रगट होता है। निःसंदेह जीव एक चेतनारूप ही प्रगट हुआ।

॥इति अजीव अधिकारः॥

---

* जिन=परमात्मा

अजीव सुख-दुःख संवेदन शक्ति से रहित हैं, संयोग उदय के अनुसार मिलते हैं, परिणमन योग्यतानुसार होता है, सुख-दुःख अपने परिणामानुसार होते हैं, अतः अन्य के दोष देखना मिथ्या है। स्वयं को भूल जाना ही सबसे बड़ा अपराध है और स्वयं को पहिचानकर स्वयं में ही स्थिर हो जाना निरपराधदशा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कर्त्ता-कर्म-क्रिया अधिकार वर्णन

जिस वस्तु से परिणाम प्रवाह उठा करता है, उस वस्तु को उस प्रवाह का कर्त्ता कहते हैं तथा उस वस्तु के उस परिणाम प्रवाह को कर्म संज्ञा कहते हैं। उस परिणाम प्रवाह में पूर्व परिणाम का व्यय होना और उत्तर परिणाम उत्पन्न होना क्रिया है। तो भी कर्त्ता-कर्म-क्रिया तीनों एक वस्तु के होती हैं; वस्तुत्व में कुछ भेद नहीं है। जैसे मिट्टी कर्त्ता, घड़ा कर्म, पिंड आकार नष्ट होकर घट आकार होना क्रिया; इसप्रकार एक मिट्टी वस्तु में इन तीन भावों का विकल्प करते हैं; परन्तु कर्त्ता-कर्म-क्रिया – ये तीनों मिट्टी के ही हैं, एक मिट्टी से भिन्न नहीं। इन तीनों भेदों में मिट्टी एक ही है। तीनों मिट्टी से ही उत्पन्न हुए हैं। उसीप्रकार चेतनवस्तु के तीनों चेतन ही होते हैं, अचेतनवस्तु के तीनों अचेतन ही होते हैं। अपनी-अपनी वस्तु से ये तीनों व्याप्य-व्यापक होते हैं, पर सत्ता से व्याप्य-व्यापक कोई नहीं होता – यह मर्यादा सदाकाल से है।

एक कर्त्ता के चेतन-अचेतन दो कर्म नहीं होते हैं, एक कर्म के चेतन-अचेतन दो कर्त्ता नहीं होते हैं। एक कर्त्ता की चेतन-अचेतनरूप दो क्रियायें नहीं होती हैं। एक क्रिया के चेतन-अचेतन दो कर्त्ता नहीं होते हैं। एक कर्म की दो क्रियायें नहीं होती हैं और एक क्रिया के दो कर्म नहीं होते हैं। एक कर्त्ता के चेतन कर्म अचेतन क्रिया नहीं होती है, अचेतन कर्म चेतन क्रिया नहीं होती है। एक कर्म के चेतन कर्त्ता, अचेतन क्रिया नहीं होती है; अचेतन कर्त्ता, चेतन क्रिया नहीं होती है; एक क्रिया के चेतन कर्त्ता, अचेतन कर्म नहीं होते हैं; चेतन कर्म, अचेतन कर्त्ता नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होते हैं। अतः एक चेतन सत्त्व के एक चेतन जाति के कर्त्ता, कर्म, क्रिया – तीनों व्याप्य-व्यापक जानने। अचेतन एक सत्ता के एक अचेतन जाति के कर्त्ता-कर्म-क्रिया व्याप्य-व्यापक जानने। अन्य द्रव्य का कर्त्ता अन्य द्रव्य किसीप्रकार भी नहीं होता है, अन्य द्रव्य का कर्म अन्य द्रव्य रूप नहीं होता है। अन्य द्रव्य की क्रिया अन्य द्रव्य की नहीं होती है। निःसंदेह किसी प्रकार भी नहीं होती है। ज्ञाता जानता है, मिथ्यात्वी को कुछ सुध (बोध) नहीं है।

पुनः अन्यत्-परद्रव्य परिणमन कराने के लिये स्वयं निमित्त का कर्त्ता नहीं है तथा कोई द्रव्य किसी द्रव्य को परिणमन नहीं कराता है; क्योंकि कोई द्रव्य निःपरिणामी (अपरिणामी) नहीं, सर्वद्रव्य परिणामी हैं। अन्य कोई जानेगा कि जीव पुद्‌गल मिलकर एक संसारपरिणति उत्पन्न हुई है, वही अनर्थ है; क्योंकि दो द्रव्य मिलकर कभी भी एक परिणति नहीं करते। यदि एक परिणतिरूप हों, तो दोनों द्रव्य का नाश हो जाय। यह दूषण है। अतः चित्-विकार संसार-मुक्तिरूप स्वयं ही व्याप्य-व्यापक होता है तथा भिन्न प्रवर्तता है तथा वहाँ ही पुद्‌गल ज्ञानावरणादि कर्मत्वरूप से व्याप्य-व्यापक होकर अनादि से भिन्न ही सदा परिणमता है, इतना ही जानना।

जीव पुद्‌गल को परस्पर संसारदशा में निमित्त-नैमित्तिकभाव जानना, सहज ही आप-आपरूप भिन्न-भिन्न परिणमन करते हैं। किसी भी जीव का पुद्‌गल से परस्पर संबंध कुछ नहीं है। जिन्होंने यह कर्त्ता-कर्म-क्रिया का भेद भले प्रकार जाना, उन्होंने अपनी चेतना भिन्न जानी, अपनी परिणति की शुद्धता हुई तथा वे ही संसार से भले प्रकार विरक्त होते हैं, परमात्मस्वरूप की प्राप्ति उन्हीं को होती है।

॥इति कर्त्ता-कर्म-क्रिया अधिकार॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुण्य-पाप अधिकार

पौद्गलिक पुण्य-पाप एक कर्म के दो भेद हैं। इन दोनों की एक कर्म जाति है, दोनों कर्म से अभेद हैं, दोनों परस्पर अविरोधी हैं, अचेतन हैं, जीव के चित्विकार में भी पुण्य-पाप उत्पन्न होते हैं, वे दोनों एक विकारभाव के भेद हैं, विकार जाति एक ही है, दोनों विकार से अभेद हैं, दोनों आकुलतारूप हैं, संसाररूप है, खेदरूप हैं, औपाधिक हैं तथा दोनों कर्मबंध के निमित्त हैं, दोनों स्वयं एक बंधरूप हैं, उनसे मोक्ष कैसे हो ? इनसे मोक्ष कभी नहीं होता। जो इन दोनों से मोक्ष होने की प्रतीति करता है, वह अज्ञानी है; क्योंकि जो स्वयं बंधरूप है, उनसे मोक्ष कैसे हो ?

एक जीव का निजजातिरूप चेतनास्वभाव प्रगट होने पर मोक्ष है। उस चेतना का स्वभाव मोक्षरूप है। निःसंदेह उसकी प्रगटता से केवल मोक्ष ही है। इसलिये ज्ञाता के ऐसी चेतना का आचरण है, अतः उसे सहज ही मोक्ष होता है। जीव का विकार पुण्य-पाप केवल बंधरूप है, त्याज्य है। एक जीव का चेतनास्वभाव ही मोक्ष है।

॥इति पुण्य-पापाधिकारः॥

(सोरठा)

अंतर-दृष्टि-लखाउ, निज सरूपकौ आचरन।
ए परमातम भाउ, सिव कारन येई सदा॥१०॥
करम सुभासुभ दोइ, पुद्गलपिंड विभाव मल।
इनसौं मुकति न होइ, नहिं केवल पद पाइए॥११॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आस्त्रवाधिकार

आस्त्रव अर्थात् आना। चित्विकाररूप राग, द्वेष, मोह ये जीव के आस्त्रव हैं। मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग ये अचेतन पुद्गल के आस्त्रव हैं। चित्विकाररूप राग-द्वेष-मोह तो पौद्गलिक आस्त्रव में निमित्तमात्र हैं तथा पौद्गलिक मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योगरूप – ये आठप्रकार आदि कर्मवर्गणा आने में निमित्त हैं। इसकारण से जब जीव ज्ञानरूप परिणमित हुआ, तब ही राग, द्वेष, मोहरूप चित्विकाररूप आस्त्रव से रहित हुआ, तब सामान्य से ज्ञानी को निरास्त्रव कहते हैं। ज्ञानी निरास्त्रव मुख्य नाम पाता है तथा यदि ज्ञानी को भेद से देखते हैं तो जबतक ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुणों का जघन्यप्रकाश है, तबतक आत्मा का स्वभाव जघन्य कहलाता है, तबतक ऐसा जघन्य ज्ञानी बुद्धिपूर्वक तो निरास्त्रव है तथा जघन्य ज्ञानी के अबुद्धिपूर्वक रागभावरूप परिणाम कलंक से आस्त्रव-बंध होता है; अतः जघन्य ज्ञानी बुद्धिपूर्वक परिणामों से निरास्त्रव और निर्बन्ध प्रवर्तता है।

जब अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, चारित्रादि उत्कृष्ट प्रकाशरूप प्रगट हुए, तब आत्मस्वभाव उत्कृष्ट कहलाता है – ऐसे उत्कृष्ट ज्ञानी के बुद्धि-अबुद्धिभाव का नाश हो गया, जिससे उसे सर्वथा साक्षात् निरास्त्रव और निर्बन्ध कहते हैं। उत्कृष्ट ज्ञानी के निरास्त्रव और साक्षात् निरास्त्रव ये दो विशेष भेद जानने। ऐसा चेतन आस्त्रव विकार है; अतः हे संत! तू एक निजजाति चेतना ही जीव का निजस्वभाव जान।

।।इति आस्त्रव अधिकारः।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

बंधाधिकार

बन्ध अर्थात् सम्बन्ध। जीव का चारित्र विकार राग बन्ध है। चिकना रूखा पुद्गलों का ही बन्ध है।

भावार्थ – पौद्गलिक कर्मवर्गणाओं में तो परस्पर चिकने-रूखे भाव से संबंध करता है – ऐसा पुद्गल कर्मस्कन्ध रागी जीव के राग परिणामों से जीव प्रदेशों में चिपकता है – इसप्रकार चेतन विकार बन्ध और अचेतन बन्ध जानना। राग जीव का विकारभाव है, एक चेतना ही जीव का स्वभाव जानना, वह चेतना ही जीव है। बन्धभाव विकार ही है, जीवत्व नहीं है।

।।इति बन्धाधिकार:।।

आत्मानुभव करने की विधि

(सवैया इकतीसा)

प्रथम सुद्रिष्टिसौं सरीररूप कीजै भिन्न,
तामैं और सूच्छम सरीर भिन्न मानिये।
अष्टकर्म भाव की उपाधि सोऊ कीजै भिन्न,
ताहूमैं सुबुद्धिकौ विलास भिन्न जानिये।।
तामैं प्रभु चेतन विराजत अखंडरूप,
वहै श्रुतग्यानके प्रवांन उर आनिये।
वाहीकौ विचार करि वाहीमैं मगन हूजे,
वाकौ पद साधिबेकौं ऐसी विधि ठानिये।।५।।

– **नाटक समयसार, पृष्ठ-२०८**

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संवराधिकार

हे संत! काललब्धि प्राप्त होने पर जितने कर्म नष्ट हुए, उतना जीव का विकार भी नष्ट हुआ है। विकार के नाश होने पर जितने सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि स्वरूपरूप होकर प्रगट हुए, वे विकाररूप नहीं प्रवृत्त हुए, उसे संवरभाव कहते हैं।

भावार्थ – जो शक्ति विकाररूप नहीं होती है, वह संवरभाव है। जीव के ऐसा संवरभाव होने पर उस जीव के कर्मवर्गणाओं का आना भी सहज ही रुकता है। इसीप्रकार जीव संवर, पुद्गल कर्म संवर दोनों होते-होते जीव अपने आप सर्व संपूर्ण स्वभावरूप प्रगट होता जाता है तथा सर्व कर्मवर्गणाओं का उस जीव की ओर आना रुक जाता है। इसप्रकार जो संवररूप में प्रगट हुआ; वह एक चेतना ही का स्वभाव जानना। वह चेतना जीव (वस्तु) है। संवर वह कोई भाव (दशा, अवस्था) है।

॥इति संवराधिकारः॥

(सवैया तेईसा)

जो कबहूं यह जीव पदारथ,
औसर पाइ मिथ्यात मिटावै।
सम्यक धार प्रवाह बहै गुन,
ज्ञान उदै मुख ऊरध धावै॥
तो अभिअंतर दर्वित भावित,
कर्म कलेस प्रवेस न पावै।
आतम साधि अध्यातमके पथ,
पूरन ह्वै परब्रह्म कहावै॥४॥

- नाटक समयसार, पृष्ठ-१२३

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संवरपूर्वक निर्जराधिकार

जैसे-जैसे पुद्गलकर्म विपाक देकर नष्ट होता है, वैसे-वैसे चित्‌विकार के भावभेद भी नष्ट होते हैं तथा जो भाव नष्ट हो गए फिर उनका होना रुक जाता है। इसप्रकार अचेतन-चेतन संवरपूर्वक कर्म और विकार दोनों नष्ट होते हैं, वह संवरसहित निर्जरा है - ऐसी निर्जरा होते-होते जीव का स्वभाव प्रगट होता है, कर्म सब दूर होता है; अतः निर्जरा एकभाव है और जो निर्जरावंत चेतना है, वह एक चेतना जीववस्तु है।

॥ इति संवरपूर्वक निर्जराधिकार॥

(सवैया इकतीसा)

जैसैं निसि वासर कमल रहै पंकहीमैं,
पंकज कहावै पै न वाकै ढिग पंक है।
जैसैं मंत्रवादी विषधरसौं गहावै गात,
मंत्र की सकति वाकै विना-विष डंक है॥
जैसैं जीभ गहै चिकनाई रहै रूखे अंग,
पानीमैं कनक जैसैं काईसौं अटंक है।
तैसैं ग्यानवंत नानाभांति करतूति ठानै,
किरियाकौ भिन्न मानै यातैं निकलंक है॥५॥

- नाटक समयसार, पृष्ठ-१३२

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

मोक्षाधिकार

इसप्रकार संवरपूर्वक निर्जरा होते-होते जब जीवगुण (गुण-विकार) एककर्मपुद्गल अथवा जीवद्रव्य (प्रदेश विकार) एक कर्मपुद्गल सर्वथा जीव से भिन्न होते हैं; तब इन पुद्गलकर्म के सर्वथा नष्ट होते ही जीव का गुणविकार और जीव का प्रदेश विकार सर्वथा नष्ट हो जाता है। जब इसप्रकार पुद्गल की रोक और जीव विकार सर्वथा नष्ट होते हैं तभी से मोक्षभाव कहते हैं; ऐसा मोक्षभाव होने पर साक्षात् जीव का सर्व निजजातिस्वभावरूप प्रगट हुआ। सर्व स्वभावभाव अनादि से विकाररूप होने से गुप्त हो रहा था, वह भी काल प्राप्त होने पर कुछ विकार दूर हुआ, उसी समय कुछ स्वरूपभाव साक्षात् प्रगट हुआ। उतना ही स्वरूप बानगी (नमूना) में संपूर्ण स्वरूप वैसा ही प्रतिबिंबित होता है और तब से स्वरूप क्रम-क्रम से प्रगट होते-होते साक्षात् होता है।

भावार्थ – जितना स्वरूप विकाररूप हुआ था, उतना ही स्वरूप साक्षात् व्यक्त हुआ। इसी-इसीप्रकार स्वरूप आत्मा के उत्कृष्ट स्वरूप को साध रहा था, प्रकाशित करता था सो सर्व संपूर्ण प्रगट सिद्ध हुआ। संपूर्ण साक्षात् प्रगट हुआ, अन्य कुछ प्रगट होना शेष नहीं है। जो जिस भाँति से स्वरूप प्रगट होना था वह पूर्ण प्रगट हो गया। इसप्रकार आत्मा का स्वरूप संपूर्ण परिणाम प्रवाहरूप उत्पन्न हुआ।

उस आत्मा को नाम (संज्ञा) से क्या कहते हैं ? परमात्मा, सिद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वस्वविश्रामी, मुक्त, धर्मी, केवल, निष्केवल, स्वयं। तात्पर्य यह है कि सर्व मोक्षभाव में जैसा जीव का स्वरूप था, वैसा ही सर्व परिणमित हुआ। मोक्ष एक भाव है और जो मोक्षवंत चेतना है, सो एक जीव निजजाति है। ।।इति मोक्ष अधिकार।।

कुनयाधिकार

जो कोई विकल्प इसप्रकार मानता है – स्वभावभाव परिणतिरूप होगा, तभी तो स्वभाव माना, अन्यथा नहीं मानो तो उस अज्ञानी ने वस्तु का नाश किया, वस्तु को नहीं जाना तथा जो कोई इसप्रकार मानता है, स्वभावभाव प्रगट परिणति से क्या है ? वस्तु ही से कार्य सिद्धि है? तो ऐसे अज्ञानी ने स्वभावभाव परिणति का नाश किया, शुद्ध होने का अभाव किया; विकार परिणति सदा रखने का भाव किया, मुक्त होने का नाश किया।

तथा जो कोई इसप्रकार मानता है – यह जो कुछ करता है, सो सर्व पुद्गल कर्म करता है, जीव न कुछ करता है, न कराता है, जैसा का तैसा भिन्न रहता है तो वह अज्ञानी स्वयं को शुद्ध-अशुद्ध दोनों रूप नहीं देखता है, वह विकार-अविकार स्वभाव दोनों को नहीं जानता है, वह विकार को नहीं छोड़ेगा तथा कोई इसप्रकार मानता है – पुद्गल विपाक निमित्तमात्र से क्या है ? स्वयं स्वयं को निमित्त होकर स्वयं विकाररूप परिणमता हूँ ? तो उस अज्ञानी ने विकार को नित्य माना, स्वरूप के समान माना।

सविकल्प अमूर्त्त द्रव्य के छाया तो नहीं है; परन्तु कोई अज्ञानी (जन) जीव के छाया स्थापित करके उस छाया को कर्म विडंबना लगाता है, जीव को भिन्न रखता है तो उस अज्ञानी के यह छाया भी एक वस्तु है, जीव उस छाया से अन्य किस क्षेत्र से आया ? तथा कोई अज्ञानी इसप्रकार मानता है – स्व चेतन-पर अचेतन, इतना ही ज्ञान-दर्शन होने पर जीव सर्वथा मोक्षरूप हुआ है, साक्षात् सिद्धपद को प्राप्त हुआ, सर्वथा ज्ञानी हो निवृत्त हुआ तथा

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीव को अब कुछ शुद्ध होना शेष नहीं है, उस पुरुष ने भाव इन्द्रिय, भावमन, बुद्धिपूर्वक, अबुद्धिपूर्वक तथा जितनी जीव की अशुद्ध प्रगट चित्विकाररूप परिणति उतनी जीवद्रव्य की नहीं जानी। जीवद्रव्य वर्तमान वर्तता नहीं देखा, उसने एकदेशभाव को संपूर्णभाव स्थापित किया। यह भावइन्द्रिय आदि परिणति किसी और द्रव्य की स्थापित की, तब उस पुरुष ने अशुद्धपरिणति रहने से अशुद्ध नहीं माना तथा इस अशुद्धपरिणति के जानने से (नष्ट होने से) जीव पर्याय को शुद्ध नहीं मानेगा, तब उस पुरुष ने साक्षात् परमात्मस्वरूप संपूर्णस्वरूप-सर्वथा मोक्षस्वरूप होने का अभाव किया, सदा संसार रखने का उद्यम किया।

तथा कोई अज्ञानी इसप्रकार मानता है – स्वसंवेदन शक्तियों को संपूर्ण स्वभावरूप ज्ञान होना मानता है, इतनी ही ज्ञान की शुद्धता मानता है, इतने ही ज्ञान को सर्व होना मानता है, इतने ही स्वसंवेदनभाव को स्वरूप मानता है, इसी को सिद्धपद मानता है, अन्य सर्व भावों से जीव को शून्य मानता है, चारित्रगुण के स्वभाव के समान ज्ञान-दर्शन के स्वभाव को मानता है; उस अज्ञानी ने ज्ञान का निजस्वभाव स्वज्ञेय-परज्ञेय प्रकाशक नहीं श्रद्धान किया तथा उस पुरुष ने स्व को देखने का, पर को देखने का दर्शनगुण का निजस्वभावरूप श्रद्धान नहीं किया है तथा उस पुरुष को स्व-पर का भेद नहीं उत्पन्न होगा। क्यों ? पर को जानने पर स्व का भी जानना होता है; क्योंकि परपद तो तब स्थापित होता है, जब पहले स्व को स्थापित करे और स्व तब स्थापित होता है; जब पहले पररूप स्थापित होता है और इसीप्रकार कहता है कि ज्ञान के स्वभाव को ही स्व स्थापित करने का है, मेरे ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही ज्ञान प्रगट हुआ है, तो यह पुरुष बातों के द्वारा तो ऐसा भाव कहता है; परन्तु उस पुरुष के स्वस्थापना का ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है। स्वस्थापन का ज्ञान जब उत्पन्न होता है, तब पर को पररूप स्थापन का भाव उत्पन्न होता है – ऐसा स्वपरप्रकाशक ज्ञान का, दर्शन का निजस्वभाव ही है तथा इस स्वभाव को नहीं माने तो ज्ञान–दर्शनगुण नष्ट हुआ। जब गुण नष्ट हुआ तो द्रव्य नष्ट हुआ। जब द्रव्य नष्ट हुआ तो वस्तु नष्ट हुई। एक स्व–संवेदन को मानने से सर्व एकांत स्थापन से इसप्रकार नष्ट होने की परम्परा सिद्ध होती है, अन्य कुछ साध्य सिद्धि नहीं है।

तथा कोई अज्ञानी इसप्रकार मानता है – जबतक ज्ञान कुछ जानता है, तबतक ज्ञान मलिन है। जब ज्ञान का जानना स्वभाव मिट जाता है, तभी जीव सिद्धरूप होता है।

वह अज्ञानी ज्ञान का स्वभाव मूल से नहीं जानता है। वह इस प्रकार नहीं जानता कि 'ज्ञान' तो उसको कहते हैं जो 'जानता' है तथा वह 'जानना' ही नष्ट किया तब उसे 'ज्ञान' कैसे कह सकते हैं ? उस ज्ञानगुण का नाश ही हुआ, तब वस्तु का नाश सहज ही हुआ। इसी के समान बहुत से अनर्थ जानना।

॥इति कुनयाधिकार॥

स्याद्वाद की प्रशंसा

(दोहा)

इहि विधि आतम ग्यान हित, स्यादवाद परवांन।
जाके वचन विचारसौं, मूरख होइ सुजान॥२८॥
स्यादवाद आतम दशा, ता कारन बलवान।
सिवसाधक बांधा रहित, अखै अखंडित आन॥२९॥

– नाटक समयसार, पृष्ठ–३३२

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्भावाय यथाऽस्ति तथाऽवलोकनाधिकार

(सम्यग्भाव के लिए जिसप्रकार है, उसीप्रकार अवलोकन करने का अधिकार।)

(कोई ऐसा मानता है कि) चेतन, अचेतन, द्रव्य, गुण, पर्यायरूप जितने भी ज्ञेय हैं उतने ही का जो देखना-जानना, यह देखना-जानना ही चेतनद्रव्य की सिद्धि है। अरे! सब ज्ञेय का देखना-जानना प्रकाश के समान है। इतने से (ही) तो उस जीवद्रव्य की सिद्धि नहीं हुई। निःसंदेह चेतना का पिण्ड-चेतन ग्रन्थि इतनी जीववस्तु की सिद्धि है। हे जीव! यदि कोई कम, शरीर, कषाय, राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्व, नाम, यशःकीर्ति, इन्द्रिय, पुण्य, पाप, जीवस्थान, योनि, मार्गणा, गुणस्थान आदि सर्व पौद्गलिक भावों को जीववस्तुरूप प्रतीति करे तो जीववस्तु की सिद्धि नहीं होगी। ये भाव तो सर्व अचेतन परद्रव्य के परसत्त्वस्वरूप हैं। जीव वस्तु की 'चेतनाभाव पुंज' इतनी ही सिद्धि है।

तथा यदि कोई अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व, अविरति, शुभ, अशुभ, भोग, राग, द्वेष, मोह आदि चित्तविकार को ही जीववस्तुरूप प्रतीति करेगा तो विकार से जीववस्तु की सिद्धि नहीं है वह तो चेतन का कलंकभाव है। जीववस्तु की 'मूल चेतनामात्र' इतनी ही सिद्धि है।

तथा सम्यक्त्व होना, एकाग्रता होना, यथाख्यात होना, अंतरात्मा-भाव होना, सिद्धभाव होना, केवलज्ञान, केवलदर्शन होना, स्वभाव प्रगट होना इत्यादि भावों के होने को कोई जीववस्तु जानेगा तो अरे! वे प्रगट होने के भाव तो सर्व चेतना की अवस्था है-दशा है। जीववस्तु की 'चेतनामात्र मूलस्थान' इतनी ही सिद्धि है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई (यदि) संसार-मुक्तिभाव को जीववस्तु जानेगा तो, हे जीव! वह भी तो चेतना की दशा है। जीववस्तु 'मूल चेतनामात्र' इतनी ही है तथा कोई अमूर्तादि भावों को जीववस्तु जानेगा, तो हे जीव! वह तो अचेतन द्रव्यों में भी पाये जाते हैं। जीववस्तु 'मूलस्थान चेतनामात्र' इतना ही है तथा कर्त्ता, कर्म, क्रिया, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, द्रव्य, गुण, पर्याय, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, सामान्य, विशेष इत्यादि भाव भेदों को जीववस्तु जानेगा, तो वह भेद तो सर्व वस्तुओं की नित्य अवस्था है। जीववस्तु 'चेतनामात्र मूल वस्तु' इतनी ही है।

तथा द्रव्यार्थिक से वस्तुभाव प्रगट होता है तथा पर्यायार्थिक से वस्तु प्रगट होती है अथवा निश्चय से वस्तु प्रगट होती है अथवा व्यवहार से वस्तु प्रगट होती है। इन भावों को कोई जीववस्तु जानेगा तो वह भी तो वस्तु की अवस्था है-वस्तु की दशा है। जीववस्तु की 'चेतनावस्तु मूल' इतनी ही सिद्धि है।

सर्व का भावार्थ यह है कि जो चेतना वही जीववस्तु की सिद्धि है। जीववस्तु एक चेतना निष्पन्न हुई। अन्य भेद विकल्परूप जीववस्तु कहीं भी, (भूलकर भी) कभी भी, किसी भी प्रकार नहीं होती। एक चेतना ही के भेद से जीवद्रव्य की सिद्धि हुई। चेतना से जीववस्तु की सिद्धि निःसंदेह दर्शायी गई। अब यह चेतना निःसंदेह प्रगट करते हैं।

हे भव्य! सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सुख, भोगादि इन भावों से बंधित एक पिंड-एक (मिश्रण)-एक पुंज को चेतना कहते हैं। इसी पुंज पिंडरूप से चेतना सिद्ध हुई। चेतना इन गुणों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की गाँठ सिद्ध हुई। इन ज्ञानादिभावों से जो कुछ अन्य सर्वभाव हैं, वे कोई भाव चेतना को प्राप्त नहीं हुए। चेतना से निःसंदेह इन ज्ञानादि भावों की सिद्धि हुई।

सर्व का भावार्थ यह है कि कोई अन्य भाव चेतनारूप नहीं होते। चेतना इन ज्ञानादिभाव से उत्पन्न है।

अब कोई प्रश्न करता है – जो चेतना से जीववस्तु अनादि से सिद्ध है तथा इन ज्ञानादिभावों से अनादि से चेतना की सिद्धि है, तो उसी से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि उत्पन्न हुए, वह उत्पन्न होना क्या है ? उसे तू सुन –

मित्र! यह उत्पन्न हुई चेतना तथा चेतना के ज्ञानादिभाव तो अनादि से जिसप्रकार हैं, उसीप्रकार ही हैं; इनमें तो कुछ हलचल नहीं हुई है। प्रत्यक्ष हैं, कहीं आये-गये नहीं हैं, इस बात में कुछ भी संदेह नहीं है। हे भाई! वस्तु तो सत् है, विद्यमान है; परन्तु अनादि से यह विभाव-विकारभाव दोष इस जीव को उत्पन्न हुआ, इसकारण से पागल जैसी दशा हो रही है। वह क्या ?

स्व को पर रूप स्थापित करता है, पर को स्व रूप स्थापित करता है, स्व का--पर का नाम भी नहीं जानता है। दर्शन, ज्ञान, सम्यक्त्व, चारित्र, परमानंद, भोगादिभाव विकारी हो गये, उनमें ज्ञान तो अज्ञान विकाररूप प्रवृत्त हुआ; तब स्वज्ञेय आकार को नहीं जानता है, परज्ञेय आकार को नहीं जानता है। स्वज्ञेय का नाममात्र भी नहीं जानता है – इसप्रकार ज्ञान की शक्ति अज्ञानरूप हो प्रवृत्त हुई।

दर्शन, अदर्शन, विकाररूप प्रवृत्त हुआ, तब स्वदृश्य (देखने-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

योग्य स्व) वस्तु नहीं देखता है, परदृश्य (देखने-योग्य पर) वस्तु नहीं देखता है, स्वदृश्य और परदृश्य नाममात्र भी नहीं जानता है, इसप्रकार दर्शन की शक्ति अदर्शनरूप ही प्रवृत्त हुई। स्व की स्वरूप प्रतीति नहीं है, पर की पररूप से प्रतीति नहीं है, इस-प्रकार सम्यक्त्व की शक्ति मिथ्यारूप हो प्रवृत्त हुई।

चारित्र विभावरूप प्रवृत्त हुआ, तब निजवस्तुभाव स्थिरता-विश्राम आचरण छोड़कर, चारित्र की सर्वशक्ति पर-पुद्‌गल स्वाँगवत् विकारभावों में स्थिरता-विश्राम आचरणरूप प्रवृत्त हुई। इसप्रकार चारित्र विभावरूप प्रवृत्त हुआ।

भोगगुण विभावरूप व्रवृत्त हुआ, तब निजस्वरस स्वादभोग छोड़कर, पर-पुद्‌गल स्वाँगवत् चित्‌विकारभावों के स्वादभोगरूप व्रवृत्त हुआ, इसप्रकार भोग की शक्ति विभावरूप प्रवृत्त हुई।

इसप्रकार भैया! जब चेतना विकार रूप हुई, तब यह चेतना स्वयं नास्तिरूप जैसे हो रही थी – ऐसा कोई कौतुक (आश्चर्य-जनक) रूप हुआ जैसे हाथ ऊपर रखी वस्तु को अन्य स्थान में देखते-फिरते हैं, वही दशा इस चेतना की हो गई। स्वयं नास्ति यह भ्रमरूप उत्पन्न हुआ। काल प्राप्त होने पर सम्यक्त्वगुण, श्रद्धागुण तो विकार से रहित होकर सम्यक्त्व रूप हो प्रवृत्त हुआ, अपने शुद्ध श्रद्धानरूप हो प्रवृत्त हुआ। ऐसे निर्विकल्प सम्यक्त्व को सम्यक्‌रूप कहना तथा जब विशेष भेद विकल्प से सम्यक्त्वगुण को सम्यक्‌रूप कहना हो, तब इसप्रकार कहते हैं –

स्वजाति का स्वजाति द्वारा भिन्न निर्णय हुआ, इतना तो विकल्प जानना। 'सम्यक्' इतना तो निर्विकल्प जानना तथा उसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समय ज्ञानगुण की कितनी ही शक्तियाँ सम्यक्रूप परिणमित हो केवल जाननेरूप प्रवृत्त हुईं, इन ज्ञान की शक्तियों को सम्यक्रूप इतना कहना निर्विकल्प।

जब सम्यक्ज्ञान शक्ति के भेद विकल्प करें, तब स्वज्ञेय जाति भेद जानना, परज्ञेय जातिभेद भिन्न जानना; इसप्रकार विकल्प करें। सम्यक्ज्ञान शक्ति इतना कहना निर्विकल्प।

उसी समय दर्शनगुण की कितनी ही शक्तियाँ सम्यग्दर्शनरूप हो प्रवृत्त हुईं, केवल (मात्र) दर्शन रूप हुईं। इसप्रकार तो निर्विकल्प दर्शन को 'सम्यक्त्वरूप' कहना और जब सम्यक्दर्शन की सम्यक् शक्तियों को विशेष भेद द्वारा कहना हो, तब स्वदृश्य वस्तु जाति भिन्न देखना, परदृश्य वस्तु जाति भिन्न देखना, इसप्रकार तो विकल्प और दर्शनशक्ति को 'सम्यक्' इतना कहना निर्विकल्प है।

उसी समय चारित्रगुण की कितनी ही शक्तियाँ सम्यक्रूप हो प्रवृत्त हुईं-केवल चारित्र निजरूप हो प्रवृत्त हुईं; इसप्रकार जब चारित्रशक्तियों को 'निर्विकल्प सम्यक्' कहा, तब चारित्र की सम्यक्शक्तियों को भेदविकल्प से इसप्रकार कहना-पर को छोड़ना, निजस्वभावभाव में स्थिरता-विश्राम-आचरण करना यह भी विकल्प है। चारित्रशक्तियों को 'सम्यक्रूप' इतना कहना निर्विकल्प।

उसी समय भोगगुण की कितनी ही शक्तियाँ सम्यक्रूप हो प्रवृत्त हुईं-केवल निजभोगरूप प्रवृत्त हुईं; इसप्रकार भोगगुण की शक्तियों को निर्विकल्प सम्यक् कहना और भोगगुण की शक्तियों को भेदविकल्प से इसप्रकार कहना। परस्वाद छोड़कर निजस्वभावों का स्वाद लेना, विकल्प (भेद) हैं, भोगशक्तियों को 'सम्यक्' इतना कहना निर्विकल्प है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार सम्यक्त्व गुण की सर्व शक्तियाँ, ज्ञानादि गुणों की कितनी ही शक्तियाँ सम्यक्रूप हुईं। इस सम्यक्त्व को भेदाभेद विकल्प से दिखाया। इनका अभेद पुंजरूप-गाँठरूप चेतना वह चेतना कितने ही अंश में सम्यक्रूप हुई, जितनी ही चेतना सम्यक्रूप उत्पन्न हुई। वह चेतना सम्यक् से अभेद निर्भेद है तथा इस चेतना को सम्यक्रूप उत्पन्न होते जीववस्तु को सम्यक्रूप उत्पन्न हुआ कहलाता है, केवल निजरूप हुआ कहलाता है। जैसा स्वयं था, वैसा ही अपने आप प्रगट हुआ, मूलस्वरूप परिणमित हुआ तथा निम्नप्रकार भी कहा जाता है –

अनादि से विकार रूप अटवी में भ्रमण करते हुए इस जीववस्तु ने अब निज सम्यक्रूप गृह में आकर निवास किया। इस जीव का मूल सम्यक्भाव था, वह मूल (अपना) भाव गुप्त हो रहा था, वह अब कैसा प्रगट हुआ; वह कहते हैं –

अब यह जीव अपने सम्यक्भाव प्रगटने से अपने सम्यक् स्वभावरूप समुद्र में स्वयं ही मग्न हुआ। यह सम्यक्भाव जीव को सर्व अन्य विकल्पों से भिन्न दिखलाता है। एक गुण की अपेक्षा अन्य सर्व अनंतगुणों की पुंज वस्तु कहलाती है। उस वस्तु को ज्ञान जानता है, दर्शन देखता है, चारित्र स्थिरीभूत होकर आचरण करता है, वह इसप्रकार –

ज्ञान-दर्शन चारित्ररूप मैं हूँ अथवा चेतनामात्ररूप मैं हूँ, यह विकाररूप मैं नहीं हूँ, सिद्धसमान मैं हूँ, बंध, मुक्त, आस्रव, संवररूप मैं नहीं; अब मैं जागा, मेरी नींद गई, मैं अपने एक स्वरूप का अनुभव करता हूँ, मैं सर्वांग स्वरूप का अनुभव करता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हूँ, मैं इस संसार से भिन्न हो गया, मैं स्वस्वरूपरूप हाथी पर आरूढ़ हुआ, मैंने अशुद्धभाव पट (किवाड़) खोलकर स्वरूप घर में प्रवेश किया, मैं इन संसार परिणामों का तमाशगीर (दर्शक) हुआ, इन्द्रियादि भाव मेरा स्वरूप नहीं है, मैं अभेदरूप को अनुभव करता हूँ, मैं निर्विकल्प आचरण करता हूँ, निश्चय, व्यवहार, नय, प्रमाण, निक्षेपादि अब मेरे नहीं हैं, ज्ञानादि गुणों की पर्याय भेदभाव है, मेरे गुणस्वरूप में भेदभाव नहीं है। गुणस्थानादि भाव मेरा स्वरूप नहीं, अब मैं अपने आपको देखता-जानता हूँ; अब मैंने स्वभावभाव भिन्न किया, परभाव भिन्न किया, मैं अमर हूँ, इसप्रकार अनेक-अनेक भाँति मनवचन में सम्यक्भाव की स्तुति होती है।

बारम्बार मन में चिंतन करता है, इसप्रकार विचारता हुआ सुख मानता है; परन्तु यह सर्व मन-वचन का विकल्प चिंताभाव का प्रवर्तन है। मन-वचन के विकल्प हैं; परन्तु सम्यक्भाव का तात्पर्य इतना ही है -

ज्ञानपरिणाम तो सम्यक्ज्ञान परिणामरूप वर्तते हैं। दर्शन परिणाम तो केवल सम्यक्दर्शन परिणाममय वर्तते हैं; चारित्र परिणाम तो केवल एक सम्यक् स्वचारित्र परिणामरूप वर्तते हैं। भोग परिणाम तो एक सम्यक् स्वभोगरूप वर्तते हैं, इसप्रकार अपने-अपने स्वभावरूप साक्षात् प्रगट हुए परिणाम प्रवर्तते हैं।

इसप्रकार विशेषरूप से ज्ञानादिगुण, सामान्यरूप से एक चेतना ही - ऐसे स्वभावरूप प्रवर्तते हैं। सम्यक्भाव टंकोत्कीर्ण निश्चलरूप धारण किए हुए परिणमित होता है। इतने कथन से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो कुछ अन्य प्रकार कहना, वह निःसंदेह सब दोष विकल्प है; क्योंकि उस सम्यक्भाव प्रगट परिणमन में अन्य परमाणुमात्र का भी कोई लगाव (संबंध) कुछ नहीं। केवल एक अपने-आप स्वरूप परिणाम प्रवाह होता रहता है, वहाँ अन्य कोई बात नहीं, अन्य कोई विकल्प नहीं। सम्यग्दृष्टि के द्रव्य में ऐसी सम्यग्धारा प्रगट हुई है। उनके तो इसीप्रकार प्रवर्तना है; परन्तु अन्य भाँति जो कुछ स्वरूप का कथन, यह सर्व दोष विकल्प मन-वचन के हैं।

॥इति सम्यग्भावाय यथाऽस्ति तथाऽवलोकन अधिकारः॥

ज्ञानचेतना और कर्मचेतना का वर्णन

(सवैया इकतीसा)

जहां परमातम कलाकौ परकास तहां,
धरम धरामैं सत्य सूरज की धूप है।
जहां सुभ असुभ करमकौ गढ़ास तहां,
मोह के विलासमैं महा अँधेर कूप है॥
फैली फिरै घटासी छटासी घन-घटा बीचि,
चेतनकी चेतना दुहूंधा गुपचुप है।
बुद्धिसौं न गही जाइ बैनसौं न कही जाइ,
पानी की तरंग जैसैं पानीमैं गुडूप है॥३॥

जहाँ आत्मा में ज्ञान की ज्योति प्रकाशित है, वहाँ धर्मरूपी धरती पर सत्यरूप सूर्य का उजाला है और जहाँ शुभ-अशुभ कर्मों की सघनता है, वहाँ मोह के फैलाव का घोर अंधकारमय कुआ ही है। इसप्रकार जीव की चेतना दोनों अवस्थाओं में गुपचुप होकर शरीररूपी मेघ-घटा में बिजली के समान फैल रही है। वह बुद्धिग्राह्य नहीं है और न वचनगोचर है, वह तो पानी की तरंग के समान पानी ही में गर्क हो जाती है अर्थात् समा जाती है॥३॥ **- नाटक समयसार, पृष्ठ-१७३**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यक् निर्णय

अब अन्य कुछ नहीं। द्रव्य जैसा का तैसा ही जानना। जीव के सम्यक् होना ऐसा जानना जैसा पागल से सयाना (चतुर) होना। इतना ही दृष्टांत भले प्रकार जानना तथा ज्ञानादि सम्यक् का एक रस, अनेक रस एक ही पिंड है, दृष्टांत – जैसे पाँच रसों को मिलाकर एक गुटिका बनी। उस गुटिका का अब विचार करना तो यदि पाँचों रसों को देखें तो एक-एक रस अपने-अपने ही स्वाद के लिये सर्वथा अन्य रस से भिन्न-भिन्न प्रवर्तता है। किसी रस का स्वाद किसी रस के स्वाद से नहीं मिलता। सभी रस प्रत्यक्ष अपने-अपने स्वादरूप अचल दिखते हैं तथा यदि गुटिका भाव की ओर देखें तो उस गुटिका भाव से बाहर कोई रस नहीं है, जो रस है वह गुटिकाभाव में तिष्ठता है; उन पाँचों रसों का जो मिलकर पुंज या पिंड वही गोली। इसप्रकार कथन में तो भेद विकल्प-सा आता है; परन्तु एक ही समय पाँचों रसों का मेलरूप भाव एकांत गोली का भाव है। सो प्रत्यक्ष शुद्धदृष्टि से दृष्टांत और दार्ष्टान्त देखना।

इसप्रकार सम्यक्त्वगुण और सम्यक्ज्ञानादि गुणों की शक्ति सम्यक्रूप हुई। वे ही पाँचों गुण अपने-अपने सम्यक्रूप भिन्न-भिन्न रूप परिणमित होते हैं। किसी गुण का सम्यक्भाव किसी अन्य गुण के सम्यक्भाव से नहीं मिलता। सम्यक्त्व का जो वस्तु आकार श्रद्धान सम्यक् है, वही श्रद्धान सम्यक्रूप परिणमता है। ज्ञान शक्तियों का आकार जाननामात्र है, वही इतना सम्यक्भाव भिन्न ही परिणमित होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दर्शनशक्तियों का वस्तु देखनेमात्र है, वही सम्यक्‌भाव भिन्न ही परिणमित होता है।

चारित्रशक्तियों की निजवस्तु के स्वभाव में स्थिरता विश्राम आचरणमात्र इतना ही सम्यग्भाव है, वही चारित्र का सम्यग्भाव भिन्न ही परिणमित होता है।

भोगशक्तियों को निजवस्तु के स्वभाव ही में आस्वादरूप सम्यक्‌भाव है, वह भाव इतना ही भिन्न परिणमित होता है। ये पाँचों सम्यक् अपने-अपने भाव से परिणमित होते हैं, कोई किसी में नहीं मिलता और अपने-अपने सम्यग्भाव से च्युत भी नहीं होते, जैसे के तैसे भिन्न-भिन्न परिणमित होते है। इसप्रकार तो सम्यक् भेदाभेदभावरूप भिन्न-भिन्न प्रवर्तते हैं।

तथा जो दूसरे दृष्टिकोण से विचार करें, तो ज्ञानादि सम्यक् चेतनारूप सम्यक्‌भाव से भिन्न नहीं हैं, जरा भी बाह्य नहीं हैं। सर्व सम्यक् चेतनाभाव में निवास करते हैं। इन पाँचों ज्ञानादि सम्यक् का पुंज स्थान ही चेतना सम्यक् है। उन पाँचों ज्ञानादि भाव के मिलने से एक चेतना सम्यक्‌भाव उत्पन्न हुआ। पाँचों सम्यक्‌भावों का एक समवाय एकसमय में एकबार परिणमित होता है, उस पुंज को चेतना सम्यक्‌भाव कहते हैं। इसप्रकार इन पाँचों भावों को एक चेतना सम्यक्‌भावरूप ही देखना। भेद सम्यक्‌भाव व अभेद सम्यक्‌भाव कथन में भिन्न हैं; परन्तु ज्ञान-दर्शन में एक ही साथ दोनों भाव प्रतिबिंबित होते हैं। उन पाँचों सम्यक् के कारण चेतना सम्यक् है और चेतना सम्यक् के कारण वे पाँचों सम्यक् हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई अज्ञानी दोनों को भिन्न-भिन्न मानता है। उस अज्ञानी ने (मान्यता में) दोनों भाव का नाश किया। कुछ भी वस्तु का अस्तित्व नहीं रहा। जैसे उष्णताभाव भिन्न अन्य स्थान कहना। तब वहाँ वस्तु तो न दिखाई दे। अतः वस्तु का अभाव होकर शून्यत्व का प्रसंग आता है तथा तू ऐसा जान कि उष्णता भेदभाव, अग्नि अभेदभाव एक ही साथ है तथा वस्तु भी इसीप्रकार है। इसप्रकार भेद सम्यक्भाव एक ही स्थान है। निःसंदेह वस्तु इसीप्रकार ज्ञान में प्रतिबिंबित होती है। इसप्रकार भेद सम्यक्भाव, अभेद सम्यक्भाव दोनों एक ही स्थान परिणमित होते हैं।

जब जिस काल में जिस जीववस्तु को यह सम्यक्भाव प्रगट हुआ, वही जीवसत्त्व उसी काल में भेद सम्यक्भावरूप, अभेद सम्यक्भावरूप एक स्थान ही परिणमित होता है, सम्यक्रूप परिणमित होता है। वे ही जीव सम्यक्भाव द्वारा भले प्रकार शोभा को प्राप्त होते हैं।

प्रथम में प्रथम जब इसप्रकार कितने ही सम्यक्भाव को धारण करके जीव प्रगट परिणमित हुआ, उतने भावरूप स्व-अपने आप-केवल-निर्विकल्प निःसंदेहरूप से निजस्वरूपसिद्ध साक्षात् आत्मा प्रगट हुआ। इतने ही भाव से आत्मा निजस्वभाव में इतना स्थिर हुआ।

तथा अनादि से जीव स्वभावरूप से असिद्ध हो रहा था, निज स्वधर्म से च्युत हो रहा था। जितना आत्मा स्वभावरूप प्रथम प्रगट हुआ-स्वरूपभाव का जितना नमूना प्रथम प्रगट हुआ, उतने स्वरूप के नमूने के प्रगट होने से जीववस्तु को निजस्वभाव-जाति सिद्ध हुई, स्वधर्म ने जीववस्तु का स्वरूप दिखलाया।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस जीववस्तु का मूल निजवस्तुस्वभाव मैं हूँ। वस्तु के स्वधर्म से वस्तु साधी जाती है, यह मूल जीववस्तु का स्वभाव भाव है। इतने स्वभाव के नमूने के प्रगट होने से पहले यह प्रगट हुआ।

तथा किसी ने **प्रश्न** किया – जैसे सम्यक्त्वगुण को सम्यक् होना कहा, उसीप्रकार ज्ञानादिगुण सम्यक् न कहे, उन ज्ञानादि गुणों की कितनी ही शक्तियाँ सम्यक् हुई कहीं, इनमें क्या भेद (रहस्य) है ?

उत्तर :– यहाँ सम्यक्त्वगुण तो सर्व सम्यक् हो गया है तथा ज्ञानादिक गुणों की कितनी ही शक्तियाँ सम्यक्रूप हुईं, ज्ञानादि गुणों की अन्य कितनी ही शक्तियाँ अबुद्धिरूप मलिन हैं। क्षीणमोह काल के अंत में ज्ञानादि गुणों की सर्व अनंतशक्तियाँ सम्यक्रूप होंगी, तब ज्ञानादिगुण सर्व सम्यक् हुए कहलायेंगे।

पुनः अन्य ***प्रश्न :–*** जो ज्ञानादि गुण क्षीणमोह काल के अंत में सर्व सम्यक् होंगे तो वहाँ द्रव्य को ही सम्यक् नाम क्यों न कहा ?

उत्तर :– हे भाई! उस काल में सर्व शक्तियों से सर्व गुण तो सम्यक् हुए; परन्तु द्रव्य के प्रदेशों के कंपनरूप विकार से भी द्रव्य कुछ मलिन है तथा वह विकार भी अयोगी गुणस्थान के अंत में नष्ट होगा, तब द्रव्य सर्वथा सम्यक्रूप होगा। तीनलोक के ऊपर केवल एक जीवद्रव्य अपने आप तिष्ठेगा।

॥इति सम्यक् निर्णयः॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

साधकसाध्यभाव अधिकार

जो साधता है, वह उसी का साधकभाव जानना। जिस भाव के प्रवर्तन हुए बिना आगे के अनंतर (उत्तर समय के) भाव का प्रवर्तन न हो, उसी भाव का (साधक भाव का) प्रवर्तन काल हो-प्रवर्तित हो, तभी उस आगे के भाव का (साध्यभाव का) प्रवर्तन अवश्य साधा जाता है। अन्य भाव के प्रवर्तन (होने) पर वह (साध्य) नहीं साधता है।

कोई अज्ञानी इसप्रकार जानेगा कि उस आगे के भाव को यह भाव अपने बल से प्रवर्तन करता है, जोरावरी से परिणमाता है; इसप्रकार साधकभाव मानना वह तो अनर्थ है।

साधकभाव इतना ही जानना कि वह (साध्य) भाव अपने बल से प्रवर्तता है; परन्तु यह है, उस भाव के प्रवर्तन काल में इस (साधक) भाव का भी प्रवर्तन होता है। इसप्रकार उस (साधक) भाव का होना इस (साध्य) भाव के होने में साक्षीभूत अवश्य होता है। उस भाव को मात्र साधकभाव संज्ञा इस अवसर पर जानना।

जैसे दिन जब दोपहर रूप प्रवर्तता है, तब ही दुपहरिया पुष्प विकसित कार्यरूप प्रवर्तता है। यहाँ दुपहरिया पुष्प विकसित होने में दोपहर दिन का होना अवश्य प्रत्यक्ष साक्षीभूत है – ऐसा भाव साधक जानना।

साध्य का अर्थ – जो साधा जाय अथवा साधित हो, उसको साध्यसंज्ञा है। उस भाव के होने पर अन्य भाव अवश्य ही

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवर्तित हो, उस भाव के होने से इस भाव का होना अवश्य साधा जाता है; अतः इस भाव को साध्य कहते हैं। जैसे दोपहर होनेरूप साधकभाव से दुपहरिया पुष्प के विकसितरूप होने का कार्य साधा जाता है। इतने भाव से दुपहरिया पुष्प का विकसित होना साध्य कहलाता है।

साधक-साध्यभाव के उदाहरण –

एक क्षेत्रावगाही पुद्गलकर्मों का उदय सहज ही स्थितिरूप होता है, वह साधकस्थान जानना और उस होने की स्थिति तक चित्‌विकार होने का प्रवर्तन पाया जाता है, वह साध्य भेदरूप जानना।

सम्यक्त्वविकार साधक, बहिरात्मा साध्य है। प्रथम सम्यक्‌भाव होना साधक, वस्तुस्वभावजाति सिद्ध होना साध्य है। शुद्धोपयोग परिणति होना साधक है, वस्तु का परमात्मस्वरूप होना साध्यभाव हैं। सम्यग्दृष्टि के व्यवहाररत्नत्रय का युगपत् होना साधक है, निश्चयरत्नत्रय साध्य है। सम्यग्दृष्टि के विरतिरूप व्यवहारपरिणति होना साधक है, चारित्रशक्ति मुख्यस्वरूप होना साध्य है। देव, गुरु, शास्त्रभक्ति विनय, नमस्कारादिभाव साधक है, विषय-कषाय आदि भावों से हटकर मनपरिणति का स्थिरताभाव साध्य है। एक शुभोपयोग की व्यवहारपरिणति की रीति होना साधक है, परम्परा मोक्षपरिणति होनी साध्य है।

अन्तरात्मारूप जीवद्रव्य साधक है, अभेद स्वयं ही परमात्मरूप जीवद्रव्य साध्य है। ज्ञानादि शक्ति मोक्षमार्गरूप में साधक है, अभेद स्वयं ही ज्ञानादि गुण साध्य है। जघन्य ज्ञानादिभाव साधक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं, अभेद स्वयं ही उन्हीं ज्ञानादि गुणों का उत्कृष्टभाव साध्य है। स्तोक निश्चयपरिणति से ज्ञानादि गुण साधक है, अभेद स्वयं ही बहुत निश्चयपरिणतिरूप से ज्ञानादिगुण साध्य है। सम्यक्त्वी जीव साधक है, उस जीव के सम्यक्ज्ञान, दर्शन, सम्यक् चारित्र साध्य है। गुण मोक्ष साधक है, द्रव्यमोक्ष साध्य है। क्षपकश्रेणी चढ़ना साधक है, तद्भव साक्षात् मोक्ष साध्य है।

तथा द्रव्य यति और भाव यतिपना का व्यवहार साधक है, साक्षात् मोक्ष साध्य है। भावितमनादि* रीति विलय साधक है, साक्षात् परमात्मा केवलरूप होना साध्य है। पौद्गलिक कर्म खिरना (झड़ना) साधक है, चित्विकार का विलय होना साध्य है। परमाणुमात्र परिग्रह प्रपंच साधक है, ममताभाव साध्य है। मिथ्यादृष्टि होना साधक है, संसारभ्रमण होना साध्य है, सम्यग्दृष्टि होना साधक है, मोक्षपद होना साध्य है। जब काललब्धि साधक है, तब द्रव्य को वैसा ही भाव होना साध्य है। इसप्रकार साधक-साध्यभाव भेद-अभेदरूप से बहुत प्रकार से जानना।

॥इति साधकसाध्यभाव अधिकारः॥

---

* भावितमन के विकार विलय होने पर साक्षात् मोक्ष होता है । - अनुभवप्रकाश

(सवैया इकतीसा)

जाकौ अधो अपूरब अनिवृत्ति करनकौ,
भयौ लाभ भई गुरुवचन की बोहनी।
जाकै अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ,
अनादि मिथ्यात मिश्र समकित मोहनी॥
सातौं परकिति खपां किंवा उपसमी जाके,
जगी उर माहिं समकित कला सोहनी।
सोई मोख साधक कहायौ ताकै सरवंग,
प्रगटी सकति गुन थानक अरोहनी॥४॥

- नाटक समयसार, पृष्ठ-५-६

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोक्षमार्ग अधिकार

जब प्रथम ही काललब्धि प्राप्त होने पर सम्यक्‌गुण ज्ञान, दर्शन, चारित्र, परमानन्द, भोगादि गुणों की जितनी शक्ति निर्मलरूप होकर प्रवर्तित हुई। जीवद्रव्य उतना ही निजधर्म से सिद्ध हुआ। तब से जीव को मुख्यत: सम्यग्दृष्टि संज्ञा कहते हैं अथवा ज्ञानी भी कहते हैं तथा दर्शन, चारित्रादि स्वभावसंज्ञा से भी जीव को कहें तो कोई दूषण नहीं है; परन्तु लोकोक्ति में सम्यग्दृष्टि जीव को उपरोक्त मुख्यसंज्ञा (ज्ञानी) से कहते हैं।

ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव के जब से ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि स्वभावरूप प्रगट हुए, तब से मोक्षमार्ग प्रारंभ हुआ-प्रवर्तित हुआ। (परन्तु एक बात है) तब से मुख्य चारित्रगुण की शक्तियों का स्वभाव प्रगट होता हुआ समझना। उसमें मन, वचन, काय का प्रथम विवरण कहते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थान में तो एक मुख्य विषय-कषायादि अनर्थ पापरूप अशुभोपयोगरूप मनादि में प्रवर्तता है तथा चौथे गुणस्थान से देव-गुरु-शास्त्रादि प्रशस्तों में भक्ति, विनयरूप शुभोपयोगरूप-मनादि की वृत्ति मुख्य जैसी होती है तथा विषय-कषाय हिंसादिरूप अशुभोपयोगरूप मनादि की वृत्ति भी अपने-अपने काल में होती हैं।

इसके पश्चात् पाँचवें गुणस्थान में विरति-व्रतादिरूप शुभोपयोगरूप मनादि की वृत्ति मुख्य प्रवर्तती है तथा कभी गौणरूप से अशुभोपयोगरूप भी मन आदि (वृत्ति) प्रवर्तती है। छठवें गुणस्थान में यह भोग, कांक्षा, कषाय, हिंसादिरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अशुभोपयोगरूप मनादि की वृत्ति सर्व नाश जैसी हो जाती है तथा सर्व विरति-सर्वव्रत निर्ग्रन्थ क्रिया में यह जो सर्व संयम, द्वादशांग अभ्यास, देव-शास्त्र-गुरु भक्ति क्रियादिरूप, एक केवल ऐसे शुभोपयोगरूप मनादि की वृत्ति प्रवर्तती है। यहाँ इतना विशेष जानना कि चौथे गुणस्थान से छठवें गुणस्थान तक स्वस्वभाव अनुभवरूप शुद्धोपयोग की भी कुछ-कुछ कदाचित्-कदाचित् मन की वृत्ति प्रवर्तित होती है - ऐसा जानना।

सातवें गुणस्थान में शुभोपयोगरूप मनादि की वृत्ति नाश होती है तथा केवल एक शुद्धोपयोग-स्वअनुभवरूप उत्पन्न होता है, उसका विवरण -

इस काय की चेष्टा - हलन, चलन, गमन, उठना, बैठना, काँपना, फड़कना, जंभाई, छींक, उद्‌गारादि सब काय चेष्टा थी; वह नष्ट हुई। काष्ठ की प्रतिमावत् स्वयं ही पद्‌मासन या कायोत्सर्ग आकार हुआ। काय, इंद्रिय, रीति, विषयवांछा थी, वह नष्ट हो गई। निश्चल काष्ठ प्रतिमा और इसमें कुछ भेद नहीं रहा। काष्ठ प्रतिमावत् जब शरीर की दशा हुई, तब वचनक्रिया थी; वह सहज ही रुक गई। यदि वह काष्ठ की प्रतिमा बोले तो वहाँ यह अप्रमत्त साधु भी बोले (अवाची काष्ठ प्रतिमावत्)।

यहाँ अष्टदलरूप द्रव्यमन भी निष्कंप हो गया, द्रव्य पौद्‌गलिक मन आदि की रीति (क्रिया) तो इसप्रकार सहज ही स्थगित हो गई तथा जीव के ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि विकाररूप होकर विषयों ही के ऊपर-इन्द्रिय के मार्ग से प्रवर्तते थे, वे शरीर इन्द्रियों का अभ्यास-मार्गप्रवर्तन छोड़कर एक स्ववस्तुभाव अभ्यासरूप मार्ग में प्रवृत्त हुए।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथा जीव के ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि विभावरूप होकर वचनविषय में प्रवर्तते थे, वे (परिणाम) भी वचन अभ्यासरूप मार्ग छोड़कर एक स्ववस्तुभाव अभ्यासरूप मार्ग में परिणमित हुए, प्रवृत्त हुए तथा जीव का ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिरूप भावमन विकाररूप होकर अष्टदल कमलस्थानमार्ग से अनेक इष्ट-अनिष्ट, लाभ-अलाभ, अशुभ-शुभोपयोगादिभावरूप विकल्प समूहों में चंचल अभ्यासरूप प्रवर्तता था, वह भावमन एक स्ववस्तुभाव सेवन के लिये अनुभवरूप प्रवृत्त हुआ। अन्य सर्व विकल्प चिंताओं में था, उससे मुक्त हुआ और वह एक स्ववस्तुभाव अनुभव करने में प्रवृत्त हुआ।

इसप्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि विकाररूप मन, वचन, काय, व्यवहारपरिणतिरूप था, वह नष्ट हो गया, एक स्ववस्तुभाव सेवनरूप अनुभवरूप निश्चयसंयुक्त हुआ; तब उसे ही संयमी, शुद्धोपयोगी तथा प्रधान अनुभवी कहते हैं। वहाँ परभावों का अर्थात् व्यवहारपरिणति का सर्व सेवन मिट गया, एक केवल आत्मस्वरूप के अनुभव निश्चयरूप परिणति प्रवृत्त हुई। इसप्रकार यह मनादि की वृत्ति का स्वरूप में एकाग्रतारूप वह शुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ।

जब यह शुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ; तब यश, अपयश, लाभ-अलाभ, इष्ट-अनिष्ट आदि सर्वभावों में समानभाव हो गया। समानपने (मुख्यता से) कोई आकुलता शेष नहीं है।

जब यह शुद्धोपयोग प्रगट हुआ, तब से परमात्मसुख का अतीन्द्रियस्वाद प्रगट होता जाता है। इसप्रकार जब शुद्धोपयोग का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारण उत्पन्न हुआ, तभी से मुख्यरूप से साक्षात् मोक्षमार्ग कहते हैं तथा तभी से चारित्रगुण की मुख्यता से मोक्षमार्ग जानना।

सातवें गुणस्थान से जैसे-जैसे आगे का (अग्रिम गुणस्थानों का) काल आता है, उस-उस काल में चारित्रादि गुणों की अनेक-अनेक शक्तियाँ पुद्गलवर्गणा के आच्छादन और चित्विकार से मुक्त हो-होकर साक्षात् निश्चय निजस्वभाव शक्तिरूप परिणमित होती जाती है। इसीप्रकार जैसे-जैसे आगे का काल आता है, वैसे-वैसे चारित्रादि गुणों की अनेक-अनेक शक्तियाँ पुद्गलवर्गणा के आच्छादन और चित्विकार से मुक्त हो-होकर साक्षात् निज-निजस्वभाव शक्तिरूप होती जाती हैं। इसप्रकार समय-समय में चारित्र शक्तियों का मुक्तरूप होने का प्रवाह प्रतिसमय-समय बढ़ता जाता है।

वह शुद्धशक्ति ही मोक्षमार्ग अवस्था जानना। यह मोक्षमार्ग वर्तते-वर्तते जब क्षीणमोह अवस्था आई, तब से मनादि की रीति, परिणति, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिशक्ति स्ववस्तु अभ्यासरूप शुद्धोपयोगरूप थी तथा किंचित् ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि शक्ति अबुद्धिरूप व्यवहारपरिणतिरूप थी, वे शक्तियाँ सर्वथा मुक्त होकर निजजाति स्वभावरूप निश्चयपरिणतिरूप होती गईं। आत्म-अभ्यासभाव भी मुक्त होते-होते उस क्षीणमोह अवस्था के अंत के समय में ही चारित्रगुण की सर्व ही अनंतशक्तियाँ - मोह पुद्गल आच्छादन और विकार से मुक्त होकर निजवस्तुस्वभावरूप हुई। जब चारित्रगुण की (सर्व ही) अनंतशक्ति निजवस्तुस्वभाव में ठहरकर स्थिरीभूत हुईं; तब ही चारित्रगुण मोक्षरूप उत्पन्न हुआ कहा जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तब ही परमानंद भोगगुण की सर्व ही अनंतशक्ति मुक्त होकर निजवस्तुस्वभाव आस्वादभोगरूप उत्पन्न हुईं, वहाँ भोगगुण मोक्षरूप उत्पन्न हुआ कहा जाता है। तब ही ज्ञान, दर्शन, वीर्यादि गुणों की अनन्त-अनन्तशक्ति मोक्षरूप उत्पन्न हुईं। उसकी स्तुति –

सर्व लोकालोक का प्रत्यक्ष ज्ञायक-दर्शक हुआ, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हुआ, लोकालोक प्रतिबिंबित हुआ, अतीत, अनागत, वर्तमान की अनंत-अनंत सर्व प्रत्यक्षरूप से एक ही साथ उत्कीर्ण (आलेखित) हुई। ज्ञान-दर्शन संपूर्ण स्वरूपरूप हुए। ज्ञान, दर्शन, वीर्यादिगुण मोक्षरूप उत्पन्न हुए।

अप्रमत्त अवस्था से चारित्रादि गुणों की शक्तियों का मोक्षरूप होने का मार्ग प्रधानता से आरंभ हुआ था, वह मार्ग यहाँ परिपूर्ण होकर उत्पन्न हुआ। वे चारित्रादिगुण मोक्षरूप निष्पन्न हुए, तब गुणमोक्ष संपूर्ण हुआ। इति गुणमोक्षमार्ग विवरण। गुणमोक्षमार्ग चौथे गुणस्थान से प्रारंभ हुआ था, बारहवें गुणस्थान के अंत तक संपूर्ण हुआ।

(सवैया इकतीसा)

जिन्हकी सुदृष्टिमैं अनिष्ट इष्ट दोऊ सम,
जिन्हकौ अचार सु विचार सुभ ध्यान है।
स्वारथकौं त्यागि जे लगे हैं परमारथकौं,
जिन्हकै बनिजमैं न नफा है न ज्यान है॥
जिन्हकी समुझिमैं सरीर ऐसौ मानियत,
धानकौसौ छीलक कृपानकौसौ म्यान है॥
पारखी पदारथके साखी भ्रम भारथके,
तेई साधु तिनहीकौ जथारथ ग्यान है॥४६॥

– नाटक समयसार, पृष्ठ-१५८-१५९

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

अन्तर्व्यवस्था कथन

ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियों का कर्मानुभव से भेदभाव होना–पृथक् होना, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियों का स्वरूप में आना तथा तीनों शक्तियों के विकार का नाश होना; ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियों की निश्चयपरिणति होना, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियों की व्यवहारपरिणति का विलय होना; ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियों की शुद्धता की उत्कृष्ट बुद्धि होना; ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियों की अशुद्धता की हानि होना, ज्ञानगुण की शक्तियों का एकाकार जाननेरूप सम्यक् होना; दर्शनगुण की शक्तियों का एक अनाकार जाननेरूप सम्यक् होना; चारित्रगुण की शक्तियों का एक स्ववस्तुरूप में आचरण–स्थिरता–विश्राम सम्यक्रूप होना इत्यादि जीव के सर्वभावों का प्रारंभ चौथे गुणस्थान से होता है तथा बारहवें गुणस्थान के अंत तक संपूर्ण भाव होता है।

निःशंकरूप से ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुणों का जघन्यभाव, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियों का साक्षात् क्षयोपशम होनेरूप भाव, अन्तरात्मभाव, सविकल्पभाव, स्वरूपशक्ति परिणाम, विकार-शक्ति परिणाम इत्यादि मिश्रभाव जीव को चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक रहता है।

चौथे गुणस्थान से जब चारित्रगुण की जो–जो शक्तियाँ निर्विकल्प अर्थात् बुद्धिपूर्वक राग, द्वेष, विकार से निवृत्त हो–होकर, केवल निजस्वरूप होकर परिणमित होती हैं, उस काल उन शक्तियों को तो कोई आस्रव–बंध का प्रश्न ही नहीं उठता, वे शक्तियाँ तो स्वरूप से सिद्ध हो जाती हैं। उसी काल में उन शक्तियों को तो कोई विकल्प लगता ही नहीं है; परन्तु चौथे गुणस्थान से सम्यग्दृष्टि

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के चारित्रगुण की शक्ति जब बुद्धिपूर्वक विकल्परूप हो परिणमित होती है अर्थात् जब विषय, कषाय, भोग-सेवनरूप, इष्ट रुचि, अनिष्ट अरुचि, हिंसारूप, रति-अरतिरूप, अविरतिरूप, परिग्रह विकल्परूप आदि अथवा शुभोपयोग विकल्परूप आदि से बुद्धि पूर्वक जो शक्ति परिणमित होती है, तब परावलंबन चंचलतारूप मलिन भी होती है तो भी उस शक्ति द्वारा ज्ञानी आस्रव-बंध विकार को उत्पन्न नहीं करता। किसकारण से ? क्योंकि सम्यग्दृष्टि अपनी बुद्धिपूर्वक विकल्परूप चारित्र चेष्टा को जानने में समर्थ है। उस चेष्टा को जानते ही सम्यग्दृष्टि को विषय-भोगादिभाव विकाररूप भिन्न ही प्रतिबिंबित होते हैं तथा चेतना स्वभावभाव भिन्न प्रवर्तते हैं। एक ही काल में सम्यग्ज्ञानी को भिन्न-भिन्न प्रत्यक्ष होते हैं। इसकारण से उस चारित्रशक्ति में बुद्धिपूर्वक राग द्वेष, मोह, विकार प्रवेश नहीं करता।

इसप्रकार सम्यग्दृष्टि बुद्धिपूर्वक विकल्परूप परिणति से भी सर्वथा बारहवें गुणस्थान तक निरास्रव-निर्बन्ध प्रवर्तता है तथा उसी सम्यग्दृष्टि की चेतना विषय, कषाय, भोग, हिंसा, रति, अरति आदि अबुद्धिरूप परिणमते हैं, वे जघन्यज्ञान-सम्यक् मतिज्ञान और सम्यक् श्रुतज्ञान के गोचर नहीं होते, अज्ञानसहित हैं; अतः अबुद्धि शक्तियों में राग, द्वेष, मोह विद्यमान हैं। अतएव अबुद्धिरूप किंचित्मात्र चौथे से दसवें गुणस्थान तक आस्रव-बंधभाव उत्पन्न होता है। जीव के ज्ञानादिगुण व्यवहारपरिणति अशुद्ध* परिणति, अबुद्धि तथा बुद्धिरूप परिणतिरूप दसवें-बारहवें गुणस्थान तक परिणमित होते हैं। इति अंतर्व्यवस्था कथन।

* अशुद्धपरिणति=उस भूमिका के योग्य भावकर्म, व्यक्त-अव्यक्त प्रमादादि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दृष्टि सामान्य विशेषाधिकार

तथा सम्यग्दृष्टि जीव के स्वस्वरूप निर्विकल्प अनुभव बुद्धि-परिणति में एक परमाणु भी रागादि विकार नहीं है तथा सामान्य से सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी, चारित्री इसीप्रकार कहा जाता है। मुख्यरूप से (उन्हें) निर्बन्ध, निरास्रव, निष्परिग्रह, शुद्ध, भिन्न, परमाणुमात्र रागादिरहित कहे जाते हैं, शुद्ध-बुद्ध कहे जाते हैं। विकार का होना नहीं कहा जाता; क्योंकि जैसे सामान्य से सर्व चेतनद्रव्य वंदनीक ही कहे जाते हैं, निंदित कोई नहीं है।

तथा विशेष भेद करने पर ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि जघन्य होने से सम्यग्दृष्टि को कथंचित् अबुद्धिपूर्वक आस्रव, बंध, सरागादि, विकार मिश्रित जीवद्रव्य कहा जाता है तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि उत्कृष्ट होने से सम्यग्दृष्टि को सर्वथा, सर्वप्रकार से साक्षात् निर्बन्ध, निरास्रव, वीतरागी, निष्परिग्रही जीवद्रव्य कहा जाता है। जैसे स्पर्श करके आमों का भेद के द्वारा निर्णय करने पर कोई आम किसी अंश से कच्चेपने के कारण मिश्रित भी कहा जाता है; परन्तु सामान्य से वे ही आम निःसंदेह सर्वथा पके हुए कहे जाते हैं।

इति सम्यग्दृष्टि सामान्य विशेषाधिकारः।

हे भव्य! तू इसप्रकार जान – जो पौद्गलिक पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष को तो तीनकाल में, कभी भी जीव बिल्कुल भी स्पर्श नहीं करता। यद्यपि एकक्षेत्रावगाही भी हैं, तथापि जीव ने उनको कभी भी स्पर्श नहीं किया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथा जो यह दश प्रकार का परिग्रह पुद्गल है – गृह, क्षेत्र (खेत), बाग, नगर, कुँए, वापी (बावड़ी), तड़ाग (तालाब), नदी आदि सर्व पुद्गल; माता, पिता, स्त्री, पुत्र, पुत्री, वधू, स्वजन, मित्र आदि सर्व; सर्प, सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैंसा आदि सर्व; दुष्ट –अक्षर शब्द, अनक्षर शब्द आदि सर्व शब्द; खान, पान, स्नान, भोग, संयोग, वियोग आदि सर्व क्रिया; परिग्रह मिलाप से, बड़ा परिग्रह नाश से, दरिद्र आदि सर्व क्रिया; चलना, बैठना, हिलना, बोलना, काँपना आदि सर्व क्रिया; लड़ना, भिड़ना, चढ़ना, उतरना, कूदना, नाचना, खेलना, गाना, बजाना आदि सर्व क्रिया; इसप्रकार इन सर्व को तू पुद्गल स्कंधों का ही खेल जानना। इनको इस जीव ने कभी भी तीनकाल में स्पर्श नहीं किया। यह तू निःसंदेह जान।

काल के निमित्त से ये पुद्गल स्वयं आते हैं, स्वयं जाते हैं, स्वयं मिलते हैं, स्वयं बिछुड़ते हैं, अपने आप पुद्गल संबंध से बँधते हैं, अपने आप पुद्गल घातक होकर घट जाते हैं। देखो! इन पुद्गलों का भी अपने पुद्गल की जाति से तो संबंध है; परन्तु इस जीव को ये पुद्गल तीनकाल में कभी भी स्पर्शित नहीं हुए। अपने आप ही पुद्गल खेलता है।

हे संत! जब यह जीव अनादि विकाररूप प्रवर्तता है, तब इस पुद्गल के खेल को भी देखकर जीव अपने परिणामों में ऐसा मानता है। 'ये सर्व कार्य मेरे करने से हुए हैं', यही चित्विकार का माहात्म्य जानो। हे संत! स्वयं उसको कभी स्पर्श नहीं किया और वह इसको कभी भी स्पर्श नहीं करता। उसको देख-जान कर "मैं करता हूँ, इससे सुख प्राप्त करता हूँ, इससे खेद प्राप्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करता हूँ'' – ऐसा जीव को प्रत्यक्ष झूठा भ्रम हो गया है। ऐसा तू जान।

हे भव्य! ज्ञानी इसप्रकार निश्चय से देखता है, जानता है –

सर्व पौद्गलिक वर्ण, रस, गंधादिकों से उत्पन्न हुए इस सर्व खेल–अखाड़े से अपना कुछ भी संबंध नहीं देखता है; क्योंकि यह पौद्गलिक नाटक अन्य द्रव्य का उत्पन्न हुआ है, यह नाटक मूर्तिक का बना है, यह नाटक अचेतनों का उत्पन्न हुआ है तथा यह नाटक तो अनेक द्रव्य मिलकर प्रवर्तता है; अतः इससे तो मेरा किसी भी प्रकार से संबंध तीनकाल में होता दिखाई नहीं देता है।

क्योंकि मैं तो जीवद्रव्य, मैं तो अमूर्तिक, मैं तो चेतन–वस्तु, मैं तो एक सत्त्व, मैं तो इसप्रकार और वह उसप्रकार (अजीव, मूर्तिक, अचेतन); मुझमें और उसमें पूर्ण और रिक्त जैसा अंतर है; प्रकाश, अंधकार जैसा अंतर, मुझमें कहीं भी उसके समान संबंध दिखाई नहीं देता। अतः उसके नाटक कार्य का मैं न कर्त्ता हूँ, न हर्त्ता हूँ, न भोक्ता हूँ, किसी काल में न हुआ था, न होऊँगा और न वर्तमान में भी हूँ।

तात्पर्य यही है, ज्ञानी परद्रव्य में अपना संबंध सर्वथा कुछ भी नहीं देखता है। अतः इस पुद्गल का नाटक जिसप्रकार जानने में आया है, उसप्रकार नाचे तो नाचो। (वह नाटक) स्वयमेव ही उत्पन्न होता है, स्वयं ही नष्ट होता है, स्वयं ही आता है, स्वयं ही जाता है; मैं न इसके नाटक को रख सकता हूँ, न छोड़ सकता हूँ। इस नाटक के रखने–छोड़ने की चिंता भी झूठी है; क्योंकि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह परवस्तु है। अपने गुण पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, कर्त्ता, कर्म, क्रियादि सामग्री से स्वाधीन है। इसीप्रकार जीव, पुद्गल सर्वथा भिन्न हैं और इसीप्रकार भिन्न प्रवर्तते है। उसीप्रकार ज्ञान होने से ज्ञानी जीव पर पुद्गल को भिन्न देखता-जानता है तथा ज्ञानी इस जीव को इसप्रकार देखता-जानता है -

जबतक यह जीव विकारवंत प्रवर्तता है, तबतक जो कुछ जिस भाँति की विकार की तरंग प्रगट होती है, उन्हीं तरंगों से व्याप्य-व्यापक है; उनका कर्त्ता, हर्त्ता और भोक्ता है। वह विकार एक केवल चेतना की ऊपरी दशा का नाम है तो भी वह विकार अमूर्तिक है, एक जीव का ही भाव है, जीव से अभेद है। तात्पर्य यह है - वह सर्व विकार जीवभावजन्य है (जीवभाव से उत्पन्न हुआ) और संक्षेप से तो इस भाव को चिद्विकार कहते हैं तथा इस चेतन विकार की तरंगों के स्वांगों का जैसा-जैसा नाम होता है, वैसा विशेषरूप से कहते हैं -

जो-जो पुद्गल में मूर्तिक स्वाँग होते है, उस काल उन स्वांगों के अनुसार जीव अमूर्तिक विकार तरंग स्वाँग धारण कर प्रवर्तता है। इस विकार के स्वांग का नाम परभाव कहलाता है; क्योंकि इन स्वांगों के भेद जीववस्तु में तो नहीं थे, अतः (इन्हें) निज के कैसे माने ? क्योंकि मूल से यह जीव दृष्टा-ज्ञाता था; अतः इसके दर्शन-ज्ञान उपयोग में मूर्तिक नाटक-ज्ञेयस्वाँग प्रतिभासित होते हैं। प्रतिभासित होते ही उस काल में ज्ञान-दर्शन की शक्ति उसीप्रकार तदाकार ज्ञेयप्रतिभासरूप हुई अर्थात् उस काल उसी आकार में विश्राम किया अथवा 'उस आकाररूप आत्मा है' - ऐसे ज्ञेयप्रतिभासरूप उपयोगशक्ति का आचरण (स्थिरता) हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तब वह उपयोग अपने को तो न देखता है, न जानता है। उस ज्ञेय आकाररूप से स्वयं आचरण करता है अर्थात् उसमें आपरूप स्थिर होकर रहता है कि मैं ऐसा हूँ।

हे संत! तू जान कि, ज्ञान-दर्शन-चारित्र द्वारा परज्ञेय भासित होने पर जीव इसप्रकार स्वाँगी होता है; क्योंकि इस जीववस्तु में तो ऐसा स्वाँग ही नहीं था। अतः इस भाव को जीव का निजभाव कैसे कहें ? इस जीव ने स्वयं पर ज्ञेयभास का स्वाँग धारण कर लिया है, इसकारण इस जीव में इस स्वाँगभाव को परभाव कहते हैं। अब उन स्वांगों के नाम संज्ञाभेद से कहता हूँ। वह तू सुन -

देखो, इस पुद्गल के अखाड़े में मूर्तिक अचेतन का स्वाँग बना है, भले (शुभ) वर्ण, रस, गंध, स्पर्शादिक के बने स्कंध पुण्यस्वाँग; बुरे (अशुभ) वर्ण, रस, गंध, स्पर्शादिक के बने स्कंध सो पापस्वाँग; मोहादि द्वारा कर्मवर्गणा आने का राह बना वह आस्रवस्वाँग; चिकनी-रूखी शक्तियों से परस्पर वर्गणाएँ मिलकर एक पिंडरूप बनना, वह बंधस्वाँग; वर्गणा आने का मार्ग रुक जाना वह संवरस्वाँग; थोड़ी-थोड़ी वर्गणाओं का अपने स्कंध से खिर जाना निर्जरास्वाँग; सर्व वर्गणा खिर जाना मोक्षस्वाँग; इतने स्वाँग एकक्षेत्रावगाही पुद्गल ज्ञेय के अखाड़े में बनते हैं, वैसे-वैसे ही स्वाँग इस विकारी जीव के ज्ञान, दर्शन, चारित्र के द्वारा अमूर्तिक उत्पन्न हुए, किसप्रकार ?

जिस काल उपयोगपरिणाम एकक्षेत्रावगाही पौद्गलिक पुण्यज्ञेय को देखने-जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम उन्हीं परिणामों के आकाररूप सुख जैसे विश्रामरूप अथवा सुख जैसे रंजनारूप हुए, तब इसप्रकार अमूर्तिक पुण्यस्वांगभेद जीव के उत्पन्न हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथा जिस काल उपयोगपरिणाम एकक्षेत्रावगाही पापज्ञेय को देखने-जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम उन्हीं परिणामों के आकाररूष से संताप, दुःख विश्रामरूप अथवा दुःख रंज़ित हुए; तब इसप्रकार अमूर्तिक चेतन पाप स्वांग भेद जीव के उत्पन्न हुआ।

तथा एकक्षेत्रावगाही (पुराने कर्म) पौद्गलिक मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग, आस्रव का स्वांग बना है। इस जीव के उपयोग परिणाम उस ज्ञेय के देखने-जाननेरूप हुए और चारित्र-परिणाम उन्हीं परिणामों के आकाररूप विश्राम अथवा रंजित हुए। तब उन रंजित परिणामरूप परिणमित होते हुए नये-नये सुखाभासरूप दुःख संताप, दुःखों के रसस्वाद उत्पन्न होने, उस रसस्वाद होने के अथवा उस रसस्वाद आने के कारण, मार्ग अथवा द्वार को आस्रव नाम से कहते हैं। इसप्रकार उस भाव का अमूर्तिक चेतन जीव के आस्रव स्वांगभेद उत्पन्न हुआ।

तथा नयी-नयी वर्गणा आने के मार्ग पौद्गलिक मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग नष्ट होने से नवीन वर्गणा नहीं आती है। इस मार्ग का नष्ट होने का नाम पौद्गलिक संवर स्वांग है। इस जीव के उपयोग परिणाम ज्ञेय के देखने-जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम उन्हीं परिणामों के आकाररूप विश्राम अथवा रंजित हुए। वह रंजित परिणाम नया-नया सुखाभासरूप दुःख है और दुःख होने का कारण है। वह रंजितभाव नहीं होता, तब उसके न होने के नाम अमूर्तिक जीव के संवर भेद उत्पन्न हुआ।

दो पौद्गलिक परमाणुओं का स्निग्ध-स्निग्ध, रुक्ष-रूक्ष, स्निग्ध-रुक्षभाव द्वारा एक से दूसरे में दो गुण अधिक होने पर:-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिलने से परस्पर संबंध होता है, उससे चिकने-रुखे पौद्‌गलिक बंध स्वांग बनता है। इस जीव के उपयोग परिणाम ज्ञेय के देखने-जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम उन्हीं परिणामों के आकाररूप विश्राम अथवा रंजित हुए। तब उपयोगों के जो ज्ञेयाकाररूप परिणाम रंजित होते हैं, उन परिणामों के आकारों से संबंध करनेवाला रंजन-राग होता है, उस ज्ञेय आकार से संबंध करनेवाला रंजन-राग होता है, ज्ञेय आकार से रंजितपना (एकता) होता है; वह अमूर्तिक चेतन जीव का बंध स्वांग भेद होता है।

तथा पौद्‌गलिक कर्मस्कंध से वर्गणा का अंश-अंश खिर जाना, पौद्‌गलिक निर्जरा स्वांग है। इस जीव के उपयोग परिणाम परज्ञेय देखने-जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम उन परिणामों के आकाररूप विश्राम अथवा रंजितरूप हुए, इसप्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र, परज्ञेय आकारभास से अशुद्ध परभावरूप हुए हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि का परभावरूप (अशुद्ध) परिणमन, जब थोड़ा-थोड़ा नष्ट होता जाता है; वह अमूर्तिक चेतन जीव का संवर पूर्वक निर्जरा स्वांग भेद है।

तथा पौद्‌गलिक सर्व कर्म स्कंधों का जीव प्रदेशों से सर्वथा पृथक् होकर खिर जाना पौद्‌गलिक मोक्षस्वाँग है। इस जीव के उपयोग परिणाम परज्ञेय देखने-जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम भी उन परिणामों के आकाररूप विश्राम अथवा रंजनारूप हुए। इसप्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र परज्ञेय आकारभाव से अशुद्ध परभावरूप हुए हैं। जीवद्रव्य के ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिक का परभावरूप जो परिणमन था, वह सर्व सर्वथा नष्ट हो जाना; वही अमूर्तिक चेतन जीव का मोक्षस्वाँग भेद कहलाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार ज्ञानी चेतन अमूर्तिक जीव के इस नाटक को पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, बंध, निर्जरा, मोक्षरूप एक क्षेत्रावगाह पुद्गल नाटक से भिन्न ही देखता है। पुद्गल से रंचमात्र भी संबंध नहीं देखता है। जैसे का तैसा जीव नाटक भिन्न देखता है और फिर अपना (जीवका) नाटक देखता है, वह क्या ?

यह जो एकक्षेत्रावगाही पौद्गलिक वस्तु कर्म नाटक बना है, वैसा ही इस जीव का परभाव नाटक बना है। वैसा ही सो किस–प्रकार ? पौद्गलिक मूर्तिक अखाड़े में वर्गणा, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, कर्मसंज्ञा स्वांग धारण कर नृत्य करती है। तब उसके अनुसार मान्यता (परिणाम) इस जीव के भी देखे जाते हैं। नाटक किस–प्रकार ?

ज्ञान और दर्शन ही का परम निजजातिस्वभाव सर्व लोकालोक को युगपत् सर्व ज्ञेयों को एकसमय में जानना–देखना होता है। यह तो ज्ञान–दर्शन का निजस्वभाव है अथवा इसको कोई ज्ञान, दर्शनमात्र ही कहता है तथा जब इसप्रकार लोकालोक का जानना–देखना नहीं हो, तब वह ज्ञान–दर्शनगुणों का सर्व को नहीं जानने–नहीं देखनेरूप भाव अशुद्धभाव है, परभाव है अथवा स्वभाव का आवरण है। इसकारण इन (शुद्ध–अशुद्ध) दोनों भाव को ज्ञान–दर्शनगुण व्याप्य–व्यापक होते हैं। निजभाव सम्यक्रूप और परभाव विपरीतरूप होने पर ज्ञान–दर्शनवस्तु इन दोनों भावों में प्रत्यक्ष है।

अतः देखो मित्र! एक ज्ञान–दर्शन ही निजभावरूप भी होता है और परभावरूप भी होता है। जबतक ज्ञान–दर्शन परभाव अथवा आवरणभावरूप व्यक्त प्रवर्तते हैं, तबतक ज्ञान, दर्शनगुण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निजभाव (अथवा वस्तु नामभाव) रूप नहीं प्रवर्तते हैं; अतः उस परभाव के रूप व्यक्त प्रवर्तन से निजभाव प्रवर्तन की व्यक्तता आच्छादित है। अतएव ज्ञान, दर्शन-स्वभावों को परभाव की व्यक्ततारूप आवरण कार्य उत्पन्न हुआ।

तब देखो, यह ज्ञान स्वयं ही आवरणरूप बना है; अतः उसको ज्ञानावरण कार्य अमूर्तिक चेतन स्वांगभेद उत्पन्न हुआ है तथा यह दर्शन स्वयं ही आवरणरूप बना है; अतः उसको दर्शनावरण कार्य अमूर्तिक चेतन स्वांगभेद उत्पन्न हुआ है।

तथा पौद्गलिक कर्म अखाड़े में कटुक स्वाद वर्गणा मिलकर असाता तथा मिष्ट स्वाद वर्गणा मिलकर साता इसप्रकार मूर्तिक अचेतन वेदनासंज्ञा स्वांग बना है। इस जीव के उपयोगपरिणाम साता अथवा असाता ज्ञेय देखने-जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम भी उन परिणामों के आकाररूप पर विश्राम अथवा रंजनारूप हुए तथा उन्हीं चारित्रपरिणामों के भावों के ही अनुसार भोगगुण के हुए परिणाम भोगनेरूप अथवा ज्ञेयभास आस्वादरूप वा वेदनेरूप अथवा विपरीतभावरूप हुए। इसप्रकार ज्ञेयभास भोगनेरूप विपरीत परिणाम को वेदन करनेरूप कार्य बना है, यह भी इसप्रकार जीव के अमूर्तिक चेतन वेदनास्वांग है।

तथा उस पौद्गलिक अखाड़े में मोह उन्मत्त प्रमादरूप वर्गणा स्वांग धारण करके नृत्य करता है और उस मोह में जातिभेद बहुत होते हैं। उनमें एक मोह वर्गणा तो सम्यक्त्व मोह संज्ञा धारण कर उन्मत्त नृत्य करती है। इस जीव के सम्यक्त्वगुण का निजस्वभाव निजसत्त्व वस्तु की निजजातिरूप अपना आस्तिक्य-यथार्थतारूप-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यादरूप आचरण है। यह सम्यक्त्व का भाव है और वही सम्यक्त्व है। उपयोग द्वारा ज्ञेय देखा जाना जाता है, उस ज्ञेय वस्तु को अथवा एक प्रकार को सर्वथा स्ववस्तुरूप आस्तिक्य आचरणरूप व्याप्यव्यापक होता है, वही सम्यक्त्व-आचरणगुण का ऊपरीभाव (विपरीतभाव) है; सम्यक्त्व का परभाव है, मिथ्यामोह-भाव है अथवा मोहभाव है। इसप्रकार सम्यक्त्व आचरणगुण का इस मिथ्याभाव से व्याप्य-व्यापक होकर कार्य होता है। अमूर्तिक चेतनरूप जीव के जो यह सम्यक्त्वमोह कार्य स्वांग भेद बना है।

(सर्व वर्ण लघु, चित्रकाव्य घनाक्षरी)

धरति धरम फल हरति करम मल,
मन वच तन बल करति समरपन।
भखति असन सित चखति रसन रित,
लखति अमित वित करि चित दरपन॥
कहति मरम धुर दहति भरम पुर,
गहति परम गुर उर उपसरपन।
रहति जगति हित लहति भगति रति,
चहति अगति गति यह मति परपन॥५॥

(सब वर्ण गुरु, सवैया इकतीसा)

राणाकौसौ बाना लीनै आपा साधै थाना चीनै,
दानाअंगी नानारंगी खाना जंगी जोधा है।
मायाबेली जेती तेती रेतैमैं धारेती सेती,
फंदाहीकौ कंदा खोदै खेतीकौसौ लोधा है॥
बाधासेती हांता लोरै राधासेती तांता जोरै,
बांदीसेती नाता तोरै चांदीकौसौ सोधा है।
जानै जाही ताही नीकै मानै राही पाहै पीकै,
ठानै बातैं डाही ऐसौ धारावाही बोधा है॥६॥

- नाटक समयसार, पृष्ठ-२१४, २१५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यक्त्वगुण का कुछ विवरण

देखो मित्र! जैसे उपयोग के दो भेद हैं – सामान्य वस्तु अवलोकन दर्शनगुण है, विशेष अवलोकन ज्ञानगुण है, इसप्रकार सामान्य-विशेष से उपयोग के दो भेद हुए। उसीप्रकार आचरण के दो भेद हुए – सामान्य स्ववस्तु सत्ता प्रति मति की आस्तिक्यता-ठीक प्रतीति यादरूप आचरण वह तो सम्यक्त्व आचरण गुण है तथा विशेषरूप से स्ववस्तु में स्थिरतारूप अथवा विश्रामरूप आचरण चारित्राचरण गुण है। इसप्रकार सामान्य-विशेष भेद से आचरण के दो भेद हुए।

तथा उस पुद्गल अखाड़े में चारित्रमोह संज्ञक स्वांगरूप वर्गणा उन्मत्त हुई है, उसे भेद करके कहते हैं –

क्रोध :- पौद्गलिक कर्मवर्गणा अपने स्कंध को अथवा पर के स्कंधों को तप्तरूप, दुष्टरूप, उबलनेरूप अथवा खंडन, तोड़न छेदन, मर्दन, संयम घातनादिरूप होकर परिणमित होती है, वह पौद्गलिक क्रोध, चारित्र मोह का स्वांग बना है तथा इस जीव के चारित्राचरण गुण का निजभाव तो उपयोग चेतनवस्तुरूप विश्राम स्थिर रहना है; उपयोगों द्वारा परज्ञेय देखते-जानते हैं, उस ज्ञेय में स्थिरतारूप रंजना चारित्राचरण गुण का ऊपरी भाव है-विपरीत भाव है अथवा मोह विकलभाव है। मोहरूप चारित्रगुण का ऐसा अमूर्तिक चेतन स्वांग बना है, अब उसके भेद कहते हैं –

परज्ञेय को उपयोगों के द्वारा देखता जानता हुआ, उस भिन्न ज्ञेय के प्रति द्वेषरूप, संताप उद्वेगरूप, क्लेशतप्त क्षोभरूप अथवा हतन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(नष्ट करना), हिंसन, तोड़ना, खण्डन करना, छेदन, भेदन, मर्दन आदिरूप रंजित होना वे अमूर्तिक चारित्रगुण के मोहभाव के चेतन क्रोध के भेद स्वांग हैं।

मान :- तथा उस पौद्गलिक चारित्रमोह कर्मवर्गणा परिणमने के कारण मन, वचन, काय स्कंध दुष्ट क्रूर, स्तब्ध, उन्नत, अकड़, आदिरूप होते हैं, वह पौद्गलिक मान-मोह-भेद उत्पन्न होता है। तब इस जीव के एकक्षेत्रावगाही पौद्गलिक मन-वचन-कायादि शुभप्रवृति ज्ञेय को; निकटवर्ती माता, पिता, पुत्र, पुत्री, स्त्री, स्वजन, सम्बन्धी, मित्रादि ज्ञेय को; उच्चकुल, जाति, धन, विद्या, कला, रूप, बल, परिग्रह, लाभ, अधिकारी, देशादि संयोग रीति ज्ञेयों को और अत्यन्त निकटवर्ती शुभ पुद्गल रीति ज्ञेयों को उपयोग द्वारा देख-देखकर जान-जानकर उन ज्ञेयों से अपने को भला, अपने को बड़ा, अपने को पवित्र, अन्य लोगों से अपने को उच्च, अपनी स्तुति (प्रशंसा) इत्यादि रूप हो रंजित होना वह अमूर्तिक चेतन चारित्राचरण मोह का मान भेद प्रवर्तता है।

माया :- तथा उस पौद्गलिक कर्म अखाड़े में पौद्गलिक वचन, काय, योग, वर्गणा शुभरूप खिरे हैं, पौद्गलिक वचन काय वर्गणा, दुष्ट, क्रूर, तप्तरूप खिरे हैं, पौद्गलिक मन-वर्गणा दुष्टरूप खिरे हैं अथवा पौद्गलिक मनवर्गणा शुभ सौम्यरूप खिरे हैं। यह भाव पौद्गलिक मोह का इसप्रकार का मायारूप स्वांग उत्पन्न होता है।

तब (जीव के) सर्व जीव-अजीव स्कंधादि ज्ञेयों को भिन्न अस्पृष्ट रूप से उपयोगों द्वारा देखते-जानते हुए इस जीव के उन ज्ञेयस्कंध प्रति कितनी ही लोभ, रति आदि रागरूप रंजित बहुत-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सी शक्ति और कितनी ही क्रोध, मान, अरति, भय, शोक आदि द्वेष तृष्णा रंजितरूप अल्पशक्ति अथवा द्वेष रंजितरूप प्रचुरशक्ति रागतृष्णा रंजितरूप अल्पशक्ति से उस अस्पर्श ज्ञेयसमूह प्रति दुविधारूप रंजित होना, वह जीव का अमूर्तिक चेतन चारित्रमोह का मायारूप दुविधा स्वांगभेद बनता है।

लोभ :- तथा पौद्गलिक कर्म मन, वचन, काय, वर्गणा, स्कंध अन्य स्कंध का कारण प्राप्त होने पर उस स्कंध के आकर्षण रूप परिणमित होती है अथवा उस स्कंध से संबंधरूप परिणमित होती है; वह पौद्गलिक मोह का लोभ स्वांग उत्पन्न होता है। जैसे लोहे और चुम्बक का आकर्षणरूप न्याय।

तब कुटुम्ब परिकर आदि सर्व परिग्रह और यश:कीर्ति आदि सर्व ज्ञेयसमूह उन ज्ञेयों को अस्पर्शरूप से उपयोगों द्वारा देखते-जानते हुए उन ज्ञेयसमूह प्रति अत्यागरूप (न छोड़ने रूप) राग तृष्णा अथवा उन ज्ञेयों प्रति तृष्णा-लालच-अभिलाषा-व्यसन-चाह इच्छादिरूप राग रंजितभाव, वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोह का लोभस्वांग भेद प्रवर्तता है।

हास्य :- तथा पौद्गलिक मन-वचन-कायादि वर्गणाओं के विकसित होनेरूप खिलनेरूप जैसे प्रत्यक्ष आँख, होंठ, दाँत आदि अनेकप्रकार चीखनेरूप जोर से हँसनेरूप होते हैं। वह पौद्गलिक योगों के खिलनेरूप मोहकर्म का हास्य स्वांग उत्पन्न होता है तथा बुरेरूप अथवा भलेरूप चेष्टारूप ज्ञेय को उपयोग द्वारा देखते-जानते जीव का आनन्दप्रसादरूप-प्रसन्नरूप विटस्वररूप आदि रंजित होना (रंजना) वह चेतन अमूर्तिक चारित्रमोह का 'हँसना' स्वाँग है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रति :- (उस पौद्गलिक अखाड़े में) पौद्गलिक मन, वचन, काय, योग, वर्गणा, स्कंध के जिस अन्य पौद्गलिक स्कंध से संबंध करने को तथा शीघ्र संबंध करने को प्रवृत्त होने से पौद्गलिक मोह का रतिस्वांग उत्पन्न होता है। तब इस जीव के उपयोग-द्वारा जिस ज्ञेय को देखते-जानते हुए उसका स्पर्श करके ज्ञेय प्रति रुचिरूप, रागरूप, हितरूप, स्नेहरूप, मोहरूप आदि रंजित होना, वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोह का रति स्वाँग भेद जानना।

अरति :- उस पौद्गलिक अखाड़े में पौद्गलिक योग वर्गणा स्कंध का अन्य पौद्गलिक स्कंध से संबंधरूप नहीं प्रवर्तना अथवा विपरीत उसी स्कंध कारण से घाते-छेदे जाना पौद्गलिक मोह का अरति स्वाँग है। इस जीव के उपयोगों द्वारा देखते-जानते जीव-निर्जीवरूप स्कंधरूप अस्पर्श ज्ञेयों से अरुचिरूप, अप्रीतिरूप, द्वेषरूप आदि रंजित होना, वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोह का अरति स्वाँग होता है।

शोक :- पौद्गलिक योग वर्गणा अन्य स्कंध के नाश से मुरझायेरूप-कुम्हलायेरूप-बिलखनेरूप तथा काय के अश्रुपात आदिरूप, भ्रकुटी को ऊँची करना आदि रूप पौद्गलिक मोह का शोकस्वांग उत्पन्न होता है। जीव-अजीव समूह के नाशभावरूप ज्ञेय को यह जीव उपयोग द्वारा देखता-जानता है; तब उस अस्पर्श स्कंध के वियोगभावरूप ज्ञेयों से क्लेशरूप, द्वेषरूप, दुःखरूप, संकल्प-विकल्परूप, संतापरूप आदि जो रंजना (रंजितपना) वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोह का शोकस्वांग है।

भय :- अब उस पौद्गलिक अखाड़े में पौद्गलिक मन, वचन, कायरूप वर्गणास्कंध अन्य जीवनिर्जीव स्कंध का संबंध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्राप्त कर संकोचनरूप होते हैं, उसके वार (रंग) के पलटनेरूप अथवा कंपनरूप होते हैं अथवा अन्य क्षेत्र में चले जाते हैं, वह भाव पौद्गलिक मोह का भय नामक भेद है तथा इन ज्ञेयों को उपयोग द्वारा देखते-जानते उस अस्पर्श ज्ञेयों से भयरूप, शंकारूप, अनिष्ट पुद्गलादिरूप रंजितपना, वह जीव के अमूर्तिक चेतन चारित्रमोह का भय स्वांग उत्पन्न होता है।

जुगुप्सा :- वह पौद्गलिक मन, वचन, काय, वर्गणा स्कंध अन्य स्कंध संबंध का निमित्त प्राप्त होने पर उसे स्पर्श नहीं करे और नासिका आदि संकोचरूप से होता है, वह पौद्गलिक मोह का जुगुप्सा स्वांग उत्पन्न होता है। तब इस जीव के जिस ज्ञेय को उपयोग द्वारा देखते-जानते ग्लानिरूप, अनिष्टरूप, बुरेरूप आदि रंजना वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोह का जुगुप्सा स्वांग प्रवर्तता है।

पुरुषवेद :- तथा वह पौद्गलिक मन, वचन, काय, वर्गणा-स्कंध उग्र, उन्मत्त, अंगार (गर्म) होता है। प्रमाद, तोड़ने, मोड़ने, लिपटने और आलस्य के आकार होता है तथा शुक्रादि धातु के विकाररूप होता है अथवा अन्य स्कंध से रमण, आलिंगनरूप होता है, वह पौद्गलिक मोह का पुरुषवेद स्वांग है। तब इस जीव के जो पुद्गल स्कंध ज्ञेय को उपयोग द्वारा देखते-जानते हुए उग्र उन्मादरूप उच्चाटन, अरतिरूप-आतापन, मोहन, वशीकरण, निर्लज्ज रूप और उस अस्पर्श ज्ञेय प्रति पुनः-पुनः देखना, जानना, स्मरण करना, भोगना, सेवन करना, स्मरण करना आदि तृष्णारूप रंजना (रंजित होना) वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोह का पुरुषवेद स्वांग होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्त्रीवेद :- तथा उस पौद्‌गलिक अखाड़े में पौद्‌गलिक योग, वर्गणा, स्कंध मंदरूप उन्मादाकार होकर अंग तोड़ने, मोड़ने, लिपटने से आकार, प्रमाद, आलस्य, अंग के आकार तथा रजादि धातु विकार होते हैं। पुनः अन्य स्कंधों को रमण कराने के कारण होते हैं, वे पौद्‌गलिक स्त्रीवेद स्वांग हैं। इस जीव के पुद्‌गल स्कंध ज्ञेय को उपयोग द्वारा देखते-जानते हुए मंद-मंद उन्मादरूप, उच्चाटन, अरति, तापन, मोहन, वशीकरण, लज्जा, मायारूप अथवा उस अस्पर्श ज्ञेय प्रति पुनः दिखाने, बतलाने, सेवन-रमण कराने आदि तृष्णारूप रंजना वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोह का स्त्रीवेद नामक भेद है।

नपुंसकवेद :- तथा पौद्‌गलिक अखाड़े में पौद्‌गलिक पुरुष-स्त्रीवेद मिश्रभाव से पौद्‌गलिक योगों का परिणमित होना पौद्‌गलिक मोह का नपुंसकवेद स्वांग है। तब इस जीव के अमूर्तिक चेतन पुरुषस्त्रीवेद मिश्रभाव से चारित्रगुण का रंजना वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोह का नपुंसक वेदस्वांग है।

देखो भव्य! चेतन चारित्राचरण गुण परभावरूप अथवा मोहरूप हुआ इसप्रकार नाट्य करता है, वह (चेतन) उस पौद्‌गलिक मोहकर्म नाटक से भिन्न ही है। वह उस पुद्‌गल को त्रिकाल में भी स्पर्श नहीं करता। सम्यग्ज्ञानी उससे कुछ भी संबंध नहीं देखता है।

आयु :- तथा उस पुद्‌गल अखाड़े में आयु नामकर्म का नाटक होता है। वह किसप्रकार है ? वही कहते हैं।

जो पौद्‌गलिक स्कंध जीव प्रदेश से अस्पृश्य शरीर आदि पौद्‌गलिक वर्गणाओं के एक संबंध को स्थिति प्रमाण तक रखता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, वह पौद्गलिक आयुकर्म स्वांग उत्पन्न हुआ है। तब इस जीव का चरम देह से किंचित् न्यून मूल अवगाहना गुण परभावरूप हुआ है तथा अन्य ही अन्य परिमाण से व्याप्य-व्यापक हो रहा है, मूल परिणाम से च्युत हो रहा है; वह जीव का अमूर्तिक आयु स्वांगभेद है।

नाम :- तथा उस पौद्गलिक अखाड़े में नामकर्म है, वह किसप्रकार है ? उस नामकर्म की कितनी ही प्रकृतियाँ तो मिलकर शरीर के स्कंधप्रमाण मूर्तिरूप होती हैं तथा उस नामकर्म की कितनी ही प्रकृतियों द्वारा उस शरीरस्कंध में प्रकृतियाँ मंडनारूप रचना होती है तथा उसकी अन्य कितनी ही उस शरीरस्कंध में शक्तिरूप (संहननरूप) होती हैं और उसकी कितनी ही प्रकृतियाँ उस छोटे-बड़े शरीर स्कंधप्रमाण (संस्थान) रूप होती हैं तथा कितनी ही प्रकृतियाँ उस शरीर को सूक्ष्म, स्थूल, स्थावर, त्रस, श्वासोच्छ्वास, शब्दादिरूप बनाती हैं, इसप्रकार पौद्गलिक नामकर्म अखाड़ा नृत्य करता है।

तब अमूर्तिक गुण के कारण इस जीव के जो असंख्यात प्रदेश अमूर्तिक हैं, उन प्रदेशों की निजस्वाभाविक चरमदेह परिमाण से किंचित् न्यून मनुष्याकार परिमिति को सूक्ष्म अवगाहना कहते हैं तथा जब अमूर्तिक प्रदेश विकाररूप प्रवर्तते हैं, तब जैसा पौद्गलिक देह आकार और देह परिमित बनती है; उसी के अनुसार जीव के भी असंख्यात प्रदेश वैसे ही आकार वैसे ही प्रमाणरूप हो परिणमते हैं। अमूर्तिक जीवप्रदेश इसप्रकार विकाररूप होते हैं। इस रूप एक जीव के ही प्रदेश व्याप्य-व्यापक होते हैं। जीव को यह जीवप्रदेश विकाररूप नामकर्म स्वांग उत्पन्न होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गोत्र :- तथा उस पुद्गल अखाड़े में पौद्गलिक देह स्कंध को उच्च की पदवी द्वारा दिखाता है अथवा नीच की पदवी द्वारा दिखाता है, वह पौद्गलिकभाव गोत्रकर्म स्वांग है तथा इस जीव के अगुरुलघुगुण है। अगुरुलघुगुण किसे कहते हैं ? अगुरुलघु अर्थात् जो द्रव्य के अनंतगुण अपने-अपने स्वभावरूप परिणमित हों, अपने-अपने निजजातिरूप निश्चल रहें, उस स्वभावशक्ति को अगुरुलघुगुण कहते हैं। ऐसा जीव के अगुरुलघुगुण का निजस्वभाव है। जीवद्रव्य का सर्वथा निजजातिस्वभावरूप कूटस्थ (निश्चल) प्रवर्तना अगुरुलघुगुण का निजजातिस्वभाव है तथा वही अगुरुलघु-गुण विपरीतरूप होता है। विपरीतपना क्या ?

द्रव्य के गुणप्रदेश जैसे के तैसे स्वभावरूप नहीं रहना, सर्वथा अन्य से अन्य हो जाना। पुनः ऐसा होना अगुरुलघुगुण का विपरीत प्रवर्तन है। जीव का अगुरुलघुगुण के परभावरूप गोत्र स्वांग है। यह अथवा इसप्रकार भी (व्याख्यान है)। जीव पापरूप परिणमित हो तो नीचरूप होता है और पुण्यरूप परिणमित हो तो उच्चरूप होता है। इन पुण्य-पाप दोनों से अतीत जीव का निज-जातिरूप परिणमन है, उसका जैसा का तैसा नहीं रहना। इसप्रकार अगुरुलघु के विपरीतभाव से जीव का अमूर्तिक गोत्र स्वांग होता है।

अंतराय :- तथा उस पुद्गल अखाड़े में जो पौद्गलिक मन, वचन, काय आदि हैं, उनका भी स्फूर्णा-व्यापार-खिरना प्रवर्तन संपूर्ण नहीं होता, अपूर्ण खंडित होता है, विघ्न होता है, उस विघ्नभावरूप पौद्गलिक अंतरायकर्म स्वांग है। तब इस जीव के यद्यपि जीवद्रव्य में गुणों का निजजातिरूप सकलस्वभाव शक्तिरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अव्यक्त हो रहा है; परन्तु उस गुण सकलस्वभाव को जीवद्रव्य अपने परिणामरूप व्यक्तता प्रवाह[१] में देने को समर्थ नहीं हो सकता तथा यह जीवद्रव्य षट्गुणी हानि-वृद्धि से एक समय भी स्थायी शुद्धस्वस्वरूप पर्याय परिणामों द्वारा निजस्वभाव सुख भोगने[२] को समर्थ नहीं हो सकता तथा यह जीवद्रव्य निजजाति स्वभाव के एक अद्वितीय स्वाद को बारम्बार सर्व उत्पाद परिणामों की परम्परा द्वारा उपभोग[३] नहीं कर सकता तथा इस जीवद्रव्य के स्वादभाव भावशक्तिरूप अव्यक्त हो रहे हैं, जीवद्रव्य के परिणाम उस स्वभाव का लाभ[४] प्राप्त नहीं कर सकते तथा इस जीवद्रव्य का सकल निजजातिरूप स्वभाव सर्वथाप्रकार स्फुरणा प्रगट होने का उस भावरूप रहने का बल-वीर्यगुण नहीं हो सकता, इसप्रकार जीव का उद्यम-बल-वीर्यगुण निर्बल (होकर) विपरीत भावरूप परिणमित हुआ है, उस रूप अमूर्तिक चेतन अंतराय स्वांग उत्पन्न होता है।

हे भव्य! तू देख! ज्ञानी इसप्रकार से आठ भाँति का अमूर्तिक चेतन नाटक होता हुआ देखता-जानता है। उस पौद्गलिक नाटक से कुछ भी सम्बन्ध नहीं देखता। क्यों ? यदि कुछ सम्बन्ध हो तो ज्ञानी देखें; परन्तु जब कुछ सम्बन्ध नहीं हो तो ज्ञानी कैसे देखें ? (अर्थात् नहीं देखता है)।

तथा उस पौद्गलिक नाटक कर्म प्रकृति के आने-जाने के (सद्भाव-अभाव के) भेद से चौदह अखा-स्थानक मुख्य बनते हैं, तब इस जीव के इस विपरीत अशुद्ध परभाव के उसीप्रकार घटने-बढ़ने से चौदह भेद मुख्यरूप से होते हैं। ज्ञानी चेतन

१. दान गुण, २. भोग गुण, ३. उपभोग गुण, ४. लाभ गुण, ५. वीर्यगुण।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अमूर्तिक जीव के ऐसे चौदह भेद भिन्न-भिन्न देखता है, पुद्गल से कुछ भी सम्बन्ध नहीं देखता। इसप्रकार जीव का अशुद्ध परभाव नाटक होता हुआ भिन्न ही देखता है; क्योंकि जब जीवद्रव्य अशुद्धरूप प्रवृत्त हुआ, तब उस अशुद्धभाव से स्वयं ही व्याप्य-व्यापक हो रहा है। तीनकाल में अन्य द्रव्य को स्पर्श भी नहीं करता। यह द्रव्यों की अनादि-अनंत मर्यादा बँधी है अथवा द्रव्य शुद्धरूप परिणमन करो या अशुद्धरूप परिणमन करो; परन्तु अन्य द्रव्य को किसी भी प्रकार स्पर्श नहीं करता। ज्ञानी ज्ञान होने पर इसी भाँति देखता-जानता है - यह (मर्यादा) इसप्रकार है -

हे मित्र! तू भी ऐसी दृष्टि से देखा कर। अन्य लोक, स्वांग, स्कंध, परज्ञेय द्रव्य का दोष न देख, न जान। परज्ञेय की सन्निधि निमित्तमात्र देखकर "मेरा द्रव्य इन्होंने मलिन किया" इसप्रकार यह जीव स्वयं झूठा ही भ्रम करता है; परन्तु उन परज्ञेयों से तू कभी स्पर्शित भी नहीं हुआ तथा तू उनका दोष देखता-जानता है, यह तेरी हरामजादगी है। इसकारण से एक तू ही झूठा है, उसका कुछ दोष नहीं। वह सदा सच्चा है।

इस कारण हे मित्र! अमूर्तिक संसार नाटकरूप तू ही नाचता है, वही तू स्वयं को देख-जान तथा इस अशुद्ध अवस्था में स्वयं को देखते ही-जानते ही तुझको अपनी निजजाति के नमूने का देखना, जानना; तिष्ठना, आस्वादन होगा तथा तब ही उन निर्मल परिणामों से परिणमित होने पर तेरे अशुद्ध परभाव हेय-नष्ट होते हैं। वह स्वभाव नमूना देखने-जाननेमय ही है। इस देखने-जानने द्वारा अपने को ज्ञाता-द्रष्टा देखा जाना तथा उस देखने-जानने में जीव को विश्राम आराम हुआ, स्वाद भोगा। वह जीव को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निजस्वभावरूप कितनेक परिणामों का लखाव (जानपना, अनुभव) होता है, वही जीव के स्वरूपस्वभाव का नमूना है।

हे मित्र! सर्व का तात्पर्य यह है कि जहाँ अपना अशुद्धद्रव्य देखा और अशुद्धता से भिन्न स्वयं को देखा, वहाँ निजस्वभाव के स्वाद का उद्योत अवश्य होता है। ऐसा होने पर तू ही जानेगा और अशुद्धता के नष्ट करने का तू ही उद्यम करेगा। तू इसप्रकार सदा देखा कर। 'अमूर्तिक चेतन-भाव संसार से एक जीव व्याप्य-व्यापक है' – यह अधिकार समाप्त हुआ।

(सवैया तेईसा)

चेतनजी तुम जागि विलोकहु,
लागि रहे कहा मायाके तांई।
आए काहींसौं कहीं तुम जाहुगे,
माया रमेगी जहांकी तहांई॥
माया तुम्हारी न जाति न पांति न,
वंसकी वेलि न अंसकी झांई।
दासी कियै विनु लातनि मारत,
ऐसी अनीति न कीजै गुसांई॥७॥

(सवैया तेईसा)

लोकनिसौं कछु नातौ न तेरौ न,
तोसौं कछु इह लोकको नातौ।
ए तौ रहै रमि स्वारथ के रस,
तू परमारथ के रस मातौ॥
ये तनसौ तनमैं तनसे जड़,
चेतन तू तिनसौं नित हांतौ।
होहु सुखी अपनौ बल फैरिकै,
तोरिकै राग विरोधकौ तांतौ॥९॥

– नाटक समयसार, पृष्ठ-३३८, ३३९

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संसार कर्तृत्व अधिकार वर्णन

कोई इसप्रकार प्रश्न करता है कि गुणस्थान, मार्गणा, कर्मयोग आदि संसार है। वह संसार किसके परिणाममय है ? वह कहिए। वही कथन दिखाते हैं ?

देखो एक चन्द्रमा आकाश में है, एक उसका निमित्त प्राप्त होने पर पानी की स्वच्छता के विकाररूप चन्द्रमा है तथा एक लाल रंग है और एक उसका निमित्त प्राप्त होने पर स्फटिक की स्वच्छता के विकाररूप लाली है तथा एक मयूरस्कंध है और एक उसका निमित्त प्राप्त होने पर दर्पण की स्वच्छता के विकार रूप मयूर है। उसीप्रकार एक गुणस्थान-मार्गणादि पुद्गलस्कंधरूप संसार है तथा एक उसका निमित्त प्राप्त होने पर जीव की स्वच्छता के विकाररूप चेतना संसार है। तो यहाँ तुम न्याय द्वारा विचार करो कि चन्द्रमा, लालरंग, मोर, संसार किस परिणाममय वस्तुरूप उत्पन्न हुआ है ? किन परिणामों में भावरूप उत्पन्न होता है ? देखो, जो वे (असली) चन्द्रमा आदि विकारी हों तो उनके भी अन्य चन्द्रमा आदि का निमित्त हो, वह तो दिखाई नहीं देता और यदि वे (असली) चन्द्रमा आदि विकार भावरूप हों तो उनका कोई विकारी स्वच्छस्थान भी दिखाई नहीं देता और यदि वे (असली) चन्द्रमादि विकार हों, तो अन्य जलादि का विकार चन्द्रमादि विकाररूप होना मूल से नास्ति हो जाय; परन्तु ये जलादि विकार तो प्रत्यक्ष होते दिखाई देते हैं।

तथा जो इसप्रकार कहें, 'वे चन्द्रमा आदि जलादि में प्रवेश करके तिष्ठ रहे हैं'; परन्तु वे तो इन जलादि में परमाणुमात्र भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवेश कर व्याप्त होते नहीं दिखाई देते हैं तथा जो इसप्रकार कहते हैं कि जलादि में चन्द्रमादि विकाररूप उन चन्द्रमा आदि निमित्त के बिना ही होते है। स्थिति के आधीन मात्र देखते हैं। अत: यहाँ यह भी देखते है कि जो वे चन्द्रमादि कभी नष्ट होते हैं (छुपते हैं) तो उनके नष्ट हो जाने पर यहाँ भी कुछ वस्तु रह जाती नहीं दिखाई देती। उनका नाश (छिपना) वह वस्तु (प्रतिबिंब) ही का नाश है। इससे तो यह निर्णय हुआ कि वे (असली) चन्द्रमादि वस्तु अंग परिणाममय हैं, वह वस्तु ही हैं।

तथा जलादि विकाररूप चन्द्रमादि नाश होते जलादि स्वच्छता परिणाम प्रत्यक्ष रह जाता है। अत: यह प्रत्यक्ष है कि जलादि की स्वच्छता वस्तु है; परन्तु उस (असली)चन्द्रमादिरूप के अनुसार जलादि स्वच्छता परिणाम ने भी स्वयं को चन्द्रमादि स्वांग बना लिया है। उन स्वच्छता परिणामों ने भी उन चन्द्रमादि वस्तुमय के रूपों की कूट (आकार) बनाया है; परन्तु यह कूट की कर्त्ता तो यह स्वच्छता वस्तु अंग परिणाममय है तथा स्वच्छता परिणामों द्वारा रचित चन्द्रमादिरूप कूट है सो कूट स्वांगभाव है; परन्तु वह कूट (स्वच्छता) परिणाम (मूलभूत वस्तु) नहीं है; वह कूट तो परिणामों का स्वांग है। अत: इसतरह निर्णय करने से निश्चय हुआ कि जलादि के स्वच्छता परिणामों में ही जो चन्द्रमादि स्वरूप बना है, वह रूप अवस्तु है; अपरिणाम (मूलत: वस्तु नहीं) है। हे भव्य! निर्णय कर तो जैसी की तैसी बात निश्चित होगी। वह तुमने देखी। अब उससे नि:संदेह जानना -

गुणस्थान, मार्गणा, कर्म, योगबन्ध, कषायबन्ध, आस्रव, संयम, असंयम आदि जितना भी संसार वस्तु अंश परिणाममय है, वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्व केवल पौद्गलिक द्रव्यमय जानना तथा भावसंसार होने की ऐसी विधि है, उसे तू सुन।

इस जीव के उपयोगरूपमय स्वच्छता परिणाम है। उन परिणामों में देखने-जानने के स्वभाव के कारण सर्वपरज्ञेय दृश्य के आकार होते हैं। ऐसा वस्तुस्वभाव है, उपयोग की सदा ऐसी रीति है। अतः इस एक जीव में निश्चय से पर भी हैं, स्व भी हैं। परदृश्यरूप ज्ञान-दर्शन के आकार से केवल एक आकार-वह आकार तो पर है तथा देखने-जाननेरूप जितना स्व है।

देखो! स्व-पर निश्चय से इस जीव में हैं, प्रगटरूप से भी इस जीव में हैं। ठीकरूप-स्थिररूप आचरण गुण है, वह आचरण गुण किसी ज्ञेयरूप पुद्गलस्कंधों के संसार निमित्तकाल से मात्र एक (जो) उन आकाररूपों में प्रवर्तता है तथा कभी केवलज्ञान-दर्शनरूप में प्रवर्तता है। जब आचरण गुण उस एक केवल आकार से प्रवर्तता है, उस काल में तो जीवद्रव्य अज्ञान, दुःखादि अशुद्ध होता है और जब आचरण गुण आकारों को छोड़कर केवल एक ज्ञान-दर्शनरूप प्रवर्तता है, तब केवलज्ञान सुखादि, सुख, शुद्धता से जीवद्रव्य शुद्ध होता है। यह आचरण की रीति है।

अतः हे भव्य! तू इधर देख, यह आचरण गुण जब मात्र उन आकारों में प्रवृत्त हुआ, वहीं जीव को परस्वाँग रचना उत्पन्न हुई, परविकार उत्पन्न हुआ। इसप्रकार जीव परिणाम स्वयं को परभाव स्वांग बना लेता है। वह सर्व भावसंसार है। वह भावसंसार केवल जीव का जानना। अन्य परिणाममय संसार से एक पुद्गल व्याप्य-व्यापक और भावसंसार से एक जीव व्याप्य-व्यापक हो रहा है।

तथा एक बात जानना पुद्गल परिणाममय रूपों द्वारा संसार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का कर्त्तादि होता है तथा जीव परिणामरूपों द्वारा संसार का कर्त्ता नहीं होता है। इस जीव को व्याप्य-व्यापकपने से भावसंसार का कर्तादि कहने में आता है। यहाँ यह जीव व्याप्य-व्यापकपने से मात्र भावसंसार का ही कर्तादि जानना। पुद्गलद्रव्य अपने परिणामों रूप ही संसार का कर्त्ता होता है, परिणाम पिंड द्वारा संसार का कर्त्ता है। यह जीवद्रव्य अपने परिणामों के भावों रूप संसार का कर्त्ता होता है तथा जीव परिणामों की अपेक्षा से सदा, त्रिकाल, शुद्ध एक चेतनमय परिणाम उत्पन्न करने का कर्ता रहता है तथा जीवद्रव्य के द्वारा उत्पन्न जो मात्र चेतनमय परिणाम हैं, उन परिणामों ने ही स्वयं में संसारभाव अशुद्धभावरूप रचना की है; अत: जीव के परिणाम संसारभाव अशुद्धभाव के कर्त्ता होते हैं; परन्तु यह नि:संदेह है कि जीवद्रव्य निश्चयनय से कभी कर्त्ता नहीं होता है। जीव के परिणाम उस संसार के कर्त्ता हुए हैं, वे परिणाम इसी जीवद्रव्य के हैं, इसलिए व्यवहारनय से जीवद्रव्य को भी कर्त्ता कहते हैं।

तथा जीव परिणाम उस अशुद्ध संसारभाव से व्याप्य-व्यापक हुए हैं, अत: उन परिणामों को निश्चय से अशुद्धभाव के कर्त्ता कहते हैं तथा अशुद्धनिश्चय से द्रव्य को संसार का कर्त्ता कहें तो भी कोई दूषण नहीं है; परन्तु ज्ञानदृष्टि में जीवद्रव्य संसार का सदा अकर्त्ता दिखलाई देता है।

यहाँ एक दृष्टांत जानना – जैसे माणिक स्वयं लाल परिणाममय उत्पन्न हुआ; अत: वह मणि लाल परिणाममय का कर्त्ता है। उसीप्रकार पुद्गलद्रव्य पुद्गल परिणाममय संसार का कर्त्ता है तथा उस माणिक का निमित्त प्राप्त कर स्फटिक शिला में विकार की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लालिमा उत्पन्न हुई; उस शिला में उस लालिमाभाव का कर्त्ता प्रत्यक्ष, उस शिला का स्वच्छपरिणाम है, वह स्फटिक द्रव्य नहीं है। वह स्फटिक द्रव्य तो लालिमा के परिणाम का अकर्त्ता है तथा यदि द्रव्य उस लालिमा को परिणामों द्वारा करे तो वह लालिमा उस स्फटिक की स्वच्छता के समान हो जाय अर्थात् वह लालिमा उस स्फटिक का गुण हो जाय। जब गुण हो जाय, तब नष्ट नहीं होगा, (उसको अर्थात् लाली को गुणरूप माना जाय तो वह) विकाररूप नहीं ठहरेगा – ऐसा अनर्थ उत्पन्न होगा। अतः यह प्रत्यक्ष है-स्फटिक द्रव्यलालिमा का कर्त्ता नहीं है, उसका स्वच्छता परिणाम निश्चय से कर्ता है; परन्तु व्यवहार से स्फटिक लालिमा का कर्त्ता कहा जाता है; क्योंकि वह स्वच्छता उसकी है। इसीप्रकार जीव को जानना। अंतर यही है कि स्वच्छता परिणामों के स्थान पर चेतनपरिणाम और स्फटिक द्रव्य के स्थान पर जीवद्रव्य लगाना। इसप्रकार यह जीव परिणामों द्वारा भावसंसार का कर्त्ता होता है; अतः इसको भावसंसार जानना।

मित्र! यहाँ यह बात और जानना। जीव के परिणामों की जिस-जिस काल जैसी-जैसी अवस्था होती है, वही एक अवस्था जीवद्रव्य के होती है। परिणाम-अवस्था बिना इस द्रव्य के अवस्था होने का कोई मार्ग नहीं है। अतः अन्य अवस्था परिणाम बिना किसप्रकार हो ? जिस काल परिणाम बाह्य-अंतर, शुद्ध-अशुद्ध अथवा मिश्र उन परिणामों में से कोई अवस्था धारण करे, उस कालद्रव्य को ही एक अवस्था निःसंदेह होती है। उस काल-द्रव्य को उसी दशा का स्वाद है।

॥इति संसार कर्तृत्वाधिकारः॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुभव वर्णन

इस पौद्गलिक कर्म द्वारा पाँच इन्द्रिय छट्ठे मनरूप बने हुए संज्ञी देह, उस देह में उसके प्रमाण जीवद्रव्य स्थित है, उस जीवद्रव्य को भी इन्द्रियमन नाम से कहा जाता है। उसका नाम भावइन्द्रिय-भावमन है और वहाँ उपयोगपरिणाम में भी छह प्रकार का भेद हो रहा है। एक उपयोगपरिणामभेद पुद्गल स्पर्शगुण को देखता-जानता है, एक उपयोगपरिणामभेद पुद्गल के वर्णगुण को देखता-जानता है, एक उपयोगपरिणामभेद पौद्गलिक शब्दस्कंध को देखता है-जानता है और एक उपयोगपरिणामभेद अतीत-अनागत-वर्तमान, मूर्तिक-अमूर्तिक की चिंता-विचार-स्मरणादि विकल्परूप देखता-जानता है; इसप्रकार उपयोगपरिणाम भेद हो रहा है तथा उपयोगपरिणाम के भेद जो पुद्गल के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द ज्ञेयों में एक-एक के बाद दूसरे-दूसरे को देखने-जानने को एक-एक उपयोगपरिणामभेद है। इसप्रकार राजा इन्द्र (राजा इन्द्रवत् आत्मा के) उपयोग के भेद हो रहे हैं; अतः उन उपयोगपरिणामभेदों को इस भाव में इंद्रिय, संज्ञा द्वारा कहा जाता है तथा उपयोगपरिणाम के विकल्प, विचार, चिंतारूप मनन होता है, और उसके होने से उस उपयोगपरिणामभेद को मनसंज्ञा द्वारा कहा जाता है।

अब इनको एक ज्ञान का नाम लेकर कथन करता हूँ, 'ज्ञान' कहने से दर्शनादि सर्व गुण समाविष्ट हो गये, अतः ज्ञान का कथन करता हूँ –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देखो संत! इन मन इन्द्रिय के भेदों के ज्ञान की पर्याय का नाम मतिसंज्ञा है और भी उस मनभेद के ज्ञान द्वारा अर्थ से अर्थान्तर विशेष जाने इस जानने की श्रुति संज्ञा है। ज्ञान की मति और श्रुत, दोनों पर्यायें विपरीतरूप और सम्यक्रूप होती हैं। उसी का विवरण करता हूँ –

तू यहाँ देख! यह जीव जबतक मिथ्यात्वी रहता है, तबतक यह मति, श्रुत, कुरूप होते हैं अर्थात् कुमति, कुश्रुति कहलाते हैं तथा जब यह जीव सम्यक्त्वी होता है, तब यह मति, श्रुत, सम्यक्मति, सम्यक्श्रुतिरूप होते हैं। वह कुरूपता किसप्रकार प्रवर्तती है और सम्यक्रूपता किसप्रकार प्रवर्तती है। उसका विवरण तू सुन –

हे सन्त! कुरूपता–बुरी, सम्यक्ता–भली, क्रमशः मिथ्यात्वी जीव के और सम्यक्त्वी जीव के है। मति, श्रुत पर्याय तो दोनों के एक समान है। इस कुरूपता और उस सम्यग्रूपता का क्या भेद है, वह सुन –

हे सन्त! तू देख, मिथ्यात्वी के मति–श्रुतरूप द्वारा जो कुछ जानना है, उसको जानने में स्व–पर व्यापक–अव्यापक की जाति का भेद नहीं है। उस ज्ञेय को अपनेरूप देखे अथवा कुछ देखता ही नहीं। यह उस मिथ्यात्वी के मति–श्रुतरूप जानने में कुरूपता है तथा वह सम्यग्दृष्टि मति–श्रुतरूप द्वारा जो कुछ परज्ञेय को जानता है, उस जानने में परज्ञेय को परज्ञेय का ही भेद है तथा जाननारूप स्व का ही भेद है – ऐसा वह सम्यक्ज्ञान द्वारा समझता है तथा जो चारित्र उस परज्ञेय को अवलम्बन करता है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और उस परज्ञेय का स्वाद भी भोगता है तो उस चारित्र विकार को भी देखता है, यह उस सम्यग्दृष्टि के मति-श्रुत में सम्यक्रूप है।

तथा यह सम्यक्त्वता सविकल्प निर्विकल्परूप से दो प्रकार है। (१) जघन्य ज्ञानी जब उस परज्ञेय को अव्यापक पररूपत्व जानता है, आपको जाननरूप व्यापक जानता है, वह सविकल्प सम्यक्त्वता है। (२) जाननरूप आप-आपको ही व्याप्य-व्यापक जानता रहे, वह निर्विकल्प सम्यक्त्वता है तथा युगपत् एक बार एक ही समय में स्व को सर्वस्व कर सर्वथा देखता है और सर्व परज्ञेयों को सर्वदा पररूप देखता है; तब चारित्र परमशुद्धरूप है। उस सम्यक्त्व को सर्वथा परम-सम्यक्त्वता कहा जाता है, वह केवलदर्शन-ज्ञान-पर्याय में पाया जाता है। तो इस मति श्रुत-आदिकों की जाननदृष्टि युगपत् क्यों नहीं है, उसका क्या कारण है ? उसका कारण तू सुन -

हे संत! मति-श्रुत आदि ज्ञान प्रयुक्त होनेरूप हैं। जिधर जिस ज्ञेय प्रति प्रयुक्त हो, तब उस काल में स्वज्ञेय को अथवा परज्ञेय को काकगोलक न्याय से अथवा युगल नेत्रदृष्टि न्याय से देखता है और उसका भी विवरण -

स्वज्ञेय अथवा परज्ञेय प्रति प्रयुक्त होते हुए भी वे मतिश्रुतज्ञान से एक अंश के भेद को जानते हैं, फिर वहाँ से हटकर अन्य ज्ञेयभाव के प्रति प्रयुक्त हो, तब उसको जानते हैं। उसके उदाहरण - जब जीव द्रव्यत्व जानने को प्रयुक्त हो, तब द्रव्यत्व सामान्य को ही जानता है और जो, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भेदों को जानने के लिये प्रयुक्त हो, तब उन भेदरूपों को जानता है तथा उन भेदों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में भी जब एक उत्पादभाव को जानता है तब व्यय-ध्रौव्य के भेद भावों को नहीं जानता, जब गुणरूप को जानता है; तब द्रव्यरूप को नहीं जानता है। जब पर्यायरूप को जानता है, तब गुणरूप को नहीं जानता। जब ज्ञान का रूप जानता है, तब चेतना वस्तुत्व को नहीं जानता है। जब चेतना वस्तुत्व को जानता है, तब ज्ञान गुण को नहीं जानता है तथा जब ज्ञानगुण की मतिरूप पर्याय को जानता है, तब ज्ञान की अन्य पर्यायों को नहीं जानता है। जब स्ववस्तु को जानता है, तब पररूप को नहीं जानता है तथा इसी-प्रकार जब पुद्‌गलद्रव्यत्व को जानता है, तब पुद्‌गलगुण को नहीं जानता है। जब वर्णगुण के रूप को जानता है, तब रसादि गुणों के रूपों को नहीं जानता है, जब रसगुण को जानता है, तब वर्णादिगुण को नहीं जानता है तथा जब मिष्टरस को जानता है, तब अन्य रस को नहीं जानता है। इसप्रकार सर्व का तात्पर्य यह है कि जघन्यज्ञान जिधर को, जिस ज्ञेयभाव प्रति प्रयुक्त होता है, उस काल उसी को तावन्मात्र (उतना ही) एक ज्ञेयभाव को जानता है। उसके दूसरे भाव प्रति जब प्रयुक्त होता है, तभी जानता है, उस ज्ञेय प्रति प्रयुक्त हुए बिना नहीं जानता।

परन्तु एक बात और है – मिथ्यात्वी के भी इसीप्रकार जघन्य ज्ञान ही का जानना है तथा इसीप्रकार जघन्यज्ञान ही का जानना सम्यग्दृष्टि के होता है; परन्तु भेद इतना है – मिथ्यात्वी जितना भी भाव जानता है, उतना ही अयथार्थरूप अजातिभेद साधता है तथा उसी भाव को सम्यग्दृष्टि जानता है, उतना ही यथार्थरूप जातिभेद साधता है। इसप्रकार जघन्यज्ञान प्रयुक्त होनेरूप इतना ही अंतर है। और कैसा है ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जघन्यज्ञान जानने को जब जिस ज्ञेय प्रति प्रयुक्त होता है, तब उसी ज्ञेय के प्रति क्रम से जाननेरूप प्रवृत्त होता है। उसी ज्ञेय को पहले थोड़ा-सा साधता है, फिर उसको उससे कुछ अधिक साधता है; फिर उससे अधिक साधता है, इसप्रकार उस एक ज्ञेय को कुछ काल में संपूर्ण साध लेता है। इसप्रकार जघन्यज्ञान क्रमवर्ती है अथवा एक ज्ञेय को एक काल में जानता है, फिर दूसरे काल में दूसरे ज्ञेय को जानता है; इसप्रकार क्रमवर्ती जानना और यह जघन्यज्ञान कैसा है ?

कतिपय है, सर्व ज्ञेयों में से कतिपय ज्ञेयों को जान सकता है अथवा कुछ चेतनशक्तियों द्वारा जान सकता है तथा एक द्रव्य के कुछ भावों को जान सकता है, सर्वथा सर्व नहीं जान सकता, इससे कतिपय है। जघन्यज्ञान भी कैसे है – जघन्यज्ञान भी कैसे जघन्यज्ञान है ?

यह जघन्यज्ञान साधने को स्थूलकाल प्रवर्तता है। जब किसी एक ज्ञेय को जानने द्वारा साधन करता है, तब जघन्य, मध्यम अथवा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तकाल पर्यन्त साधन करता है; इसप्रकार ज्ञेय साधने को स्थूलकालपर्याय है तथा यह जघन्यज्ञान लघुकाल स्थायी है। जो ज्ञेयभाव जानकर सिद्ध किया है, यदि फिर उस सिद्ध ज्ञेय को जानता रहे तो जघन्य, मध्यम अथवा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक जाना करता है; फिर वहाँ से छूटकर अन्य ज्ञेयभाव प्रति प्रवर्तता है, इसलिये जघन्यज्ञान लघुकालस्थायी है और यह जघन्यज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञानशक्ति है। इसप्रकार जघन्यज्ञान में तो जानना होता है।

किन्तु अप्रयुक्त, एक समय में सर्वथा, सर्व को, युगपत्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाननेवाला, अनंतकाल तक रहनेवाला क्षायिकरूप केवलज्ञान है। अतः इस केवलज्ञान पर्याय में सर्वथा परम सम्यक्ता होती है। हे भव्य! इसप्रकार मति-श्रुतादि ज्ञानपर्यायों का स्वरूप कहा और उस ज्ञान में सम्यक्ता भी प्रवर्तती हुई कही। वह सम्यक्ता दो प्रकार है, उसे दिखाते हैं –

सम्यग्दृष्टि के इन्द्रिय-मन नामक उपयोगपरिणाम भाव की सम्यक्ता तो सविकल्परूप है और उसको तू देख – वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, ज्ञेयों प्रति एक जानन-देखनरूप उपयोगपरिणाम परिणमित होते हैं, उस जानने-देखने की एक इन्द्रियसंज्ञा है। उसे अब भिन्न-भिन्न इन्द्रिय के नाम से कहते हैं –

सम्यग्दृष्टि इन्द्रिय नाम उपयोग परिणामों द्वारा जब-जब जिस-जिस ज्ञेय को देखता-जानता है, तब-तब वे उपयोग परिणाम यथार्थ स्ववस्तु का लक्ष लिये हुए हैं। वे उपयोगपरिणाम तथा चिंता, विचार, स्मरणरूप विषययोग, संयोग-वियोग, स्नेह, सुख-दु:ख, कषायादि अशुद्धपरिणति के द्रव्य, गुण, पर्याय; स्व-पर के भेद-अभेद आदि रूप सर्व शास्त्र, सर्व विकथाशास्त्र सर्व स्व-पर की अतीत, अनागत, वर्तमान अवस्थाओं की चिंता, विचार, स्मरण विकल्प कल्लोलरूप उपयोगों के जानने-देखने के लिये तो परिणाम परिणमित हुए, उन परिणामों के देखने-जानने को मनसंज्ञा धारण की। अब इन्हीं को मन नाम से कहते हैं। इस सम्यग्दृष्टि के मन नामक उपयोग परिणाम हैं, उन परिणामों द्वारा जब-जब जो-जो चिंता, विचार, स्मरणरूप देखते हैं, जानते हैं, तब-तब वे उपयोग परिणाम यथार्थ स्ववस्तु का लक्ष लिये होते हैं। देखो, ऐसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इन्द्रियसंज्ञापरिणामों और मनसंज्ञापरिणामों में उपयोगों की सम्यक्ता सविकल्परूप है। इस सम्यक्ता से भी आस्रव और बंध नहीं होते। अब निर्विकल्पदशा कहता हूँ, श्रवण कर –

देखो, जो चारित्राचरण है, उस चारित्र के जो परिणाम वर्णादिक को आचरते हैं–अवलंबन करते हैं, उन चारित्र परिणामों को भी इन्द्रिय आचरणसंज्ञा से कहा जाता है तथा आचरणजन्य स्वाद, उस स्वाद को भी इन्द्रियस्वाद संज्ञा से कहा जाता है तथा स्वभाव वस्तुमात्र से अन्य सर्व विकल्प उन विकल्पों को जो चारित्रपरिणाम आचरण करे–अवलंबन करे, उन परिणामों को मनाचरणसंज्ञा से कहा जाता है। उस आचरणजन्य स्वाद को भी मनसंज्ञा से कहा जाता है। इसप्रकार मन–इन्द्रियसंज्ञा धारक आचरण और स्वाद परिणाम उस सम्यग्दृष्टि के मन–इन्द्रियसंज्ञा सम्यक् उपयोग परिणामों के साथ है; परन्तु उस सम्यग्दृष्टि के उन मन–इन्द्रियसंज्ञाधारी अशुद्ध चारित्रपरिणामों से आस्रव–बन्ध नहीं होता। वह किसका गुण है ? (किसकी विशेषता है ?)

उस सम्यग्दृष्टि से मन–इन्द्रियसंज्ञाधारी अशुद्ध चारित्रपरिणामों को साधने के लिये उपयोगों के परिणाम सविकल्परूप सम्यक् ही हैं। अतः उन मन–इन्द्रियसंज्ञाधारी चारित्र के अशुद्धपरिणामों से आस्रव–बन्ध नहीं हो सकता। उन उपयोगों के सम्यक् परिणामों ने बन्ध–आस्रवरूप उन अशुद्ध चारित्रपरिणामों की बन्धशक्ति कीलित कर दी है अर्थात् रोक दी है। अतः सम्यग्दृष्टि बुद्धिपूर्वक (स्वामित्व के) आचरण अपेक्षा निरास्रव निर्बन्ध हुआ है। इसप्रकार सम्यग्दृष्टि मन–इन्द्रियसंज्ञाधारी सम्यक् उपयोगपरिणाम तथा मन–इन्द्रियसंज्ञाधारी अशुद्धचारित्रपरिणाम, इन दोनों परिणामों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का प्रवाह चल रहा है। अब इनकी निर्विकल्पदशा का होना दिखलाता हूँ –

जब उस सम्यग्दृष्टि के जो मन-इन्द्रियसंज्ञक उपयोगपरिणाम हैं, उन परिणामों को एक बाह्य-पर वर्णादि खण्ड-खण्ड देखने-जानने से इन्द्रियसंज्ञा धारण की हुई थी। अब वे उपयोग परिणाम उन वर्णादिक को जानने से रुक गये, तब उन परिणामों को इन्द्रियसंज्ञा नहीं होती-इन्द्रियसंज्ञा से अतीत हो गये तथा जिन उपयोगपरिणामों को विकल्प देखने-जानने से मनसंज्ञा प्राप्त हुई थी, वे उपयोगपरिणाम भी तभी उन विकल्पों के देखने-जानने से रुक गये, तब उन उपयोगपरिणामों को मनसंज्ञा नहीं होती, वे परिणाम तब मनसंज्ञा अतीत होते हैं। इसप्रकार यह दोनों (उपयोगपरिणाम) इन्द्रियातीत और मनातीत हुए तथा सर्व एक स्वयं ही को स्वयं चित् वस्तुरूप व्याप्य-व्यापकरूप से प्रत्यक्ष आप ही देखने लगे-जानने लगे, तब वे उपयोगपरिणाम प्रत्यक्ष और उस मनइन्द्रियभाव से शून्य हो गये तथा तभी मन-इन्द्रिय संज्ञाधारी उपयोगदशा के बल से साधित मन-इन्द्रियसंज्ञाधारी अशुद्धचारित्र चपलपरिणाम उसी काल में परावलम्बन और चपलता रहित हो गये। तब उन चारित्रपरिणामों की मन-इन्द्रिय संज्ञा नहीं होती, मन-इन्द्रियसंज्ञातीत परिणाम कहलाते हैं तथा वे चारित्रपरिणाम निज उपयोगमय चित्वस्तु में स्थिरीभूत शुद्ध वीतरागमग्नरूप प्रवर्तते हैं तथा निज का स्वाद उन्हीं चारित्र परिणामों से उत्पन्न होता है।

इसप्रकार जब सम्यग्दृष्टि के ज्ञान-दर्शन-चारित्रसहित परिणाम निज चित्वस्तु ही को व्याप्य-व्यापकरूप देखते-जानते हुए तिष्ठत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(स्थित) हुए निज व्याप्य-व्यापक स्वाद लेते हैं, उस स्व-स्वाददशा का नाम स्वानुभव है। इसप्रकार स्व-अनुभव होने पर छद्मस्थ जीव के दर्शन-ज्ञानादि परिणामों को निर्विकल्प-सम्यक्ता उत्पन्न होती है। वह जघन्यज्ञानी सम्यग्दृष्टि के निर्विकल्प उपयोग सम्यक्ता जाननी। यहाँ उस काल स्वसंवेदन का यह अर्थ जानना – स्व अर्थात् मैं-स्वयं ज्ञान, सं-अर्थात् साक्षात् प्रत्यक्ष, वेदन अर्थात् इस वस्तु से व्याप्य-व्यापकरूप जानना।

भावार्थ – सम्यग्दृष्टि होते ही उस जीवद्रव्य में ज्ञानगुण की शक्ति साक्षात्प्रत्यक्ष होकर ऐसी प्रवर्तित हुई कि इस स्थान में यह "मैं ज्ञान इस आत्मवस्तु प्रमाण तादात्म्य व्याप्य-व्यापकरूप हूँ।" इस ज्ञानशक्ति को जानने का नाम स्वसंवेदन कहा जाता है। ज्ञान की यह स्वसंवेदनशक्ति छद्मस्थ के साक्षात्प्रत्यक्षरूप हो प्रवर्तती है। इस ज्ञानशक्ति की प्रत्यक्षता से केवली, श्रुतकेवली बराबर हैं, यह भेद भले प्रकार जानना।

इसप्रकार जघन्य सम्यग्दृष्टि के सम्यक्ता सविकल्प-निर्विकल्प के भेद से दो प्रकार होती है। अतः जघन्य सम्यक्दृष्टि इन दोनों सम्यक्ताओं से निरास्रव-निर्बन्ध होता है तथा जब ज्ञान-दर्शन-चारित्र परिणामों से स्व-स्वादरूप स्व-अनुभव होता है, तब उन परिणामों को निम्न नाम (संज्ञा) भाव द्वारा कहते हैं – निर्विकल्प-दशा, आत्मसन्मुख उपयोग, भावमति-भावश्रुत, स्वसंवेदनभाव, स्ववस्तुमग्न, स्वाचरण, स्वस्थिरता, स्वविश्राम स्वसुख, इन्द्रिय-मनसंज्ञातीत भाव, शुद्धोपयोग ये सर्व संज्ञाभाव अथवा उपचार से इन्द्रियमन स्वरूप में मग्न, इसप्रकार एक ही संज्ञा से कहते हैं। स्वानुभव आदि अनेक संज्ञाएँ हैं; परन्तु एक स्व-स्वादरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुभवदशा अथवा निर्विकल्पदशा मुख्य जानना। अब इस निर्विकल्पदशा रहने का काल सुन –

जघन्य, मध्यम अथवा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक स्व-अनुभवरूप परिणाम प्रवाहित हो रहे हैं। अन्तर्मुहूर्त पश्चात् फिर परिणाम, मन-इन्द्रियसंज्ञक हो विकल्पी होकर, चारित्र (बुद्धिपूर्वक उपयोग अपेक्षा) परावलम्बी होता है, तब परस्वाद आता है। उसीप्रकार वे सविकल्परूप भी हो जाते हैं और कुछ काल पश्चात् उस सविकल्पभाव से रहित होकर पुनः परिणाम अनुभवरूप हो जाते हैं। पुनः अन्तर्मुहूर्त पश्चात् परिणाम सविकल्परूप भी धारण करे; पुनः कुछ काल पश्चात् परिणाम सविकल्परूप छोड़कर अनुभवरूप होते हैं। जघन्यज्ञानी के सम्यक्त्वाचरण धाराप्रवाही परिणामरूप प्रवर्तित होते हैं-उत्पन्न होते है, चारित्राचरण अनुभव धाराप्रवाही नहीं होता। जघन्यज्ञानी के अनुभव कदाचित् होता है, उसका एक विवरण –

चौथे गुणस्थान के सम्यग्दृष्टि के स्व-अनुभव का काल लघु अन्तर्मुहूर्त तक रहता है और बहुत काल पश्चात् होता है तथा उससे देशव्रती का अनुभव में रहने का काल अन्तर्मुहूर्त बड़ा है और थोड़े-थोड़े काल पश्चात् होता है तथा सर्वविरति के स्व-अनुभव दीर्घ अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त रहता है अथवा ध्यान से भी होता है और बहुत थोड़े-थोड़े काल पश्चात् बार-बार स्व-अनुभवदशा हुआ ही करती है तथा सातवें गुणस्थान से जो परिणाम पूर्व में स्व-अनुभव रूप हुए थे, वे तो अनुभवरूप तिष्ठे हैं; परन्तु तब मुख्यरूप से कर्मधारा से निकल-निकलकर स्वरसस्वाद अनुभव रूप होते चले। ज्यों-ज्यों उत्तर-उत्तर काल में आते हैं, त्यों-त्यों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और-और परिणाम स्वादरस के अनुभवरूप बढ़ते जाते हैं। इस प्रकार तहाँ से क्षीणमोह के अन्त तक परिणामवृद्धि द्वारा अनुभवदशा का परिवर्तन होता जाता है। हे सविकल्प के आचरणवाले! तू एक बात सुन -

तू देख, इस परिणति वर्णन द्वारा परिणामों का सविकल्प-निर्विकल्प स्व-अनुभव होना दिखलाया, तो तू भी अपनी परिणति इस कथन अनुसार है कि नहीं ? तुलना करके देख और यदि तू सम्यग्दृष्टि है और तूने अपनी परिणति इसी के अनुसार होती देखी है, तो हम एक बात और कहते हैं। वह क्या ?

तू देख। यह स्व-अनुभवदशा स्वसमयरूप स्वसुख है, शांत विश्राम है, स्थिररूप है, कोई कल्याण है, चैन* है, तृप्तिरूप है, समभाव है और मुख्य मोक्षमार्ग है तथा इस सम्यक् सविकल्पदशा में यद्यपि उपयोग निर्मल रहता है तथापि अरे! चारित्रपरिणाम परावलंब अशुद्ध चंचलरूप होते हैं; अतः सविकल्पदशा दुःख है, तृष्णा के ताप से चंचल है, पुण्यपापरूप कलाप है, उद्वेगता है, असंतोषरूप है, चारित्रपरिणाम ऐसे-ऐसे विलापरूप हैं। ये दोनों अवस्थाएँ तूने अपने में देखी हैं। अतः भला तो यह है कि तू स्व-अनुभवरूप रहने का उद्यम रखा कर, यह हमारा वचन विवरण द्वारा (व्यवहार) उपदेश कथन है।

॥इति अनुभवाधिकार॥

---

* चैन=निराकुलता

(चौपाई)

सत्यप्रतीति अवस्था जाकी। दिन दिन रीति गहै समताकी॥
छिन छिन करै सत्यकौ साकौ। समकित नाम कहावै ताकौ॥२७॥

- नाटक समयसार, पृष्ठ-३७५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अथ अन्यत् किंचित् कथ्यते तावत् दृष्टांत

अब जो कुछ कहा जाता है, उसे ही दिखलाते हैं –

किसी देश में एक पुरुष छत्तीस पवन (नीच जातियों की सेवा करता था और उन जातियों को भी राजारूप जानता था, देखता था, सेवा करता था और याद रखता था। इसीप्रकार करते-करते उस पुरुष की अवस्था बहुत समय तक व्यतीत हुई। एक दिन उस पुरुष को किसी ज्ञातापुरुष के कहने से विचार उत्पन्न हुआ। तब उस ज्ञातापुरुष ने यह कहा कि ये छत्तीस जातियाँ राजा नहीं हैं और ये राजा का नगर नहीं है। तू इनको राजा की झूठी प्रतीति कर सेवा करता है। तू इनको झूठ ही राजा देखता-जानता हैं; परन्तु ये राजा नहीं है। ये तो नीच जाति हैं तथा इनको राजा मानकर तुम बहुत नीच हो गये हो तथा इनकी सेवा से तू सदा दरिद्री, दुखी, भिखारी रहेगा और अनादि से भिखारी रहा है; अतः तू अपने को देख, उस राजा की सेवा से राजा ही हो जायेगा। धनी, अयाचक, सुखी, निडर, उच्च शोभा आदि बहुत प्रभुता पुरुष की होती है। इन जातियों को तू राजा मानता है, तुझे अज्ञान से यह भ्रम है। हम भी तेरी ही भाँति भ्रम में पड़ गये थे। फिर किसी समय जब प्रत्यक्ष राजा देखा, तब हमारा यह भ्रम नष्ट हो गया। ऐसी प्रभु होने की बात सुनते ही उस पुरुष को राजा के देखने-जानने-सेवन की रुचि हुई। तब उस पुरुष ने उस ज्ञाता पुरुष को पूछा –

हे ज्ञाता पुरुष। वह राजा कहाँ है ? तथा किसप्रकार पहचान करें? तथा किसप्रकार उसकी सेवा करें ? तथा वह मुझे भी प्रभु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कैसे करेगा ? मुझको यह बात बताओ; क्योंकि तुमने भी इस अवस्था को बिताया है; अतः तुम यह मूल बात–यह भेद बताओ। तब उस ज्ञातापुरुष ने कहा –

मैं तो यह बात की बात कहूँगा; परन्तु तू इसी भाँति उद्यमरूप होना। तू उद्यमरूप होगा; क्योंकि तेरी तीव्र रुचि दिखाई देती है। तू वह उपाय सुन –

मित्र! अब तू पहले यहाँ से उद्यमवंत हो, धीरजवंत हो। पश्चात् इतनी बात मानकर इस देश को तू जान। इस देश में पाँच नगर हैं – धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल, जीव – ये पाँचों के नाम हैं। पहले उन चार नगरों का और उन नगरों के लोकाचारों का तू तमाशा भले ही देखना, उनकी रीति याद रखना; परन्तु वहाँ बैठे न रहना; क्योंकि तुझे राजा के पास जाने का काम है, इनका कुछ काम नहीं। ये नगर तुझे प्रभु नहीं कर सकेंगे। फिर वहाँ से आगे तू उस जीव नगर को जाना। जब वह नगर तेरी दृष्टि में आवेगा, तब पहले ईंट, मिट्टी, पत्थर, चूने का बना कोट आयेगा। उसको तू भलीभाँति देखकर फिर उसे छोड़कर आगे जाना। स्वयं आगे आठ–सात आदि अन्य लोक जातियों की एक स्थान पर बस्ती आयेगी। उस बस्ती को भले प्रकार देखना। फिर उन जातियों की भिन्न–भिन्न रीति का तमाशा देखना। फिर उसको छोड़कर आगे चलना, वहाँ पहले जैसी आठ–सात आदि नाम की अन्य जातियों की बस्ती छोड़ आया था, वैसी जाति, कुल, नामरूप रीतिधारी लोगों की एक स्थान पर बहुत बड़ी सभा आयेगी, वहाँ उन लोगों की बहुत भीड़ है तथा उस सभा के सर्व राजा द्वारा राजा ही कहलाये हैं और वहाँ सब राजा जैसी दीप्ति

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लिये हुए हैं। तू वहाँ सावधान और जागृत रहना। उन जातियों को भले प्रकार पहचान लेना, उनके धक्के सहना, उनकी क्रूर दीप्ति देख मत डरना, उनसे निःशंक रहना और मन में राजा देखने की रुचि रखना; परन्तु उनको राजा राजा कहने से तू इनके राजा होने के भ्रम में मत पड़ना, राजा मानकर इनकी सेवा में न लग जाना; परन्तु इनको भले प्रकार पहचानना, देखना। तू फिर इनको देखता और छोड़ता, देखता और छोड़ता आगे को चले जाना। जहाँ सभा के ये लोग पूर्ण हुए, इन सबको तू पीछे छोड़ गया, तब इनका तो भय नष्ट हुआ। आगे जहाँ सिंहासन, छत्र, चामर, मुकुट लक्षण आवेंगे, उन लक्षणों को तू भले प्रकार देखना-जानना और याद रखना। इसप्रकार इनको जानकर फिर उन मुकुटादि लक्षणों से संयुक्त परमदीप्ति, सुन्दर सौम्यादि मूर्ति जो पुरुष बैठा है, तू उसे ही राजा देखना, जानना। फिर तभी उसी राजा के लक्षण, सूरत और मूर्ति की स्मृति हृदय में रख लेना क्योंकि उस स्मृति-धारणा से अन्य पुरुष को भी देखकर उसके प्रति राजा की शंका कभी भी उत्पन्न नहीं होगी। इसप्रकार तू जब राजा पुरुष को देखेगा, तब देखते ही तुझे अपूर्व परमानन्द आयेगा और किसी अपूर्व पुरुष को तू देखेगा और उस राजा पुरुष के देखते ही तेरे मन में कोई उमंग उठेगी, तू देखते ही उसमें मग्न हो जायेगा।

तू ही वहाँ की रीति देखेगा, मेरे कहने से क्या है ? और उस राजा की सेवा इतनी ही है कि उसके सन्मुख मग्न रहना, इधर-उधर न होना (उपयोग को सुनिश्चल रखना) फिर वहाँ से तू कुछ काल पश्चात् हट जायेगा, तब फिर वैसा ही होना। फिर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कुछ काल पश्चात् वहाँ से तू छूट जायेगा और फिर उन्हीं पुराने लोगों के बीच आवेगा, वहाँ फिर तू उन्हीं लोगों की सेवा करेगा, उस सेवा से सुखी-दुःखी भी होगा; परन्तु उन लोगों को तू अब राजा के रूप में न तो देखेगा, न जानेगा। अब उनको उस राजा की प्रजा ही जानेगा और देखेगा; क्योंकि यद्यपि उस काल प्रत्यक्ष राजा को देखता जानता नहीं; परन्तु तूने राजा के लक्षण द्वारा राजा की सूरत ठीक याद कर ली है, राजा की सूरत याद रहती है; अतः अब उन लोगों को राजा नहीं देखता है, लोगों को लोगरूप ही देखता है, राजा का भ्रम उत्पन्न नहीं होता।

तथा राजा की सेवा का जो सुख लिया, वैसा सुख अब इन लोगों की सेवा में नहीं देखता है तथा उनकी सेवा करनी बहुत बुरी लगती है; अतः उसे आगे भी बुरी देखा-जाना करेगा। मन में ऐसा चिंतन करेगा कि इस सेवा संबंध से मेरे कब विपत्ति नहीं रही ? अर्थात् उनसे तो आज तक मुझे आपत्ति ही रही है तथा तब से तू उन लोगों को राजा संबंध से देखने-जानने से रुक गया; परन्तु उनकी कोई सेवा करनी रह गई है, इसप्रकार तू उन लोगों में विचार करना; परन्तु मन में राजा ही की सेवा की रुचि रहेगी तथा फिर उनकी सेवा छोड़कर अब शीघ्रता से उसी राजा की सेवा करने लग जाएगा। फिर राजा की सेवा छूट जाएगी, फिर इन लोगों की सेवा करने लग जाएगा तथा फिर यह सेवा छोड़ेगा, राजा की सेवा करेगा, इसीप्रकार होते-होते कुछ काल पश्चात् उसी राजा की सेवा में रह जायेगा। सर्व तात्पर्य यह है कि तब तू ही राजा होकर रहेगा। कुछ काल में उस राजा की सेवा से तुझे ऐसी राजा की प्रभुता होगी। तब उस पुरुष ने यह कथा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुनकर और उसीप्रकार की रीति करने से वह स्वयं राजा भी बन गया। इति दृष्टान्तः। दार्ष्टान्त इसप्रकार है।

इस जीव के परिणाम हैं, वे परिणाम अन्य परभावों का अवलंबन, सेवा करते हैं। तब उन परभावों का सेवन करते परिणाम उन परभावों को निजस्वभावरूप देखते हैं, जानते हैं, सेवा करते हैं तथा उन पर को निजस्वरूप रूप प्रतीति करते हैं। इसी-इसीप्रकार अनादि से करते हुए इस जीव के परिणामों की अवस्था बहुत काल तक व्यतीत हुई। फिर काल प्राप्त कर भव्यता परिपाक हुई, तब आप ही अथवा अन्य ज्ञात गुरु के उपदेश का कारण प्राप्त किया, उन गुरु ने उपदेश दिया -

हे भव्य परिणामो! तुम पर-हीन की सेवा करते हो और हे परिणामो! पर की सेवा करते हुए इन नीच पर को तुम उच्च स्व मानकर देखते हो; जानते हो और स्वरूप की भाँति याद ठीक रखते हो; परन्तु हे भव्य परिणामो! यह पर नीच है, स्व-उच्चत्व नहीं है तथा यह तुम्हारा वस्तु आधार नहीं है तथा इन नीचों के सेवन से तुम भी नीच जैसे पर ही हो रहे हो तथा इन पर नीचों की सेवा करते-करते दुःख, उपाधि, दारिद्र्य सदा पाते रहे हो। ये तुमको रंचमात्र भी कुछ दे सकते नहीं हैं तथा तुम झूठे ही 'ये ही हमको देते हैं' ऐसे मान रहे हो। ये तो पर और नीच हैं; परन्तु तुम इनको स्व-उच्चत्व मानकर बहुत नीच हो गये हो।

हे भव्य परिणामो! जो कोई स्व-उच्चत्व है, उसको तुमने न कभी देखा है, न जाना है और न सेवन किया है। अतः तुम उसको याद कैसे रखो ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथा अब उस स्वभाव को देखो, जानो और सेवा करो। तब तुमको आप ही याद रहेगा, तो तुम सुखी हो जाओगे, अयाचीक (बिना माँगे) लक्षपति हो जाओगे और अपनी लक्ष्मी से प्रभु हो जाओगे। इसप्रकार उन भव्य परिणामों ने सुनकर और उन्हें उस निजस्वभाव को देखने, जानने, सेवन करने की अपूर्व महारुचि उत्पन्न हुई तथा तब ही उन परिणामों ने उसको पूछा – उस निजस्वभाव को किसप्रकार प्राप्त करें, कौन-सा स्थान है ? वह सब रीति कहो। तब उस ज्ञाता गुरु ने यथार्थ मार्ग और स्थान आदि पहचानने की यथार्थ जैसी की तैसी रीति का कथन किया। तब वह रीति याद रखकर वे परिणाम (अपने) स्वभाव को देखने, जानने, सेवन करने को उद्यमपूर्वक चलते हैं। वही कहते हैं –

पहले तो इन परिणामों ने छह द्रव्यों की संख्या देखी। पश्चात् अवगाह कारण एक आकाशद्रव्य को गुण-पर्यायादि लक्षणों द्वारा भिन्न देखा; परन्तु उसमें स्वभाव राजा का कोई लक्षण नहीं देखा। अतः उस आकाशद्रव्य को छोड़ आगे धर्मद्रव्य, गतिकारणरूप गुण-पर्यायादि लक्षणों द्वारा भिन्न देखा; परन्तु उसमें भी स्वभावराजा का कोई लक्षण नहीं देखा। अतः उस धर्मद्रव्य को भी छोड़कर आगे अधर्मद्रव्य स्थितिकारक गुणपर्यायादि लक्षणों द्वारा भिन्न देखा; परन्तु उसमें भी स्वभावराजा का कोई लक्षण नहीं देखा। अतः उस अधर्मनगर को भी छोड़कर और आगे कालद्रव्य वर्तनाकारण गुणपर्यायादि लक्षणों द्वारा भिन्न देखा; परन्तु उसमें भी स्वभावराजा का कोई लक्षण नहीं देखा। अतः उस कालद्रव्य को भी छोड़कर आगे पुद्गलद्रव्य वर्णादि गुणपर्याय लक्षणों द्वारा भिन्न

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देखा; परन्तु उसमें भी स्वभावराजा का कोई लक्षण नहीं देखा; अतः उस पुद्गलद्रव्य को भी छोड़ दिया।

इसप्रकार उन परिणामों ने ये पाँच द्रव्य तो देखे; परन्तु स्वभावराजा को नाममात्र भी नहीं देखा; अतः इनको छोड़ दिया। आगे ये जीव संज्ञक द्रव्यनगर के समीप आ पहुँचे। वहाँ इन परिणामों ने कोटरूप नोकर्मस्कंध देखा, वह सर्व निःसंदेह पुद्गलद्रव्य का बना हुआ देखा। उसमें तो स्वभाव का कोई भी लक्षण नहीं है; अतः इस नोकर्म को छोड़कर उसके भीतर परिणाम आये। वहाँ आठ कर्म व नवतत्त्व देखे। कार्माण स्कंध की मण्डली बस्ती है। उस बस्ती में देखा कि केवल पुद्गलद्रव्य की सर्वजाति निवास करती है और उन्हीं का परस्पर लेना-देना, संबंध, सगाई, लड़ाई, प्रीति (आदिरूप) क्रिया होती है। इसप्रकार उस बस्ती में भी निःसंदेह स्वभाव का कोई अंग नहीं देखा। अतः उस कर्मादि पुद्गलजाति बस्ती को छोड़कर ये परिणाम आगे गये। वहाँ देखा कि जैसे पीछे कर्मादि पुद्गलजातियों के नाम थे, उन्हीं-उन्हीं जातियों के नामधारक चेतनपरिणाम-भावों की बस्ती है; परन्तु वे भाव (अशुद्धिरूप भावकर्म) जाति सर्व चेतन परिणामों की है; अतः वे सर्व चेतन ही चेतन नामधारक हो रहे हैं, सर्व उस चेतन जैसी भाषा को लिए हुए हैं – ऐसी जीव परिणाम भावों की जाति देखी। जो सावधान होकर देखें तो इन भावों में (तो) स्वभाव नहीं है, वह तो पर के अनुरूपभाव हैं। अतः इन परिणामों ने परभावों को भी अपनी शक्ति द्वारा पृथक् किये। उनको पृथक् करते ही उन परिणामों ने ज्ञाता-दृष्टादि लक्षणमय चेतनस्वभाव को प्रत्यक्ष साक्षात् देखा-जाना। उस स्वभाव के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सन्मुख स्थिरीभूत हुए, वहाँ विश्राम लिया। उन परिणामों को विश्राम लेने पर अपूर्व सुख उत्पन्न हुआ। स्वभाव को प्राप्त हुए वे परिणाम आकुलता से शांत हुए; चैनरूप (निराकुल) हुए, बहुत अपूर्व शोभावंत हुए और प्रभुतारूप को उद्यत हुए।

सर्व तात्पर्य यह है कि उन परिणामों की कथा वचन द्वारा कहाँ तक कहें ? इसप्रकार ये परिणामस्वभाव को प्राप्त हुए, कुछ काल तक रहे। फिर उस विश्रामरूप स्वभाव की सेवा से परिणाम छूट गये, फिर उन्हीं परद्रव्यलोक में आये। उनमें आये परिणाम उन परद्रव्यलोक का अवलम्बन सेवा तो करते हैं और उस सेवा से सुखी-दुःखी भी होते हैं; परन्तु वे परिणाम इसप्रकार जानते-देखते हैं कि, हम नीच परद्रव्य ज्ञेय का अवलम्बन करते हैं, ये हमारी सेवा के योग्य नहीं हैं, हमको उस एक चेतनभाव की सेवा शोभा देती है। ये सर्व परद्रव्य एक चेतनस्वभाव राजा की ज्ञेय-दृश्य प्रजा है। अतः ये परिणाम अब इन परद्रव्य-ज्ञेय प्रजा को ज्ञाता-दृष्टा-लक्षणमय चेतनस्वभावराजारूप नहीं देखते हैं, नहीं जानते हैं। इन परद्रव्यों को अब निःसंदेह उस चेतनराजा की केवल ज्ञेयप्रजारूप जानते हैं।

तथा अब ये परिणाम इस परद्रव्य का ही अवलंबन करते हैं; परन्तु इन परिणामों ने उस चेतनस्वभाव की ज्ञाता-दृष्टालक्षणमय मूर्ति की प्रत्यक्ष शक्तिरूप से आस्तिक्यता, प्रत्यक्ष शक्तिरूप से ठीकता अथवा शक्तिरूप से याद कर रखी है। यद्यपि ये परिणाम इस वर्तमान काल में चेतनस्वभाव को प्रत्यक्ष अनुभवरूप देखते, जानते और सेवा नहीं करते, ये परिणामरूप इस काल में उन परद्रव्यरूप ज्ञेयप्रजा को देखते, जानते और सेवा करते हैं; परन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उन परिणामों को सदा उस चेतनस्वभाव की ज्ञाता-दृष्टामय मूर्ति शक्तिरूप से साक्षात् तद्रूप याद रहती है।

जैसे किसी पुरुष ने कोई ग्रन्थ याद कर रखा है और अब वर्तमानकाल में इस ग्रन्थपाठ को देखता, जानता, रटता और पढ़ता नहीं है या तो सोता है या खेलता है या प्रमादी हुआ है या अन्य ग्रन्थ को रटता है, पढ़ता है या खान-पान, गमन, हंसना, स्नान, दान आदि क्रिया करता है। कोई जानेगा कि इस पुरुष ने बहुत ग्रंथ याद किये हैं, वह ग्रन्थ इस काल में इस पुरुष के ज्ञान में नहीं है, इस पुरुष से सर्वथा नास्ति हो गये हैं। हे भाई! इसप्रकार तो नहीं है। यह पुरुष अन्य दान आदि क्रिया को करता, प्रवर्तता और अभ्यास करता है; परन्तु वह ग्रन्थ की धारणा शक्तिरूप से ठीक प्रकार से विद्यमान है और उसके जानने में है। वह ग्रन्थ की धारणा वह पुरुष के कभी भी नास्ति नहीं होती। फिर जब उस ग्रन्थ को पढ़ता है, तब उस ग्रन्थ की धारणाशक्ति से भले प्रकार पढ़ता है, उस पढ़ने का सुख लेता है और उस ग्रन्थ की यादशक्ति इसप्रकार है कि अन्य ग्रन्थ के पाठ पढ़ने में नहीं मिला देता है। यह उस ग्रन्थ की यादशक्ति का गुण है।

इसप्रकार इन परिणामों से चेतनस्वभावराजा की ज्ञाता-दृष्टादि लक्षणमय मूर्ति के ठीक यादरूप परिणाम प्रवर्तते हैं; अतः उन परिणामों को चेतनस्वभाव याद है तथा ये परिणाम उन परद्रव्यरूप ज्ञेयों को देखते-जानते हुए भी उस चेतनस्वभाव ज्ञाता-दृष्टामय सूरत को नहीं मिला देते, स्वभाव को भिन्न रखते हैं। यह उस स्वभाव की ठीक यादरूप परिणाम के प्रवर्तन का गुण है। ये परिणाम अन्य परद्रव्यभावों का अवलंबन (सेवा) करनी छोड़;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

फिर कुल काल पश्चात् उस चेतनस्वभाव की स्थिरता, विश्राम, सेवारूप सन्मुख होते हैं। उस सेवा से वही सुख–शांति, अनाकुलता आदि रीति होती है। फिर कुछ काल पश्चात् उस चेतनस्वभाव की सेवा छूट जाती है, तब वे परिणाम फिर उन ज्ञेयों की सेवा करते हैं। इसी–इसीप्रकार कभी स्वभाव की सेवा करते, कभी परभावों की सेवा करते बहुत काल व्यतीत हुआ।

तब कुछ काल पश्चात् ये परिणाम जो उस चेतनस्वभाव के विश्राम सेवा में लगे थे, वे तो लगे ही रहे; परन्तु जो अन्य परिणाम अबुद्धि कर्मरूप भावमय परिणाम थे, वे परिणाम भी आगामी समय में अबुद्धि कर्मरूप से दूर हो–होकर उस स्वभावरूप में विश्राम सेवा में लगने लगे। इसीप्रकार होते–होते जब इस जीवद्रव्य के सब चारित्रपरिणाम स्वभावरूप विश्राम के स्थिरतारूप हुए, ज्ञान–दर्शनादि सर्व परिणाम एक केवल निजस्वरूप हुए, यहाँ तात्पर्य यह है कि यह सर्व परिणाम सर्वथा स्वभावरूप, कूटस्थ सिद्ध हो गये। तभी इस स्वभावराजा की प्रत्यक्ष जानने–देखने की दोनों शक्तियाँ सर्व ज्ञेय लोकालोक प्रजा पर प्रवृत्त गईं। अनंतबल–वीर्य, अनंतपरमसुख समूहवंत हुए, परमप्रभु हुए। उसकी अवस्था कथनातीत है; अतः इतना जानना कि ये परिणाम तब परिणामस्वरूप ऋद्धि, प्रभु, नित्यपद को प्राप्त हुए।

हे संत! इस कथन में एक तो बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा इन परिणामों की अवस्था जाननी और दूसरे अंतरात्मा की अवस्था में ज्ञान–दर्शन–सम्यक्त्वाचरण, चारित्राचरण की रीति कही है। अपने परिणाम से तुलना करके देखने के लिए यह उपदेश दिया है।

॥इति दृष्टान्तपूर्वक स्वरूपव्याख्यान॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(अथ छद्मस्थिनां परमात्मप्राप्ते (परमात्मप्राप्तेः) सकला रीतिः एतावन् एकांतेन अस्ति)

अब छद्मस्थियों की परमात्मप्राप्ति की सकल रीति एकान्त से इतनी है –

(दान का लक्षण)

जीवद्रव्य निजस्वभावभावशक्तिरूपं, अव्यक्तत्वत् निज-स्वभावभावव्यक्तेन यदा स्वपरिणामेभ्यः ददाति तद्दानम् ॥१ ॥

अर्थ : – निजस्वभावशक्तिरूप ही जीवद्रव्य है। अव्यक्त जो निजस्वभावभाव उसके अभिव्यक्त हो जाने पर, जिस समय अपनेरूप परिणमन करता है, वही दान है।

(शील का लक्षण)

शीलो निजचेतनस्वभावः तस्य निजस्वभावस्य, अन्य परभाव रीतिनारीभ्यः यत् विरतिः, अतिष्ठानं, पालनं तदेव शीलपालनं ॥२ ॥

अर्थ : – अपने चेतनस्वभाव को शील कहते हैं। उस अपने स्वभाव की अन्य परभावरूप नारी से विरक्तता (त्याग) और अपने स्वभाव में स्थिर रहना ही शीलपालन कहलाता है।

(तप का लक्षण)

यत् देहपरिग्रहभोगपरिवारइष्टमित्रशत्रुपरज्ञेयस्य त्यजनं-ममतारूपं रहितत्वं, वा तृष्णा तस्याः तृष्णाया रहितं भावशोभनं तपनं तदेव तपः।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थ :– शरीर, परिग्रह, भोग, कुटुम्ब, इष्टमित्र, शत्रुरूप परज्ञेयों को छोड़ना अर्थात् उनमें ममतारहित परिणति होना तथा उनमें तृष्णारहित होना और अपने स्वभाव में शोभित–स्थिरता होना – ऐसी तपस्या ही तप है।

(भावना का लक्षण)

यत् निजस्वभावस्य अनुभावनं तदेव (सर्व) भावना ॥४॥

अर्थ :– अपने स्वभाव का बारम्बार चिन्तन करना ही भावना है।

(व्रत का लक्षण)

यत् इन्द्रियमनभोगादिभ्यः संवरणं परिणामानां तत् व्रतम् ॥५॥

अर्थ :– इन्द्रिय, मन और भोगादिकों की तरफ जाने से अपने परिणामों का रुकना व्रत है।

(दया का लक्षण)

यत् निजस्वस्वभावं विकारभावेन न घातयति न हिनस्ति निजस्वभावं पालयति तदेव (सैव) दया ॥६॥

अर्थ :– विकारमय परिणामों द्वारा अपने निजस्वभाव का घात नहीं करना तथा अपने स्वभाव का पालन करना ही दया है।

(यति और श्रावक का लक्षण)

सर्व इन्द्रियभोगेभ्यः देहादिपरिग्रहममत्वत्यजनं तत् (स) यतिः। किंचित् त्यजनं श्रावकः ॥७॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थ :– समस्त इन्द्रियों के भोगों से और शरीरादि परिग्रह से सर्वथा ममतारहित होना यति का लक्षण है। इनमें एकदेश ममत्व का त्याग होना श्रावक का लक्षण है।

(वैराग्य का लक्षण)

रागद्वेषखेदरहितं उदासीनभावं ज्ञानसहितं तत् वैराग्यम्।

अर्थ :– राग, द्वेष, खेदरहित, ज्ञानसहित उदासीनभाव होना वैराग्य है।

(धर्म का लक्षण)

निजवस्तुस्वभावो धर्मः तदेव (स एव) धर्मः ॥९॥

अर्थ :– वस्तु का निजस्वभाव ही धर्म है। अतः उस ही को धर्म कहते हैं।

(शुद्ध का लक्षण)

रागादिविकाररहितो शुद्धः ॥१०॥ इत्यादि निश्चयाः चेतनजा॥

अर्थ :– रागादि विकाररहित ही शुद्ध का लक्षण है। इत्यादि को चेतनजन्य निश्चय करना।

इति छद्मस्थ की परमात्मलाभ की सकल रीति इतनी।

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तानुमात्रो निरत्ययः।
अत्यंतसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः ॥२१॥

है स्वसंवेदन गम्य, देह प्रमाण, शाश्वत आत्मा।
अत्यंत सुखमय सर्वज्ञाता, एक निज परमात्मा ॥२१॥

- इष्टोपदेश, पृष्ठ-७३

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

अथ जीवभाववचनिका

(लब्धि और उपयोगरूप मति-श्रुतज्ञान को भावेन्द्रिय कहा है, जो क्षायोपशमिकज्ञान है।)

क्षयोपशम में पाँच इन्द्रियरूप पुद्गल के जो आकार बने हैं, उन आकार स्थानों में जीव के जो-जो क्षायोपशमिक चेतन परिणाम किस भाँति प्रवर्तित होता है कि जैसी-जैसी पुद्गल की इन्द्रियाँ नाम धारण करती हैं, तैसे ही जीव के जो-जो क्षायोपशमिक चेतनपरिणाम प्रवर्तते हैं, वे-वे इन्द्रियों का आश्रय कर उद्यत होकर प्रवर्तते हैं, वे वे चेतन के परिणाम भी वैसे-वैसे पुद्गल के एक-एक गुणस्कंधों को देखते-जानते हैं और उन मार्गों द्वारा वैसे ही सुख-दुःख का वेदन करते हैं; अतः उन चेतनपरिणामों को इन्द्रियसंज्ञा प्राप्त होती है।

सर्व तात्पर्य यह है कि पुद्गल इन्द्रियमार्ग के आश्रय से प्रवर्तते हुए परिणाम इन्द्रियसंज्ञा को प्राप्त होते हैं तथा इसीप्रकार परिणामों को मनसंज्ञा प्राप्त हुई जानना। इसप्रकार इन परिणामभावों को तो इन्द्रियसंज्ञा कही। अब किस किसको अतीन्द्रियसंज्ञा है ? वह कहते हैं -

जो जीव के परिणाम क्षयोपशमादि बिना एक आवरणसहित भावरूप प्रवर्तते हैं, उन परिणामों को अबुद्धि संज्ञा है। उन अबुद्धि संज्ञक परिणामों की अतीन्द्रिय संज्ञा भी कही जाती है तथा जब जिस काल में सम्यग्दृष्टि के सम्यक्मति-श्रुत परिणाम, इन्द्रिय-मनभाव से रहित हो स्वरूप-अनुभव रूप होते हैं, तबतक वे

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणाम भी अनुभव अतीन्द्रिय संज्ञा को प्राप्त होते हैं तथा जब केवलज्ञान-दर्शनादिरूप जीव होता है, तब से जीव के केवलरूप परिणाम भी अतीन्द्रिय कहे जाते हैं। इसीप्रकार अतीन्द्रियसंज्ञक परिणामों को यथास्थान जान लेना।

तथा जो किंचित्-किंचित् वस्तुओं के लक्षण साधन करें, वे ज्ञान-दर्शनभाव परोक्ष कहलाते हैं।

तथा प्रत्यक्ष के चार भेद हैं – जब यह संसारी जीव सुख-दुःख बुद्धिपूर्वक भोगता है, तब बुद्धिपूर्वक उपयोग उस भोग को प्रगट जानता-देखता है, उसको सुख-दुःख वेदन कहा जाता है तथा जब मति, श्रुतस्वरूप के अनुभवरूप होते हैं, तब उस समय "यह मैं चेतन व्याप्य-व्यापक वस्तु" इसप्रकार प्रत्यक्ष, प्रगट जानने-देखनेरूप मतिश्रुत उपयोग भाव है, वह अनुभव निःसंदेह प्रत्यक्ष है, स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है तथा केवलज्ञान, केवलदर्शनादि होने पर उस केवलज्ञान-दर्शन को सकलप्रत्यक्ष कहा जाता है तथा अवधि मनःपर्ययज्ञान किंचित्-किंचित् ज्ञेयों को प्रगट जानते-देखते हैं, उन्हें देशप्रत्यक्ष कहा जाता है। चारित्रप्रत्यक्ष यथास्थान जानना।

(अथ छद्मस्थिनां परमात्मप्राप्तेः सफला रीतिः एतावन् एकांतेन अस्ति)

हे छद्मस्थ! यहाँ एक तात्पर्य की बात सुनो – उस बात के करने पर बहुत लाभ अपने आप सिद्ध होता है। तेरे लिये कार्यकारी (सुधारनेवाली) बात इतनी ही है, अब वह क्या ?

प्रथम दृष्टांत – जैसे शीशा और उज्ज्वलता का एक तादात्म्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्याप्य-व्यापक है – एक व्याप्य-व्यापक ही है। वह शीशा निर्मल स्वच्छता का मात्र एक पिंड बना हुआ है। उस पिंड बनने में अन्य कुछ भी मिला हुआ नहीं है, एकमात्र स्वच्छता का पिंड शीशा बना है। वह तो तादात्म्य व्याप्य-व्यापक अंग है तथा वह उसकी पैनी-अत्यंत उज्ज्वल स्वच्छता प्रतिबिंबाकाररूप होती है वह व्याप्य-व्यापक अंग जानना; अतः शीशे को तादात्म्य व्याप्य-व्यापक अंग से देखने पर एक स्वच्छता का ही पिंड है, उसकी अपेक्षा से उसमें अन्य कुछ भी नहीं है और उस स्वच्छता का भाव जैसा है, वैसा है।

उसीप्रकार चेतनपरिणाम! तुम देखो, तादात्म्य व्याप्य-व्यापकरूप से तो शुद्ध एकमात्र चेतनावस्तु ही का पिंड बना हुआ है; उस पिंड बनने में तो अन्य शुद्ध-अशुद्ध, संसार-मुक्ति, भेद-अभेद, निश्चय-व्यवहार, नय-निक्षेपादि, ज्ञेयाकार प्रतिभासादि समस्त भावों का रंचमात्र कुछ भी भाव नहीं मिला है, अनादि से शुद्ध चेतनवस्तुपिंड बना है तथा उन चेतनपरिणामरूपों में तुम शुद्ध-अशुद्ध, संसारमुक्ति, भेद-अभेद, निश्चय-व्यवहारादि, ज्ञेयाकार प्रतिभासादिभाव सब ही के रूप होते (यदि तुम) हो, तो व्याप्य-व्यापकरूप हुए हो। यदि तुम इसीप्रकार तादात्म्य व्याप्य-व्यापकरूप होते तो –

हे छद्मस्थ परिणामो! जो व्याप्य-व्यापकभाव परिणाम में अभ्यासरूप प्रवर्तन करोगे तो यद्यपि तुम एक वस्तु, वस्तु का रूप हो, तथापि छद्मस्थ परिणामो! तुम विकल्पजाल में पड़ जाओगे, तब तुम उनमें क्लेश पाओगे। तुम्हारी शक्ति इतनी तो है नहीं कि उस विकल्पजाल को संपूर्ण प्रत्यक्ष साध सको; अतः

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इससे तुम्हारा परमात्मलाभ कार्य साधन नहीं होगा। तुमको अपना परमात्म कार्य साधने की इच्छा है; अतः तुम इस रूप इतना ही प्रवर्तना अनुभव करो, साधन करो कि इस अपने तादात्म्यरूप को प्रत्यक्ष देखो, जानो और स्थिर रहो। इतनी ही रीति तुम्हें परमात्मरूप होने को कार्यकारी है। अन्य कोई विकल्पजाल कार्यकारी नहीं है। छद्मस्थ परिणामो! यह निःशंक (निर्भय) होकर जानना; अतः तुम इसप्रकार से उद्यमवन्त रहना। परमात्मलाभ की सफल रीति तुम निःसंदेह यही जानना।

(इति छद्मस्थी की परमात्मलाभ की सफल रीति इतनी)

(इति जीवभाव वचनिका संपूर्णम्)

(सवैया इकतीसा)

प्रथम सुद्रिष्टिसौं सरीररूप कीजै भिन्न,
तामैं और सूच्छम सरीर भिन्न मानिये।
अष्टकर्म भावकी उपाधि सोऊ कीजै भिन्न,
ताहूमैं सुबुद्धिकौ विलास भिन्न जानिये॥
तामैं प्रभु चेतन विराजत अखंडरूप,
वहै श्रुतग्यानके प्रवांन उर आनिये।
वाहीकौ विचार करि वाहीमैं मगन हूजै,
वाकौ पद साधिबेकौं ऐसी विधि मानिये॥५५॥

(चौपाई)

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जानै।
रागादिक निजरूप न मानै।।
तातैं ग्यानवंत जगमांही।
करम बंधकौ करता नांही॥५६॥

- नाटक समयसार, पृष्ठ-२०८, २०९

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

अथ आत्मावलोकन-स्तोत्र

गुण-गुण की सुभाव विभावता, लखियो दृष्टि निहार।
पै आन आनमै न मेलियौं, होसी ज्ञान विथार॥१॥

अर्थ :– प्रत्येक गुण का स्वभाव और विभाव दृष्टि प्रसार कर देखना; परन्तु अन्य को अन्य में न मिलाना, तुम्हारा ज्ञान निर्मल विस्तृत होगा।

सब रहस्य या ग्रन्थ को, निरखो चित देय मित्त।
चरणस्यौं जिय मलिन होय, चरणस्यौं पवित्त॥२॥

अर्थ :– हे मित्र! इस ग्रन्थ का रहस्य चित्त लगाकर समझना। जीव आचरणचारित्र से ही मलिन होता है और आचरणचारित्र से ही पवित्र होता है।

चरन उलटैं प्रभु समल, सुलटै चरण सब निर्मल होति।
उलट चरण संसार है, सुलट परम की ज्योति॥३॥

अर्थ :– चारित्र उल्टा (मिथ्या) होने से प्रभु (जीव) मलिन होता है, चारित्र सुलटा-सम्यक् होने से सब निर्मल हो जाते हैं। मिथ्याचारित्र संसार है और सम्यक्चारित्र परमज्योति अर्थात् मोक्ष है।

वस्तुसिद्ध ज्यौं चरनसिद्ध है, चरनसिद्धि सो वस्तु की सिद्धि।
समल चरण तब रंकसा, चरनशुद्ध अनन्ती ऋद्धि॥४॥

अर्थ :– वस्तु की सिद्धि से चारित्र सिद्ध है, चारित्र की सिद्धि से वस्तु की सिद्धि है (वस्तु के आश्रय से ही चारित्रपरिणाम होता है और चारित्रपरिणाम बिना वस्तु का स्वाद नहीं आता), जब

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मलिन चारित्र है, तब रंकवत् है और चारित्र शुद्ध होने पर अनन्त ऋद्धिवाला है।

इन चरन पर के वसि कियौ, जिय को संसार।
भी निज घर तिष्ठ कर, करै जगतस्यौं पार॥५॥

अर्थ :– परवश आचरण से जीव को संसार होता है फिर निज घर में स्थित होकर जगत से पार होता है।

अथ अन्य

व्यापक कौ निश्चय कहौ, अव्यापक कौ व्यवहार।
व्याप अव्यापक के फेरस्यौं, भया एक, द्वय प्रकार॥१॥

अर्थ :– व्यापक को निश्चय कहते हैं और अव्यापक को व्यवहार कहते हैं। व्यापक–अव्यापक के भेद से एक के दो प्रकार हो जाते हैं।

स्वप्रकाश निश्चय कहा, पर प्रकाशक व्यवहार।
सो व्यापक–अव्यापक भावस्यौं, तातैं वानी अगम अपार॥२॥

अर्थ :– स्वप्रकाश को निश्चय कहते हैं और पर–प्रकाशक को व्यवहार कहते हैं, वह व्यापक, अव्यापकभाव के भेद से कहते हैं। अतः जिनवाणी अगम और अपार है।

क्षण में देखो अपनी व्यापकता, इस जिय थलस्यौं सदीव।
तातैं भिन्न हूँ लोकतैं, रहूँ सहज सुकीव॥३॥

अर्थ :– एक दृष्टि से देखने पर जीव निजस्थान से त्रिकाल व्यापक है। अतः मैं लोक से भले प्रकार भिन्न होकर सहजभाव रहूँ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

छद्मस्थ सम्यग्दृष्टि जीव का ज्ञान, दर्शनादि, इन्द्रियमन सहित और इन्द्रियमन अतीत का किंचित् विवरण –

(दोहा)

बुद्धि अबुद्धि करि दुधा, बढ़ै छदमस्ती धार।
इनकौ नास परमात्म हुवन, भवजलसमुद्र के पार ॥१॥

अर्थ :– छद्मस्थ जीव में बुद्धि–अबुद्धि दो प्रकार से परिणामों की धारा प्रवाहित होती है। भवजलसमुद्र के पार परमात्मा होने के लिये इनको नष्ट कर।

(सोरठा)

जे अबुद्धिरूप परिनाम, ते देखै जानै नहीं।
तिनकौं सर्व सावरन काम, कैसे देखै जानै बापु रे ॥२॥

अर्थ :– जो अबुद्धिरूप परिणाम हैं, वे देखते–जानते नहीं हैं। उनका सर्व कार्य आवरणसहित होने से स्वयं कैसे देख जान सकते हैं ?

पुनः

जु बुद्धरूपी धार, सो जथाजोग जानै देखै सदा।
ते क्षयोपशम आकार, तातैं देखै जानै आपही ॥३॥

अर्थ :– बुद्धिरूपी धारा सदा यथायोग्य जानती–देखती है। वह धारा क्षयोपशम आकाररूप होने से स्वयं ही देखती–जानती है।

पुनः

बुद्धि परनति षट्भेद, भए एक जीव परनाम के।
फरस, रस, घ्राणेव, श्रोत, चक्षु, मन छठमा ॥४॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थ :– एक जीव परिणाम की बुद्धि परिणति के छह भेद हैं। स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन।

(दोहा)

भिन्न-भिन्न ज्ञेय हि ऊपर, भए भिन्न थान के ईश।
तातैं इनको इन्द्र पद, धरयौ वीर जगदीस॥५॥

अर्थ :– (उपयोग के पाँच इन्द्रिय भेद) भिन्न-भिन्न ज्ञेयों पर भिन्न-भिन्न स्थान (स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द) के ईश हुए (जानते हैं, अतः ईश कहलाते हैं), अतएव तीन लोक के ईश वीरजिनेन्द्र ने इनको इन्द्रपद नाम दिया।

(दोहा)

ज्ञेय हि लक्षनभेदकौ, मानइ चिंतइ जो ज्ञान।
ताकौं मनचित्तसंज्ञा धरी, लखियो चतुर सुजान॥६॥

अर्थ :– जो ज्ञान, लक्षणभेदरूप से ज्ञेयों का मनन, चिंतन करता है, उसको मन अथवा चित्त संज्ञा दी गई है। हे चतुर ज्ञानी पुरुषो देखो।

पुनः

ज्ञान दंसन धारा, मन इन्द्री पद इम होत।
भी इन नाम उपचार से, कहे देह अंग के गोत॥७॥

अर्थ :– ज्ञानदर्शनधारा को इसप्रकार मनइन्द्रियपद प्राप्त हुआ। फिर देह के अंगों को ये ही नाम उपचार से कहे गये।

पुनः

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह बुद्धि मिथ्याती जीव के, होई क्षयोपशमरूप।
पै स्वपर भेद लखै नहीं, तातैं निज रवि देख न धूप॥८॥

अर्थ :– मिथ्यात्वी जीव के यह बुद्धि क्षयोपशमरूप होती है; परन्तु स्व पर का भेद नहीं देखती है; अतः निज ज्ञानसूर्य और उसके प्रकाश को नहीं देख पाता।

पुनः

सम्यग्दृष्टि जीव के, बुध धार सम्यक् सदीव।
स्वपर जानै भेदस्यौं रहे, भिन्न ज्ञायक सुकीव॥९॥

अर्थ :– सम्यग्दृष्टि जीव की बुद्धिधारा सदा ही सम्यक् होती है। स्व-पर भेद जानने से भले प्रकार भिन्न ज्ञायक ही रहता है।

(चौपाई)

मन इन्द्री तब ही लौं भाव, भिन्न-भिन्न साधै ज्ञेय कौं ठाव।
सब मिलि साधै जब इकरूप, तब मन इंद्री का नहीं रूप॥१०॥

अर्थ :– जबतक (उपयोग के भेद) भिन्न-भिन्न ज्ञेय स्थान का साधन करते हैं, तबतक ही मन-इन्द्रियभाव है, जब सर्व उपयोग एक स्वरूप का साधन करता है; तब उसका मन-इन्द्रिय रूप नहीं रहता।

इक पद साधनकौं किय मेल, तब मन-इंद्री का नहीं खेल॥
तातैं मन-इन्द्री भेद पद नाम, है अतीन्द्री एकमेक परनाम॥११॥

अर्थ :– एक (स्व) पद साधने को जब उपयोग के भेद मिल गये (उपयोग सर्व ओर से हटकर एक रूप अभेद हुआ), तब मन-इन्द्रिय का खेल-नाटक नष्ट हो गया। अतः मन-इन्द्रिय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपयोग के भेद के नाम हैं। अतीन्द्रिय परिणाम तो एक अभेद परिणाम हैं।

स्व अनुभव छन विषैं, मिलै सब बुद्धि परनाम।
तातैं स्व अनुभव अतींद्री, भयौ छद्मस्ती को नाम ॥१२॥

अर्थ :– स्व अनुभव क्षण में सब बुद्धि परिणाम मिलकर प्रवर्तते हैं अतः स्व अनुभव का नाम छद्मस्थ के अतीन्द्रिय कहलाता है।

जा विधितैं मन इन्द्रिय होत, ता विधिस्यौं भए अभाव।
तब तिन ही परनाम कौ, मन इन्द्री पद कहा बताव ॥१३॥

अर्थ :– मन और इन्द्रिय इस विधि से (उपयोग भेद से)होते हैं और उस विधि से (अभेद उपयोग से) भेद अभाव हुए, तब उन परिणामों का मन–इन्द्रिय पद कैसा ?

सम्यक् बुद्धि परवाह, क्षणरूप मझ क्षन रूप तट।
पै रूप छांडि न जाह, यहु सम्यक्त्वता की माहातमा ॥१४॥

अर्थ :– सम्यक्ज्ञान प्रवाह का क्षणरूप मध्य (निर्विकल्प) होता है और क्षणरूप तट (सविकल्प) होता है; परन्तु रूप छोड़कर नहीं जाता, यह सम्यक्त्व का माहात्म्य है।

अनुभव दोहा –

हूँ चेतन हूँ ज्ञान, हूँ दर्शन सुख भोगता।
हूँ अरहन्त सिद्ध महान, हूँ ही हूँ को पोषता ॥१॥

अर्थ :– मैं चेतन हूँ, मैं ज्ञान हूँ, मैं दर्शन हूँ, मैं सुख का भोक्ता हूँ, मैं अर्हन्त सिद्ध महान हूँ, मैं मैं ही का पोषक हूँ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे फटिक के बिंब में, रह्यौ समाय जोति को खंध।
पृथक् मूर्ति प्रकाश की, बंधी प्रत्यक्ष फटिक के मंघ ॥२॥

अर्थ :– जैसे स्फटिक के बिंब में दीपज्योति का स्कंध समा रहा है; परन्तु स्फटिक में प्रकाश की प्रत्यक्ष भिन्न मूर्ति है।

तैसे यह कर्म स्कंध में समाय रहा है चेतन दर्व।
पै पृथक् मूर्ति चेतनमई, बंधी त्रिकालगत सर्व ॥३॥

अर्थ :– जैसे स्फटिक के बिंब में दीपज्योति का स्कंध समा रहा है परन्तु स्फटिक में प्रकाश की प्रत्यक्ष भिन्न मूर्ति पृथक् रहती है।

नख सिख तक इस देह में निवसत जु मैं चेतनरूप।
जिस क्षण मैं मैं ही कौं लखूँ, तत्क्षण मैं हौं चेतनभूप ॥४॥

अर्थ :– नख से लेकर शिखा तक इस शरीर में मैं चेतन-रूप पुरुष निवास करता हूँ। जिस क्षण मैं मुझको ही देखता हूँ, उसी क्षण मैं चैतन्यराजा हूँ।

इस ही पुद्गल पिण्ड में, वहै जो देखनजाननधार।
यह मैं यहु मैं यहु जो कछु देखनजाननहार ॥५॥

अर्थ :– इस ही पुद्गल पिंड में यह जो देखने-जाननेवाला है, वह देखने-जाननेवाला जो कुछ है, वही मैं हूँ, वही मैं हूँ।

यह मैं, यह मैं, मैं यही, घट बीच देखतजानतभाव।
सही मैं सही मैं मैं सही, यह देखनजाननठाव ॥६॥

अर्थ :– अंतर में जो देखने-जाननेवाला भाव है, यही मैं हूँ, यही मैं हूँ, मैं ही हूँ। यह दर्शक-ज्ञायक स्थान (पिंड) निश्चित ही मैं हूँ, निश्चित ही मैं हूँ, निश्चित ही मैं हूँ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अथ चारित्र –

मैं तिष्ठ रह्यौ मैं ही विषै, जब इन परसे कैसा मेल।
राजा उठि अंदर गयो, तब इस सभा से कैसा खेल ॥७॥

अर्थ :– मैं मुझमें ही ठहरा हूँ, तब इस पर से मेरा संबंध कैसा ? जब राजा उठकर अंदर गया, तब सभा का नाटक कैसा ?

प्रभुता निजघर रहे, दुःख नीचता पर के गेह।
यह प्रत्यक्ष रीति विचारिकै, रहिये निज चेतन गेह ॥८॥

अर्थ :– अपने घर में प्रभुता रहती है और पर के घर दुःख और नीचता रहती है। यह प्रत्यक्ष रीति विचार कर निजचेतन गृह में रहना चाहिये।

पर अवलंबन दुःख है, स्व-अवलंबन सुखरूप।
यह प्रगट लखात पहचान के, अवलंबियो सुख कूप ॥९॥

अर्थ :– पर अवलंबन दुःखरूप है और स्व-अवलंबन सुखरूप है। यह प्रगट देखकर और लक्षण से पहिचानकर सुख कूप (स्रोत) अपना अवलंबन करना चाहिये।

यावत तृष्णारूप है, तावत मिथ्या-भ्रम-जाल।
ऐसी रीति पिछानि कै, लहियै सम्यक् विरति चाल ॥१०॥

अर्थ :– जबतक तृष्णारूप है, तबतक मिथ्या भ्रमजाल है – ऐसी रीति पहचानकर सम्यक् विरति ग्रहण करना चाहिये।

पर के परिचय धूम है, निज परिचय सुख चैन।
यह परमारथ जिन कह्यौ, उस हित की करी जु सैन ॥११॥

अर्थ :– पर के परिचय से आकुलता है और निज के परिचय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से सुख–चैन (शान्ति) है। जिनेन्द्रदेव ने यह परमार्थ कह कर उस हित का संकेत दिया है।

इस धातुमयी पिंडमयी रहूँ मैं अमूरति चेतन बिम्ब।
ताके देखत सेवतैं रहे पंचपद प्रतिबिम्ब ॥१२॥

अर्थ :– इस धातुमयी पिंड में मैं अमूर्तिक चेतन बिम्ब रहता हूँ। उसके देखने और सेवन करने में पाँचों परमपद प्रतिबिंबित होते हैं।

तब लग पंचपद सेवना, जब लग निजपद की नहीं सेव।
भइ निजपद की सेवना, तब आपै आप पंच पद देव ॥१३॥

अर्थ :– तबतक पंचपरमेष्ठी की सेवा करता है, जबतक निजपद को सेवा नहीं है। निजपद की सेवा होते ही स्वयं पंचपरमेष्ठी देव है।

पंच पद विचारत ध्यावतैं, निजपद की शुद्धि होत।
निजपद शुद्धि होवतैं निजपद भवजलतारण पोत ॥१४॥

अर्थ :– पाँच पदों को विचारने और ध्यान करने पर निजपद की शुद्धि होती है। जिनपद की शुद्धि होने पर निजपद भवजल से पार होने के लिये जहाज है।

मैं ज्ञाता दृष्टा सदा, मैं पंचपद त्रिभुवन सार।
मैं ब्रम्हा ईश जगदीश पद, सो हूँ के परचैं मैं पार ॥१५॥

अर्थ :– मैं सदा ज्ञाता हूँ, दृष्टा मैं, तीनलोक में सार पंचपद (परमेष्ठी) हूँ, मैं ब्रम्हा, ईश्वर और जगदीशस्वरूप हूँ। सोहं का परिचय होते ही भवोदधि से पार होता है।

॥इति श्री आत्मावलोकन ग्रंथ संपूर्णम्॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुखनिधि का विलास नहीं करने देता...

अनादि से संसारी जीव को वर्तमान अवस्था में भूल हुई है। उसने चिदानन्दस्वभाव को चूककर क्षणिक की प्रतीति करके मिथ्यात्व की शराब पी है। स्वभाव और विभाव को भिन्न न करना वह अविवेक है। स्वभाव निरूपाधिमय स्थाई वस्तु है और राग-द्वेषादि विकार क्षणिक हैं - इन दोनों का भेद करना विवेक है। स्वभाव का संग नहीं किया, इसलिए अविवेक मल्ल ने उस दशा का नाश किया है - ऐसा कहा है। परिणाम में अविवेक है - ऐसा बताया है। शरीर, मन, वाणी पर हैं। त्रिकालीस्वभाव में संसारपर्याय का अभाव है - ऐसा भान नहीं होने से वर्तमान बुद्धि अर्थात् पर्यायबुद्धिरूपी अविवेक मल्ल ने जय स्थम्भ रोंपा है। निगोद से लेकर समस्त मिथ्यादृष्टि जीवों को अविवेक मल्ल ने जीत लिया है, इसलिए वह बलवान बना हुआ है। शरीर, मन, वाणी और पुण्य-पाप ज्ञान में ज्ञात हों - ऐसी वस्तुएँ पर हैं और स्वयं स्व है - ऐसा भेदज्ञान नहीं होने से अविवेक मल्ल बलशाली बनकर खड़ा है। जो निमित्त से भिन्न नहीं पड़ सकता वह राग से भिन्न कैसे पड़ सकता है? नहीं पड़ सकता। असंग स्वभाव एकरूप है। कितना ही संसार हुआ, तो भी स्वभाव में कुछ कमी नहीं आई। ऐसे स्वभाव को नहीं मानकर कृत्रिम लहरियों को माननेवाले के लिए वह अविवेक मल्ल बलशाली बनकर खड़ा है। कर्म तो जड़ है, अतः वे जीव को हैरान नहीं करते। कर्ममल्ल जीव को नहीं जीतते, कर्म और जीव के विवेक ज्ञान का अभाव वह अपने को सुखनिधि का विलास नहीं करने देता।

- अनुभवप्रकाश प्रवचन से साभार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्री परमात्मने नमः

श्रीदीपचन्दजी कासलीवाल-प्रणीत

चिद्विलास

सम्पादक

पण्डित राकेशकुमार जैन, नागपुर

शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, एम.ए.

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट

173/175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

धर्मात्मा विचार करता है...

धर्मात्मा निरन्तर स्वरूप का सेवन करता है। कमजोरी वश राग आता है, उसे वह जानता है, किन्तु रागादि का सेवन नहीं करता। तीर्थंकरों ने पूर्णदशा प्राप्त की, मुनिराज सेवन कर रहे हैं। भक्ति, पूजा, यात्रादि का शुभराग होता है, किन्तु वह व्यवहार जानने के लिए है, वह मूलस्वरूप नहीं है। धर्मात्मा को उससमय भी स्वरूप सेवन की दृष्टि है। स्वरूप को भूलनेवाले की भक्ति आदि व्यर्थ है। स्वरूप का भान हो तो राग को व्यवहार कहा जाता है। धर्मात्मा द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर, पर-पदार्थों को आत्मा से भिन्न जानकर विचारता है कि मेरा पद सर्वोत्कृष्ट है। उसको अवलोकन कर मेरा कार्य करना उचित है। चिदानन्द सूर्य कर्म के बादलों से ढँक गया है, तो भी स्वरूप सूर्य का प्रकाश बादलों से नष्ट नहीं हुआ है। यहाँ पर्याय में कमी है उसकी बात नहीं, स्वभाव की बात है। चैतन्य सूर्य का कर्मों से घात नहीं हुआ। निमित्तरूप से कर्मों का आवरण होने पर भी वे चिदानन्दस्वरूप को घात नहीं सकते। मेरे चैतन्यस्वभाव को जड़ कर दे - ऐसी सामर्थ्य किसी की नहीं है। कषायचक्र आत्मा को अचेतन नहीं कर सकता। मेरे चैतन्य सूर्य का घात कर्मरूपी बादल नहीं कर सकते। मेरी वस्तु ऐसी की ऐसी पड़ी है। इसतरह श्रद्धा-ज्ञान के विषय में धर्मात्मा विचार करता है।

- अनुभवप्रकाश प्रवचन से साभार

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ॐ

श्री परमात्मने नमः

पण्डित श्री दीपचन्दजी शाह कासलीवालकृत

चिद्विलास

मंगलाचरण

अविचल ज्ञान प्रकाशमय, गुण अनन्त के थान।
ध्यान धरत शिव पाइए, परम सिद्ध भगवान॥

इस मंगलाचरण का तात्पर्य यह हुआ कि जो अनन्त चित्‌शक्ति से मंडित हैं – ऐसे परमसिद्ध परमेश्वर को नमस्कार करके मैं यह चिद्विलास नामक ग्रन्थ लिख रहा हूँ।

१

द्रव्य

प्रथम ही वस्तु में द्रव्य, गुण और पर्याय का निर्णय किया जाता है; उसमें द्रव्य का स्वरूप '**द्रव्यं सत् लक्षणम्**' – ऐसा जिनागम में कहा गया है।

शंका :– हे प्रभो ! '**गुणसमुदायो द्रव्यम्**' – ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेव का वचन है, जिसके अनुसार एक सत्तामात्र में अनन्तगुणों की सिद्धि नहीं होती। '**गुणपर्ययवद् द्रव्यम्**' – ऐसा गुणसमुदाय के कहने से सिद्ध नहीं होता। '**द्रव्यत्वयोगाद् द्रव्यम्**' – यह भी द्रव्य का विशेषण करें, तब भी कहते हैं कि यदि द्रव्य स्वतःसिद्ध है तो विशेषण झूठे हुए; क्योंकि द्रव्य इनके आधीन नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधान :– हे शिष्य! वस्तु में मुख्य–गौण की विवक्षा करें, तब सत्ता की मुख्यता करके द्रव्य को सत्तालक्षण कहा जायेगा; क्योंकि सत्ता का लक्षण 'है' अर्थात् 'होना' है अतः 'है' लक्षण में गुणसमुदाय, गुण–पर्याय और द्रव्यत्व – ये सब अन्तर्गर्भित हो जाते हैं; अतः द्रव्य को सत्तालक्षण कहा जाता है। इसप्रकार कहे जाने में कोई दोष नहीं, विरोध भी नहीं।

'**गुणसमुदाय**' के कहने में अगुरुलघुत्वगुण आया और अगुरुलघुत्वगुण के कथन से षड्गुणी वृद्धि–हानि नामक पर्याय आई; अतः गुणसमुदाय से पर्याय की सिद्धि होती है। द्रव्यत्वगुण भी गुणों के अन्तर्गत आता है; अतः '**गुणसमुदायो द्रव्यम्**' यह लक्षण भी विवक्षा से प्रमाण है।

'**गुणपर्ययवद् द्रव्यम्**' – इस लक्षण में सत्ता, सर्व गुण और पर्यायें आ जाती हैं; अतः द्रव्य को गुणपर्यायवान् कहना भी विवक्षा से प्रमाण है।

'**द्रव्यत्वयोगाद् द्रव्यम्**' – यह लक्षण भी प्रमाण है, क्योंकि गुण–पर्यायों के द्रवित हुए बिना द्रव्य नहीं हो सकता और द्रवणा द्रव्यत्वगुण से है। द्रव्य द्रवित होने से गुण–पर्याय को व्याप्त करके प्रकट करता है; अतः गुण–पर्याय का प्रकट होना द्रव्यत्वगुण से है। इसप्रकार द्रव्यत्व की विवक्षा से "**द्रव्यत्वयोगाद् द्रव्यम्**" – यह लक्षण भी प्रमाण है।

'**स्वतःसिद्धं द्रव्यम्**' – यह लक्षण भी प्रमाण है, क्योंकि ये चारों द्रव्य के स्वतःस्वभाव हैं। द्रव्य अपने स्वभावरूप स्वतः परिणमन करता है; अतः उसे स्वतःसिद्ध कहा जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य गुण-पर्यायों को द्रवित करता है तथा गुण पर्याय को द्रवित करते हैं, तभी द्रव्य को 'द्रव्य' नाम मिलता है।

द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से द्रव्य विशेषण है, उसके अनेक भेद हैं – अभेद द्रव्यार्थिकनय द्रव्य को अपने स्वभाव से अभेदरूप दिखाता है। भेदकल्पना की अपेक्षा से अशुद्धद्रव्यार्थिकनय द्रव्य को भेदरूप दिखाता है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय द्रव्य को शुद्ध दिखाता है। अन्वय द्रव्यार्थिकनय द्रव्य को गुणादिस्वभावरूप प्रदर्शित करता है। सत्तासापेक्ष द्रव्य सत्तारूप कहलाता है। अनन्तज्ञानसापेक्ष द्रव्य ज्ञानरूप कहलाता है। दर्शनसापेक्ष द्रव्य दर्शनरूप कहलाता है। अनन्तगुणसापेक्ष द्रव्य अनन्तगुणरूप कहलाता है। इसीप्रकार द्रव्य के और भी अनेक विशेषण हैं, जिन्हें द्रव्य में नय और प्रमाण के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

शंका :– हे प्रभो! यदि गुण-पर्याय का पुञ्ज द्रव्य है तो गुण के लक्षण द्वारा गुण को जाना और पर्याय के लक्षण द्वारा पर्याय को जाना, फिर द्रव्य तो कोई वस्तु नहीं रही। इसप्रकार गुण और पर्याय ही कहे गये। जिसप्रकार आकाशकुसुम कथनमात्र है; उसीप्रकार द्रव्य का स्वरूप भी कथनमात्र हुआ। इस द्रव्य का स्वरूप तो गुण और पर्याय ही हैं और कुछ नहीं; अतः गुण और पर्याय ही हैं, द्रव्य नहीं।

समाधान :– जो स्वभाव है, वह स्वभाववान से उत्पन्न है। यदि स्वभाववान न हो तो स्वभाव भी नहीं हो सकता। जिसप्रकार अग्नि न हो तो उष्णस्वभाव भी नहीं हो सकता और यदि सुवर्ण न हो तो पीत, चिक्कण, भारी आदि स्वभाव भी नहीं हो सकते; अतः गुण और पर्याय द्रव्य के आश्रय से रहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तत्त्वार्थसूत्र में कहा है –

'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः' अर्थात् द्रव्य के आश्रय से गुण रहते हैं, लेकिन गुण के आश्रय से गुण नहीं रहते।

इसका दृष्टान्त दिया जाता है –

जैसे एक गोली बीस औषधियों से बनाई गई है, वे बीसों औषधियाँ गोली के आश्रय से रह रही हैं। बीसों औषधियों का एकरस गोली नाम से कहा जाता है। यद्यपि गोली में बीसों ही औषधियाँ अलग-अलग स्वाद को धारण करती हैं; तथापि यदि गोली के भाव (स्वरूप) को देखा जाए तो ज्ञात होगा कि उस गोली से किसी औषधि का रस अलग नहीं है। उन बीसों में से प्रत्येक रस गोली के भाव (स्वभाव) में स्थित है, उन बीसों औषधियों के रसों का जो एक पुञ्ज है, उसी का नाम गोली है।

ऐसा कथन करने से यद्यपि भेदविकल्प-सा आता है, परन्तु एक ही समय बीसों औषधियों के रसों का भाव (स्वभाव) ही एक गोली है; उसीप्रकार अलग-अलग प्रत्येक गुण अपने-अपने स्वभाव को लिए रहता है। किसी भी गुण का भाव किसी भी दूसरे गुण के भाव से नहीं मिलता। जैसे ज्ञान का भाव दर्शन से नहीं मिलता और दर्शन का भाव ज्ञान से नहीं मिलता; इसीप्रकार अनन्तगुण हैं, फिर भी कोई गुण किसी दूसरे गुण से नहीं मिलता। सभी गुणों का एकान्तभाव (एकरूपभाव, तादात्म्यभाव) चेतना का पुञ्ज द्रव्य है।

यदि गुणी के बिना गुण मात्र को माना जाए तो आकाश के भी फूल होने लगेंगे। गुणी के बिना गुण कैसे हो सकते हैं ? अर्थात् नहीं हो सकते।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान को एक गुण माना गया है, लेकिन यदि द्रव्य के बिना ज्ञान को ही वस्तु मान लिया जाए; तब तो ज्ञान वस्तु कहलाने लगेगा और इसप्रकार अनन्तगुण अनन्त वस्तुएँ कहलाने लगेंगी, जो सिद्धान्त के विपरीत होगा; क्योंकि ऐसा है नहीं। सभी गुणों की आधारभूत जो एक वस्तु है, उसी को द्रव्य कहते हैं।

शंका :– यह द्रव्य वस्तु है या वस्तु की अवस्था है ?

समाधान :– सामान्य और विशेष का जो एकरूपभाव (तादात्म्यभाव) है, वही वस्तु का स्वरूप है। द्रवीभूत गुण के कारण ही द्रव्य को 'द्रव्य' नाम मिलता है; क्योंकि वस्तु की अवस्था द्रव्यत्व के द्वारा द्रव्यरूप हुई है; अतः वह वस्तु ही है। विशेषण के कारण ही विशेष संज्ञा होती है। स्याद्वाद में विरोध नहीं होता। वस्तु की सिद्धि नयसापेक्ष है।

कहा भी है –

"मिथ्यासमूहो मिथ्या चेत् न मिथ्यैकान्तताऽस्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृतः॥[१]

[२]***सामान्यार्थ :–*** मिथ्यारूप एकान्तों का समूह मिथ्या है, वह मिथ्या-एकान्तता हमारे (स्याद्वादियों के) यहाँ नहीं है; क्योंकि निरपेक्षनय मिथ्या हैं, वे सम्यक् नहीं हैं; किन्तु जो सापेक्षनय हैं, वे ही सम्यक् हैं और वस्तु की सिद्धि के लिए अर्थक्रियाकारी हैं।"

अतः द्रव्य का यह कथन सिद्ध हुआ। इसके पश्चात् गुणाधिकार में गुण का कथन किया जाएगा। ●

१. श्रीसमन्तभद्राचार्य : देवागमस्तोत्र, कारिका १०८
२. यद्यपि यह सामान्यार्थ मूलग्रन्थ में नहीं है, तथापि कारिका का सामान्य ज्ञान कराने हेतु दिया गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

२

गुण

'द्रव्यं द्रव्यात् गुण्यन्ते, ते गुणा उच्यन्ते।' अर्थात् जो द्रव्य को दूसरे द्रव्यों से पृथक् बताते हैं, उन्हें गुण कहते हैं। गुणों के द्वारा द्रव्यों की पृथक्ता का ज्ञान होता है। जैसे चेतनागुण के द्वारा जीव जाने जाते हैं।

अस्तित्वगुण एक ऐसा गुण है, जो साधारण गुण होने से सबमें पाया जाता है। महासत्ता की विवक्षा से अवान्तर सत्ताएँ होती हैं; परन्तु वे सब अपने-अपने अस्तित्व सहित हैं।

इनमें एक स्वरूपसत्ता भी है, जिसके तीन प्रकार हैं - द्रव्यसत्ता, गुणसत्ता और पर्यायसत्ता।

इनमें से 'द्रव्य है' - यह द्रव्यसत्ता कहलाती है। द्रव्य का कथन पहले किया जा चुका है।

'गुण है' - यह गुणसत्ता कहलाती है। गुण अनन्त हैं और सामान्यविवक्षा से अनन्त ही प्रधान हैं। विशेष विवक्षा से जिस गुण को प्रधानता दी जाए, वह मुख्य है और शेष गौण हैं; अतः मुख्यता-गौणता भेद को विधि-निषेध भेद[१] समझना चाहिए।

सामान्य और विशेष की विवक्षा से सभी की सिद्धि होती है। नय-विवक्षा और प्रमाण-विवक्षा का नाम युक्ति है। युक्ति प्रधान

१. जिस धर्म की मुख्यता की जाय, उसकी विधि एवं जिन धर्मों की गौणता की जाय, उनका निषेध (गौणरूप से) समझना चाहिए।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है; क्योंकि युक्ति से वस्तु की सिद्धि होती है। यही बात नयचक्र में कही गई है –

'तच्चाणेसणकाले समयं बुज्झेहि जुत्तिमग्गेण।
णो आराहणसमये पच्चक्खो अणुहवो जह्मा ॥'[१]

सामान्यार्थ :– तत्त्व के अन्वेषण के काल में समय अर्थात् शुद्धात्मा को युक्तिमार्ग से अर्थात् नय-प्रमाण द्वारा प्रथम जानना चाहिए; किन्तु आराधना के समय में युक्ति की आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि वहाँ तो शुद्धात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव है।

अत: नय और प्रमाण का नाम युक्ति है – ऐसा समझना चाहिए।[२]

गुणसत्ता में अनन्तभेद हैं; अत: गुण के भी अनन्तभेद हैं। एक सूक्ष्मगुण की अनन्तपर्यायें होती हैं। ज्ञान सूक्ष्म है, दर्शन सूक्ष्म है और इसीप्रकार सभी गुणों को ऐसे ही सूक्ष्म जानना। सूक्ष्म की पर्यायें भी सूक्ष्म हैं। सूक्ष्मगुण की 'सूक्ष्म ज्ञानपर्याय' ज्ञायकतारूप अनन्तशक्तिमय नृत्य करती है। एक ज्ञान के नृत्य में अनन्तगुणों का घाट जानने में आया है; अत: वह ज्ञान में है। अनन्तगुणों के घाट में एक-एक अनन्तरूप होकर भी अपने-अपने लक्षणसहित है – यह कला है और प्रत्येक कला गुणरूप होने से अनन्तरूप को धारण करती है। प्रत्येक रूप जिन-जिन रूप में होता है, उनकी अनन्त सत्ताएँ हैं और प्रत्येक सत्ता अनन्तरस और एक-एक रस में अनन्त प्रभाव हैं।

इसप्रकार अनंतपर्यन्त ऐसे ही भेद समझना चाहिए।

---

१. द्रव्यस्वभावप्रकाशकनयचक्र, गाथा-२६८

२. प्रमाणनयात्मको युक्तिः – ऐसा शास्त्र का वचन है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक-एक गुण के साथ दूसरे गुणों को जोड़ने पर 'अनंत सप्तभङ्ग' सिद्ध होते हैं, इसका कथन करते हैं –

सत्तागुण ज्ञानगुणरूप है या नहीं ? यदि सत्तागुण को ज्ञानगुणरूप माना जाए तो "**द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः**" – इस सूत्र में जो एक गुण में दूसरे गुण के रहने का निषेध किया गया है, वह असत्य हो जाएगा और यदि सत्तागुण को ज्ञानगुणरूप न माना जाए तो वह जड़ हो जाए; अतः सप्तभङ्ग सिद्ध किये जाते हैं।

(१) केवल चैतन्य का अस्तित्व है; जब ऐसा कथन किया जाता है, तब सत्तागुण 'ज्ञानरूप' है।

(२) जब सत्ता को केवल सत्तालक्षण से सापेक्ष और अन्य गुण निरपेक्ष लिया जाय, तब सत्तागुण 'ज्ञानरूप नहीं है'।

(३) दोनों विवक्षाओं से कथन करने पर सत्तागुण 'ज्ञानरूप भी है और नहीं भी है'।

(४) सत्तागुण की अनन्तमहिमा वचन के अगोचर है; अतः 'अवक्तव्य' है।

(५) सत्तागुण को 'ज्ञानगुणरूप है' – ऐसा कहने पर 'ज्ञानरूप नहीं है' – ऐसे निषेध का अभाव होता है; अतः सत्ता 'ज्ञानरूप तो है, फिर भी अवक्तव्य है'।

(६) सत्तागुण को 'ज्ञानरूप नहीं है' – ऐसा कहने से 'ज्ञानरूप है' – ऐसे विधि का अभाव होता है; अतः सत्तागुण 'ज्ञानरूप नहीं है, फिर भी अवक्तव्य है'।

(७) सत्तागुण 'ज्ञानगुण भी है और नहीं भी है' – ये दोनों विवक्षाएँ एक ही साथ नहीं कही जा सकतीं; अतः

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सत्तागुण 'ज्ञानरूप भी है, ज्ञानरूप नहीं भी है, फिर भी अवक्तव्य है।'

इसप्रकार चैतन्य में सत्तागुण और ज्ञानगुण के सात भङ्ग सिद्ध किये गये हैं। इसीप्रकार चैतन्य में सत्तागुण और दर्शन के भी सात भङ्ग सिद्ध करना चाहिए। इसीप्रकार वीर्यगुण के साथ, प्रमेयत्वगुण के साथ और ऐसे ही चेतना की अपेक्षा करके अनन्तगुणों और सत्ता में सात-सात भङ्ग सिद्ध करने चाहिए, तब अनन्त सप्तभङ्गी सिद्ध हो जाएंगी।

पश्चात् सत्तागुण के स्थान पर 'वस्तुत्वगुण' को लिया जाए तो उससे भी सत्तागुण की भाँति अनन्तबार सप्तभङ्ग सिद्ध होंगे। इसीप्रकार वस्तुत्वगुण की तरह एक-एक गुण के साथ अनन्तबार पृथक्-पृथक् सप्तभङ्ग सिद्ध करने चाहिए और इसीप्रकार अनन्तगुण की सप्तभङ्गी सिद्ध की जाती है।

जब सत्ता के स्थान पर अन्य गुणों को रखेंगे, तब केवल एक चेतना की विवक्षा से अनन्त भङ्ग सिद्ध होंगे और जब ऐसे ही चेतना की भाँति एक-एक गुण की विवक्षा करके भङ्ग सिद्ध करेंगे, तब सब गुणपर्यन्त अनन्तानन्त भङ्ग एक-एक गुण के साथ सिद्ध होंगे।

अतः यह चर्चा स्वरूप की रुचि प्रकट होने पर ही होती है और की जाती है। निजघर का निधान निजपारखी ही परखता है।

सम्यक्त्वगुण

जीव में अनन्तगुण हैं; उनमें सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और सुख – ये विशेषरूप हैं, प्रधान हैं। सम्यक्त्व का अर्थ है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

– वस्तु का यथावत् निश्चय होना; उसके अनन्त प्रकार हैं।[१]

जो देखनेमात्र परिणमन है, उसे निर्विकल्प सम्यग्दर्शन कहते हैं तथा जो स्वज्ञेय के भेदों को पृथक्–पृथक् और परज्ञेय के भेदों को पृथक्–पृथक् देखता है, उसे सविकल्प सम्यग्दर्शन कहते हैं।

जो जाननेमात्र परिणमन है, उसे निर्विकल्प सम्यग्ज्ञान कहते हैं तथा जो स्वज्ञेय भेदों को पृथक्–पृथक् और परज्ञेय भेदों को पृथक्–पृथक् जानता है, उसे सविकल्प सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

जो आचरणमात्र परिणमन है, उसे निर्विकल्प सम्यक्चारित्र कहते हैं और जो स्वज्ञेय का आचरण और परज्ञेय के त्याग का आचरण है; उसे सविकल्प सम्यक्चारित्र कहते हैं।

इसप्रकार सम्यक्त्व के बहुत भेद हैं।

शंका :– सम्यक्त्व उपयोग है या नहीं ? यदि उपयोग है तो उसके जो बारह भेद किये गये हैं – आठ ज्ञान के और चार दर्शन के, उनमें सम्यक्त्व को भी सम्मिलित क्यों नहीं किया गया ? और यदि वह उपयोग नहीं है तो उसमें प्रधान (प्रधानता) कैसे सम्भव होगी ?

समाधान :– यह सम्यक्त्वगुण है, वह प्रधानगुण है; क्योंकि सभी गुणों में सम्यक्पना इसी गुण के कारण है। सभी गुणों का अस्तित्व इसी गुण के कारण है; क्योंकि सभी गुणों का निश्चय यथावस्थितभाव के द्वारा है।

१. यहाँ सम्यक्त्व के दर्शन अपेक्षा दो भेद, ज्ञान अपेक्षा दो भेद और चारित्र अपेक्षा दो भेद – इसप्रकार छह भेद समझाये हैं और इसीप्रकार अनन्त गुणों की अपेक्षा से सम्यक्त्व के अनन्त भेद होते हैं, अत: यहाँ सम्यक्त्व को अनन्त प्रकार का कहा गया है – ऐसा समझना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निश्चय का नाम सम्यक्त्व है, उसमें व्यवहार, भेद या विकल्प नहीं; अशुद्धता भी नहीं। सम्यक्त्व तो निज अनुभवस्वरूप है। ज्ञान का जो जाननेमात्र परिणमन हुआ, वह सम्यक्त्व निर्विकल्प ज्ञान (निर्विकल्प सम्यग्ज्ञान) है तथा 'ज्ञान ज्ञेय को जानता है' – ऐसा कथन असद्भूत उपचरितनय (उपचरित असद्भूतव्यवहार-नय) के द्वारा होता है।

जो दर्शन देखनेमात्र परिणमा, उसे निर्विकल्प सम्यग्दर्शन कहते हैं। स्वज्ञेय को पृथक् देखता है और परज्ञेय को पृथक् देखता है – ऐसा कथनभेद व्यवहार द्वारा किया जाता है। दर्शन असद्भूत-उपचरितनय (उपचरित-असद्भूतव्यवहारनय) के द्वारा पर को देखता है।

अतः ज्ञान और दर्शन निर्विकल्परूप सम्यक् हुए और यह सम्यक्पना उनमें सम्यक्त्वगुण के द्वारा ही है। इसीप्रकार अनन्त-गुणों में जो सम्यक्पना हुआ, वह सम्यक्त्वगुण की प्रधानता से हुआ है।

यद्यपि अनादि से यह जीव शुद्धद्रव्यार्थिकनय से केवलज्ञान आदि अनन्तगुणों को धारण किए हुए है; तथापि जबतक सम्यक्त्व प्रकट नहीं होता, तबतक अशुद्ध रहता है। काललब्धि को प्राप्त करके जब सम्यक्त्व प्रकट हुआ, तब सम्यक्त्व की शुद्धता से वे सभी गुण विमल (शुद्ध) हुए; अतः सर्वप्रथम सम्यक्त्वगुण निर्मल हुआ, पश्चात् अन्य गुण निर्मल हुए।

सिद्ध भगवान के भी सर्वप्रथम सम्यक्त्वगुण ही कहा है; अतः सम्यक्त्वगुण प्रधान है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपयोग दर्शन और ज्ञानस्वरूप है। जहाँ सम्यग्दर्शन कहा जाय, वहाँ सम्यक्त्व का ग्रहण करना[१] और जहाँ सिर्फ 'दर्शन' ही कहा जाय, वहाँ देखनेरूप (सामान्य अवलोकनरूप) दर्शन ग्रहण करना। वस्तु का निश्चयरूप-अनुभवरूप सम्यक्त्व है, वही प्रधान है।

ज्ञानगुण

जानपनेरूप ज्ञान निर्विकल्प है, वह स्वज्ञेय को जानता है। यदि ज्ञान परज्ञेय को निश्चय से जाने तो वह जड़ हो जाय अर्थात् 'पर' में तादात्म्यवृत्ति संबंध होकर एक हो जाय; अतः ज्ञान पर को निश्चय से तो नहीं जानता, उपचार से जानता है।

शंका :– यदि ज्ञान 'पर' को उपचार से जानता है तो सर्वज्ञता कैसे सिद्ध होगी ? क्योंकि उपचारमात्र झूठ है; अतः सर्वज्ञता झूठी होकर कैसे सिद्ध हो सकेगी ?

समाधान :– जैसे हम दर्पण में घट-पट देखते हैं। यहाँ जो देखना है, वह उपचार से देखना (दर्शन) नहीं है। ज्ञेय प्रत्यक्ष दिखते हैं, वे तो असत्य नहीं हैं; परन्तु विशेषता यह है कि उपयोगरूप ज्ञान में स्व-परप्रकाशक शक्ति है, साथ ही उसमें ऐसा अखण्ड प्रकाश है, जो अपने स्वरूप के प्रकाशन में निश्चल व्याप्य-व्यापकभाव में लीन रहता है। ज्ञान में पर का प्रकाशन तो है; परन्तु व्यापकरूप एकता नहीं; अतः 'उपचार' संज्ञा है, लेकिन वस्तु की शक्ति उपचरित नहीं होती।

१. इस अध्याय के प्रारम्भ में स्वयं लेखक ने निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और सविकल्प सम्यग्दर्शन की चर्चा की है, जबकि वहाँ सम्यग्दर्शन से तात्पर्य सम्यक्त्व से न होकर सामान्य-अवलोकन लक्षणवाले दर्शन से है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसी का विशेष वर्णन आगे करते हैं –

कुछ मिथ्यावादी ऐसा मानते हैं कि ज्ञान में जो ज्ञेय का जानपना है, वही उसकी अशुद्धता है तथा उस ज्ञेय का जानपना जब मिटेगा; तब ज्ञान की अशुद्धता मिटेगी।

यह मान्यता उचित नहीं, क्योंकि ज्ञान में ऐसी स्व-परप्रकाशकता अपने सहजस्वभाव से है; वह अशुद्धभाव नहीं है।

अरूपी आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान लोक और अलोक के आकाररूप होकर उपयोग मेचक (अनेकाकार) हुआ है। यही कहा है –

"नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानलोकालोकाकारमेचकोपयोगलक्षणा स्वच्छत्वशक्तिः[१]

सामान्यार्थ :– अमूर्तिक आत्मा के प्रदेशों में प्रकाशमान लोक-अलोक के आकाररूप मेचक उपयोग जिसका लक्षण है, वह स्वच्छत्वशक्ति है।"

जिसप्रकार दर्पण में घट-पट दिखाई दें तो दर्पण निर्मल है और न दिखाई दें तो वह मलिन है; उसीप्रकार जिस ज्ञान में सकल ज्ञेय प्रतिभासित होते हैं, वह निर्मल है और जिसमें प्रतिभासित नहीं होते; वह मलिन है। ज्ञान अपने द्रव्यप्रदेशों की अपेक्षा ज्ञेय में प्रवेश नहीं करता, तन्मय नहीं होता। यदि तन्मय हो तो ज्ञेय का आकार नष्ट होने पर ज्ञान भी नष्ट हो जाये ? अतः द्रव्य की अपेक्षा ज्ञेय-व्यापकता नहीं है। ज्ञान की एक 'स्व-परप्रकाशक' नामक ऐसी शक्ति है कि उस शक्ति की पर्याय द्वारा वह ज्ञेय को जानता है।

१. समयसार परिशिष्ट, ११वीं स्वच्छत्वशक्ति।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शंका :– ज्ञानमात्र आत्मवस्तु का स्वरूप है – इसके संबंध में चार प्रश्न उत्पन होते हैं। प्रथम प्रश्न यह है कि ज्ञान ज्ञेय के आश्रित है या अपने आश्रित ? द्वितीय प्रश्न यह है कि ज्ञान एक है या अनेक ? तृतीय प्रश्न यह है कि ज्ञान अस्तिरूप है या नास्तिरूप ? चतुर्थ प्रश्न यह है कि ज्ञान नित्य है या अनित्य ?

समाधान :– (१) जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सभी द्रव्य-पर्यायरूप हैं; अतः ज्ञान भी द्रव्य-पर्यायरूप है। द्रव्यरूप निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तु है तथा पर्यायमात्र स्वज्ञेय तथा परज्ञेय को जानती है। ज्ञान की पर्याय ज्ञेय की पर्याय के आकारवाली होने से ज्ञान ज्ञेय के आकारवाला है तथा वस्तुमात्र अपने आकारवाली है।

(२) पर्यायमात्र के कथन से ज्ञान 'अनेक' है और वस्तुमात्र 'एक' है।

(३) पर्यायमात्र की अपेक्षा से ज्ञान 'नास्तिरूप' है, और वस्तुमात्र 'अस्तिरूप' है।

(४) ज्ञान पर्यायमात्र की अपेक्षा से 'अनित्य' है और वस्तुमात्र 'नित्य' है।

ऐसा समाधान करना 'स्याद्वाद' है, वस्तु का स्वरूप ऐसा ही है।

ज्ञानवस्तु अपने अस्तित्व की अपेक्षा चार भेद सहित है। ज्ञानमात्र जीव स्वद्रव्य की अपेक्षा अस्तिरूप है, स्वक्षेत्र की अपेक्षा अस्तिरूप है; स्वकाल की अपेक्षा अस्तिरूप है और स्वभाव की अपेक्षा अस्तिरूप है। इसीप्रकार वह परद्रव्य की अपेक्षा नास्तिरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं, परक्षेत्र की अपेक्षा नास्तिरूप है। परकाल की अपेक्षा नास्तिरूप है और परभाव की अपेक्षा नास्तिरूप है। ज्ञान के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, ज्ञेय में नहीं और ज्ञेय के ज्ञान में नहीं।

अपने निजलक्षण की अपेक्षा से एवं अन्य गुण लक्षण की निरपेक्षता से ज्ञान की संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजनता ज्ञान में है; अन्य (गुण) में नहीं है तथा अन्य गुण की संज्ञा, लक्षण और प्रयोजनता अन्य गुण में है, ज्ञान में नहीं है।

ज्ञान के सात भेद –

उस ज्ञान के विशेष भेद लिखे जा रहे हैं; क्योंकि विशेषज्ञान से विशेषसुख प्राप्त होता है। ज्ञान और आनन्द की समीपता है; इसीलिए ज्ञान के सात भेद कहे जा रहे हैं। वे भेद इसप्रकार हैं –

(१) नाम (२) लक्षण (३) क्षेत्र (४) काल (५) संज्ञा (६) स्थानस्वरूप तथा (७) फल।

(१) नाम :– ज्ञान का नाम ज्ञान क्यों है ?

'जानानीति ज्ञानम्, ज्ञायते अनेन वा इति ज्ञानम्।'

जो जानता है, वह ज्ञान है अथवा जिसके द्वारा जाना जावे, वह ज्ञान है, इसीलिए ज्ञान का नाम 'ज्ञान' है। ज्ञान द्वारा जीव जानता है।

(२) लक्षण :– ज्ञान का लक्षण सामान्य की अपेक्षा से निर्विकल्प है, वही स्व-परप्रकाशक है। विशेष कथन इसप्रकार है कि यदि ज्ञान को केवल स्वसंवेदक ही माना जाए तो महादूषण हो जाएगा। स्वपद की स्थापना पर की स्थापना से ही होती है, पर की स्थापना की अपेक्षा निषेध कर देने पर स्व की स्थापना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी सिद्ध नहीं हो सकती; अतः ज्ञान की स्व–परप्रकाशक शक्ति मानने से सब सिद्धि होती है। इसमें धोखा या सन्देह नहीं है।

शंका :– ज्ञान अनन्तगुणों को जानता है; अतः एक 'दर्शन' को भी जानता है; अतएव दर्शनमात्र को जानने के कारण एकदेश ज्ञान है या सर्वदेश ज्ञान है ? यदि सर्वदेश कहा जाय तो वह (ज्ञान) दर्शन को ही न जाने और यदि सभी गुणों को जाने तो वह एकदेश[१] ही न सम्भवे तथा ज्ञान के एकदेश होने की कल्पना नहीं की जा सकती है; क्योंकि वह केवलज्ञान में सम्भव नहीं।

समाधान :– दर्शन में सर्वदर्शी शक्ति है, उसको जानते ही सबको जाना गया – एक तो यह न्याय है। युगपत् (एकसाथ) सब गुणों को जाने, उसमें दर्शन भी जाना गया। युगपत् के जानने में विकल्प नहीं। एक ही गुण को निरावरण जानने से सभी गुणों को निरावरण जाने। जैसे एक आत्मा के असंख्यप्रदेश, प्रत्येक प्रदेश में अनन्तगुण और प्रत्येक गुण में असंख्यप्रदेश–उनमें से एक प्रदेश निरावरण होते ही सभी प्रदेश निरावरण हो जाते हैं।

जो एक को जानता है, वह सबको जानता है और जो सबको जानता है, वह एक को जानता है – ऐसा आगम में कहा गया है। निरावरण एक दर्शन के जानने में सर्वदेश ज्ञान सिद्ध होता है।

शंका :– दर्शन निराकार है, उसके जानने से ज्ञान भी निराकार होगा ?

समाधान :– दर्शनगुण का देखनामात्र लक्षण है और वह

१. मूल भाषा में छपी प्रति में यहाँ एकदेश के स्थान पर सर्वदेश शब्द का प्रयोग है, परन्तु अनुवादित प्रति में एकदेश शब्द का प्रयोग है और वही सही प्रतीत होता है। – सम्पादक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्वदर्शित्वशक्ति सहित है – यही दर्शन की विशेषता है, जिसे ज्ञान जानता है।

दूसरी विशेषता यह है कि ज्ञान की सर्वज्ञत्व शक्ति से सबको जानने में दर्शन भी आ जाता है। यहाँ बहुत से गुणों का जानपना मुख्य हुआ, जिनके अंतर्गत दर्शन भी आ जाता है; परन्तु ज्ञान उसरूप नहीं हो जाता। युगपत् जानने की शक्ति ज्ञान की है; अतः उसे जुदा विशेषण समझना चाहिए।

जैसे किसी पुरुष ने ऐसा रस चखा, जिसमें पाँच रस मिले हुए हैं। तब यह नहीं कहा जा सकता कि उस पुरुष ने मधुर रस चखा है, वैसे ही समझना चाहिए कि 'दर्शन' अनन्तगुणों के अन्तर्गत आ जाता है। अकेले 'दर्शन' की कल्पना नहीं की जा सकती – ऐसा जानना चाहिए।

ज्ञान अपनी सत्ता की अपेक्षा सत्तारूप है, अपने सूक्ष्मत्व की अपेक्षा सूक्ष्मरूप है; अपने वीर्य की अपेक्षा अनन्त बलरूप है, अपने अगुरुलघुत्व की अपेक्षा अगुरुलघुरूप है। इसीप्रकार अनन्त गुणों के लक्षण ज्ञान में घटित होते हैं। ज्ञान त्रिकालवर्ती सर्व को एकसमय में युगपत् (एकसाथ) जानता है।

शंका :– आत्मा को उसके भविष्यकाल के प्रत्येक समय में परिणामों द्वारा जो सुख होना है, वह तो ज्ञान में आकर पहले ही प्रतिभासित हो जाता है; तब फिर नवीन-नवीन, समय-समय का जो स्वसंवेदन परिणति का सुख कहा गया है, वह कैसा है ?

समाधान :– ज्ञानभाव में प्रतिभासित जो भविष्यकाल में होनेवाले परिणाम हैं, वे जब व्यक्त होंगे; तब सुखरूप होंगे। यहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणाम व्यक्त हुआ, उससे सुख है। चूँकि परिणाम एकसमय तक ही रहते हैं; अतः उनसे होनेवाला सुख भी समयमात्र का होता है। ज्ञान का सुख युगपत् होता है और परिणामों का सुख समयमात्र का है अर्थात् समय-समय के परिणाम जब आते हैं, तब सुख व्यक्त होता है। भविष्यकाल के परिणाम ज्ञान में आए; परन्तु व्यक्त हुए नहीं, अतः परिणाम का सुख क्रमवर्ती है और वह तो प्रत्येक समय में नवीन-नवीन होता है। ज्ञानोपयोग युगपत् है, वह उपयोग अपने-अपने लक्षणसहित है; अतः परिणाम का सुख नवीन है और ज्ञान का सुख युगपत् है।

ज्ञान की शक्ति अन्वय और युगपत् है, उस पर्याय की व्यतिरेकशक्ति (व्यक्तता) व्यापकरूप होकर अन्वयरूप हो जाती है। ज्ञान की शक्ति अन्वय और युगपत् है, लेकिन जिससमय वह परिणामद्वार में आती है; उससमय उसे 'परिणमित हुआ ज्ञान' कहते हैं अथवा जब ज्ञान ज्ञानरूप परिणमन करता है, तब व्यतिरेकशक्तिरूप ज्ञान होता है। अन्वय और व्यतिरेक परस्पर अन्योन्यरूप[1] होते हैं; अतः परमलक्षण वेदकता में है और वेदकता परिणाम से है तथा द्रव्यत्वगुण के प्रभाव से परिणाम द्रव्य-गुणाकार होता है और द्रव्य गुण-पर्यायाकार होता है।

इसप्रकार ज्ञान के बहुत भेद सिद्ध होते हैं। ज्ञान का लक्षण 'जानपना' है – यह निश्चित हुआ। इसका विस्तार और भी अनेक प्रकार से किया गया है।

(३) क्षेत्र :– भेदविवक्षा से ज्ञान के असंख्यात प्रदेश कहे गए हैं और अभेदविवक्षा से ज्ञानरूप वस्तु का सत्त्वक्षेत्र जाननेमात्र है।

१. अन्वय व्यतिरेकरूप होता है और व्यतिरेक अन्वयरूप होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(४) काल :– ज्ञान की जितनी मर्यादा है, उतना ही ज्ञान का काल है।

(५) संख्या :– ज्ञानमात्र वस्तु सामान्य है, अतः एक है। पर्याय की अपेक्षा अनन्त है। शक्ति की अपेक्षा भी अनन्त है। भेदकल्पना में ज्ञान जब दर्शन को जानता है, तब वह दर्शन का ज्ञान – ऐसा नाम पाता है और जब वह सत्ता को जानता है, तब वह सत्ता का ज्ञान – ऐसा नाम पाता है। इसप्रकार कल्पना करने पर ज्ञान के भेदों की संख्या है। निर्विकल्प अवस्था में ज्ञान एक है। यदि संख्या का विचार प्रदेशों की अपेक्षा किया जाये तो ज्ञान के असंख्यात प्रदेश हैं।

(६) स्थानस्वरूप :– ज्ञानमात्र वस्तु का स्थानक ज्ञानमात्र वस्तु में है; अतः ज्ञानमात्र वस्तु ज्ञानस्वरूप अपने स्थानक में है – यही ज्ञान का स्थानस्वरूप कहा जाता है। ज्ञान जब दर्शन को जानता है, तब दर्शन के जानने का स्थानस्वरूप दर्शन का ज्ञान है – यह भेदकल्पना उत्पन्न होती है, इसे ज्ञाता मात्र जानता है।

(७) फल :– ज्ञान का फल ज्ञान ही है; क्योंकि एक वस्तु का फल अन्य वस्तुरूप नहीं हो सकता। वस्तु अपने लक्षण को नहीं त्यागती और एक गुण में दूसरा गुण प्रवेश नहीं करता; अतः निर्विकल्प निजलक्षण ज्ञान ही ज्ञान का फल है; क्योंकि ज्ञान अपने को स्वयं संप्रदान करता है; अतः उसका फल स्वभावप्रकाश है।

दूसरी अपेक्षा से ज्ञान का फल सुख कहा जाता है। बारहवें गुणस्थान में मोह चला जाता है; परन्तु अनन्तसुख नाम तो अनन्तज्ञान (केवलज्ञान) होने पर तेरहवें गुणस्थान में ही प्राप्त होता है; अतः

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान के साथ जो आनंद है, वही ज्ञान का फल है। **'नास्ति ज्ञानसमं सुखम्'** – ऐसा भी कहा गया है।

उपर्युक्त ये सात भेद 'दर्शन' में भी लगा सकते हैं, 'वीर्य' में भी घटित किए जा सकते हैं और इसीप्रकार अनन्तगुणों में भी सातों भेद घटित किए जा सकते हैं। यहाँ सिर्फ ज्ञान के ही भेद संक्षेप से कहे गए हैं।

दर्शनगुण

जो देखता है, वह 'दर्शन' है अथवा जिसके द्वारा जीव देखता है, वह 'दर्शन' है। दर्शनशक्ति निराकार उपयोगस्वरूप है। **'निराकारं दर्शनं, साकारं ज्ञानम्'** – ऐसा कथन जिनागम में आया है।

यदि दर्शन न हो तो वस्तु अदृश्य हो जाएगी और तब किसी भी वस्तु का ज्ञान नहीं होगा, तब ज्ञेय का अभाव हो जायेगा; अतः दर्शनगुण प्रधानगुण है। **'सामान्यं दर्शनं, विशेषं ज्ञानम्'** – ऐसा भी कथन है।

कुछ वक्ताओं (वादियों) ने सिद्धस्तोत्र की टीका की है, उन्होंने तथा कुछ अन्य वक्ताओं ने यह कहा है कि 'सामान्य' शब्द का अर्थ 'आत्मा' है। आत्मा का अवलोकन करे, वह दर्शन है और स्वपर का अवलोकन करे, वह ज्ञान है – ऐसा कहने से एक ही गुण स्थापित होता है; क्योंकि जिस दर्शन ने आत्मा का अवलोकन किया है, उसी दर्शन ने पर का अवलोकन किया। इसप्रकार यदि एक ही गुण सिद्ध होगा तो दो आवरण सिद्ध नहीं हो सकेंगे। ज्ञानावरण और दर्शनावरण – इन दो आवरणों के क्षय होने से दो ही गुण सिद्ध भगवान के प्रगट होते हैं। इस कथन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में कोई सन्देह नहीं तथा यदि आत्मा का अवलोकन ही दर्शन कहा जाए तो सर्वदर्शित्वशक्ति का अभाव हो जाएगा।

''विश्वविश्वसामान्यभावपरिणतात्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्व-शक्तिः।

सामान्यार्थ :– समस्त विश्व के सामान्यभाव को देखनेरूप से परिणमित – ऐसे आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्ति है।''

ऐसा सिद्धान्त का वचन समयसार शास्त्र की आत्मख्याति टीका में ४७ शक्तियों के वर्णन में सर्वदर्शित्वशक्ति के विषय में आया है।

शंका :– दर्शन को निराकार तो कहा है, लेकिन सर्वदर्शित्व-शक्ति से समस्त ज्ञेयों को देखने से वह निराकार नहीं रहा।

समाधान :– गोम्मटसार शास्त्र में कहा है –

''भावाणं सामण्णविसेसयाणं सरूवमेत्तं जं।
वण्णणहीणग्गहणं जीवेण य दंसणं होदि॥४८३॥

सामान्यविशेषात्मकपदार्थानां यत् स्वरूपमात्रं विकल्परहितं यथा भवति तथा जीवेन सह स्वपरावभासनं दर्शनं भवति। दृश्यन्ते अनेन दर्शनमात्रं वा दर्शनम्।''

सामान्यविशेषमय समस्त पदार्थों का स्वरूपमात्र विकल्परहित जीवसहित स्व–पर के अवभासन को दर्शन कहा गया है।

इस कथन में दोनों सिद्ध हुए। विकल्परहित स्वरूपमात्र के ग्रहण में तो दर्शन 'निराकार' सिद्ध हुआ और समस्त पदार्थों के ग्रहण में 'सर्वदर्शी' सिद्ध हुआ; अतः यह कथन प्रमाण है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस कथन में यह विवक्षा लेनी कि अपना स्वरूपमात्र है, वही स्व है; वही सामान्य हुआ, अतः उसी को ग्रहण करना तथा जो गुण-पर्याय आदि भेद हैं; उन्हें दर्शन की अपेक्षा पर कहना, क्योंकि निर्विकल्प स्वरूप के अतिरिक्त जो भी दूसरा भेद होगा, वही पर है; वही विशेष हुआ। यह सामान्य-विशेष सर्व पदार्थों में है। तादात्मक अर्थात् सामान्यविशेषात्मक वस्तु के निर्विकल्प स्वरूपमात्र का जो अवभासन है, उसी को दर्शन कहते हैं।

दर्शन के सात भेद –

दर्शन के भी सात भेद हैं, उनका कथन करते हैं –

(१) दर्शन का **नाम** दर्शन इसलिए है, क्योंकि वह देखता है।

(२) दर्शन का **लक्षण** देखना मात्र है।

(३) दर्शन का **क्षेत्र** असंख्यात प्रदेश है।

(४) दर्शन की स्थिति को दर्शन का **काल** कहते हैं।

(५) वस्तु एक तथा शक्ति और पर्यायें अनेक हैं – यही दर्शन की **संख्या** है।

(६) वस्तु अपने स्थान से अपने स्वरूप को धारण करती है – यही दर्शन का **स्थानस्वरूप** है।

(७) दर्शन का फल आनन्द है तथा वस्तुभाव के द्वारा इस दर्शन का जो शुद्धप्रकाश है, वही **फल** है।

इसप्रकार अनेक विवक्षायें हैं और वे सभी विवक्षा से प्रमाण हैं। इसप्रकार दर्शन का संक्षेपमात्र कथन किया गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चारित्रगुण

चारित्र आचरण का नाम है। जो आचरण करे या जिसके द्वारा आचरण किया जाए, उसे चारित्र कहते हैं। चारित्ररूप परिणाम द्वारा वस्तु का आचरण किया जाता है; अतः वही आचरण चारित्र है अथवा चरणमात्र (आचरणमात्र) का नाम ही चारित्र है। यह निर्विकल्प है, यह निजाचरण ही है। पर का त्याग भी चारित्र का भेद है।

द्रव्य में स्थिरता, विश्राम और आचरण 'द्रव्याचरण' कहलाता है। गुण में स्थिरता, विश्राम और आचरण 'गुणाचरण' कहलाता है – इसकी विशेषता यह है कि सत्तागुण में परिणाम की स्थिरता ही सत्ता का चारित्र (सत्ताचरण) है।

शंका :– स्थिर का अर्थ अविनाशी है तथा परिणामों की प्रवृत्ति जो स्वरूप में आती है, वह चारित्र है; लेकिन परिणाम तो समयस्थायी (अस्थिर) है; अतः उससे चारित्र कैसे सिद्ध होगा?

समाधान :– ज्ञान-दर्शनरूप में जो स्थिररूप से स्थिति होती है, वही 'चारित्र' है। चारित्र परिणाम की प्रवृत्ति स्वरूप में होते ही ज्ञान और दर्शन की स्थिति भी स्वरूप में होती है, तब उसे स्वरूप का लाभ होता है; फिर वही परिणाम वस्तु में लीन हो जाता है, वही उत्तर परिणाम का कारण है। परिणाम वस्तु के द्रव्य और गुण का आस्वाद लेकर वस्तु में ही लीन हो जाता है और तब उससे ही वस्तु का सर्वस्व प्रकट होता है। व्यापकता के कारण वस्तु के सर्वस्व की मूलस्थिति का निवास वस्तु है, वह भी परिणाम की लीनता में जाना जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अतः ज्ञान और दर्शन की शुद्धता परिणामों की शुद्धता से है। जैसे अभव्य के दर्शन और ज्ञान निश्चयदृष्टि से सिद्ध के समान हैं; परन्तु उसके परिणाम कभी सुलटते नहीं हैं; अतः उसके दर्शन और ज्ञान सदा अशुद्ध रहे आते हैं। भव्य के परिणाम शुद्ध हो सकते हैं; अतः उसके दर्शन और ज्ञान भी शुद्ध हो सकते हैं – इस न्याय से परिणामों की निजवृत्ति (स्वसन्मुखता) होने पर जो स्वभावगुणरूप वस्तु में उपयोग की स्थिरता होती है, उसी का नाम चारित्र है।

परिणाम द्रव्य को द्रवित करता है; क्योंकि परिणाम में द्रव्यत्वशक्ति है; अतः वह द्रव्य को द्रवित करता है। द्रव्य में द्रव्यत्वशक्ति के कारण वह गुण-पर्याय को द्रवित करता है। गुण में द्रव्यत्वशक्ति है, जिससे वह द्रव्य-पर्याय को द्रवित करता है। वह द्रव्यत्वशक्ति द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में है।

जब परिणाम गुण में द्रवित होकर व्याप्त होता है, तब गुण के द्वारा परिणति होती है; तब गुण के अपने लक्षण का प्रकाश होता है। जब द्रव्यरूप परिणति हुई, तब द्रव्यलक्षण प्रगट हुआ; अतः परिणामों के बिना द्रवता नहीं और द्रवित हुए बिना व्यापकता नहीं; इसलिए व्यापकता के बिना द्रव्य का प्रवेश गुण-पर्यायों में नहीं होता; अतः अन्योन्य सिद्धि भी नहीं हो सकेगी। अन्योन्य सिद्धि के निमित्त (कारण) होने से परिणाम ही सर्वस्व हैं; क्योंकि आत्मा में ज्ञान-दर्शन की स्थिति परिणाम के कारण होती है; अतः परिणाम ही चारित्र है।

विश्रामस्वरूप में जो वेदकता होती है, वह 'विश्रामरूप चारित्र'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। गुण वस्तु को आचरण (परिणमन) करके प्रगट करता है; अतः वह 'आचरणरूप चारित्र' है। चारित्र द्रव्य का सर्वस्वगुण है।

सत्ता के अनन्त भेद हैं, अनन्तगुणों के अनन्त सत्त्व हुए। जैसे ज्ञानसत्त्व, दर्शनसत्त्व। इसप्रकार अनन्त गुणों के सत्त्व जानो। उन अनंत सत्त्वों का आचरण, विश्राम और स्थिरताभाव चारित्र ने किया।

शंका :– ज्ञान का 'चारित्र' (आचरण) एकदेश है या सर्वदेश?

समाधान :– ज्ञान एक गुण है, परन्तु ज्ञान में समस्त गुण जाने जाते हैं। ज्ञान में सर्वज्ञ–ज्ञानशक्ति है; अतः ज्ञान के आचरण से सबका आचरण है। ज्ञान के वेदन में सभी गुणों का वेदन होता है, यह 'ज्ञान–विश्राम' हुआ। ज्ञान की स्थिरता होने पर सब गुणों की स्थिरता ज्ञान की स्थिरता में समाविष्ट हो जाती है; अतः ज्ञान का चारित्र सर्वदेश सिद्ध हुआ।

इसीप्रकार दर्शन का चारित्र और ऐसे ही समस्त गुणों के चारित्र समझना चाहिए। ●

ज्ञानमई मूरति में ज्ञानी ही सुथिर रहे,
करे नहीं फिरि कहुँ आन की उपासना
चिदानन्द चेतन चिमत्कार चिह्न जाको,
ताके उर जान्यो मेटी भरम की वासना।
अनुभौ उल्हास में अनन्त रस पायो महा,
सहज समाधि में सरूप परकासना।
बोध–नाव बैठि भव–सागर को पार होत,
शिव को पहुँच करे सुख की विलासना॥

– **ज्ञानदर्पण, १७५**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय

ज्ञान का लक्षण 'जानपना' है। ज्ञान जानपनेरूप परिणमन करता है।

शंका :– ज्ञान की सिद्धि जानपने से है या परिणमन से ?

समाधान :– जानपने के बिना तो ज्ञान का अभाव होता है। 'जानपना' गुण है और 'परिणमन' पर्याय है। पर्याय के बिना गुण नहीं होता और गुण के बिना पर्याय नहीं होती। पर्याय के कारण गुण है, पर्याय और गुण का अबिनाभावी संबंध है।

शंका :– पर्याय क्रमवर्ती है और गुण सहभावी है; अतः क्रमवर्ती पर्याय से सहभावी गुण की सिद्धि कैसे हो सकती है ?

समाधान :– गुण की सिद्धि पर्याय से ही होती है – यही स्पष्ट करते हैं। जिसप्रकार अगुरुलघुगुण की सिद्धि पर्याय के बिना नहीं होती; उसीप्रकार सब गुणों के विषय में समझना चाहिए। अगुरुलघुगुण का विकार (विशेष कार्य) षड्गुणी वृद्धि–हानि है, यदि षड्गुणी वृद्धि–हानि न हो तो अगुरुलघुगुण भी नहीं होगा। सूक्ष्मगुण की पर्याय न हो तो सूक्ष्मगुण भी नहीं होगा। सूक्ष्मगुण की पर्यायें ज्ञानसूक्ष्म और दर्शनसूक्ष्म हैं; अतः 'पर्याय' साधक (साधन) है और 'गुण' सिद्धि (साध्य) है।

शंका :– षड्गुणी वृद्धि–हानि का स्वरूप क्या है ?

समाधान :– सिद्ध भगवान को दृष्टान्त बनाकर षड्गुणी वृद्धि–हानि का स्वरूप कहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे सिद्ध परमेश्वर अपने शुद्ध सत्तास्वरूप में परिणमन करते हैं – ऐसा कहा जाता है। वहाँ अनन्तगुणों में एक 'सत्तागुण' भी है। इसप्रकार अनन्तगुणों का अनन्तवाँ भाग सत्तागुण हुआ, उसके परिणमन की वृद्धि 'अनन्तभागवृद्धि' है। भगवान में असंख्यगुण की विवक्षा से जब यह कहा जाता है कि भगवान द्रव्यत्व गुणरूप परिणमन करते हैं, वहाँ द्रव्यत्वगुण असंख्यगुणों में से एक गुण होने के कारण असंख्यातवाँ भाग हुआ, उस परिणमन की वृद्धि 'असंख्यातभागवृद्धि' है। सिद्ध के आठ गुण की विवक्षा से जब यह कहा जाता है कि सिद्ध सम्यक्त्वरूप परिणमन करते हैं, तब आठ गुणों में से एक गुण होने के कारण संख्यातवाँ (आठवाँ) भाग हुआ; उस परिणमन की वृद्धि 'संख्यातभागवृद्धि' है।

सिद्ध आठों गुणरूप परिणमन करते हैं, तब आठ गुणों के परिणमन की वृद्धि 'संख्यातगुणीवृद्धि' है। सिद्ध असंख्य गुणरूप परिणमन करते हैं, तब असंख्यातगुणों के परिणमन की वृद्धि 'असंख्यातगुणीवृद्धि' है। सिद्ध अनन्तगुणरूप परिणमन करते हैं, तब अनन्तगुणों के परिणमन की वृद्धि 'अनन्तगुणीवृद्धि' है।

इसप्रकार जब इस छहप्रकार की वृद्धि के कारण परिणाम वस्तु में लीन हो जाते हैं, तब छहप्रकार की 'हानि' कहलाती है और जब यह हानि-वृद्धि होती है, तभी अगुरुलघु गुण रहता है। इस अगुरुलघुगुण से वस्तु की सिद्धि होती है।

इसलिए 'गुण' की सिद्धि 'गुणपर्याय' से होती है, 'द्रव्य' की सिद्धि 'द्रव्यपर्याय' से होती है और 'पर्याय' की सिद्धि 'द्रव्य और गुण' से होती है। 'द्रव्यपर्याय' की सिद्धि 'द्रव्य' से होती है और 'गुणपर्याय' की सिद्धि गुण से होती है। 'द्रव्य' से ही पर्याय उत्पन्न

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होती है, द्रव्य न हो तो परिणाम उत्पन्न न हो, क्योंकि द्रव्य परिणमन किये बिना द्रव्यरूप कैसे हो सकता है ? अतः द्रव्य से 'पर्याय' की सिद्धि होती है।

ज्ञानगुण न हो तो जानपनेरूप परिणमन कैसे हो सकता है ? गुण के द्वार से परिणति होती है। जैसे द्वार न हो तो द्वार में प्रवेश कैसे हो सकता है ? इसीप्रकार यदि 'गुण' न हो तो 'गुणपरिणमन' भी नहीं हो सकता। सूक्ष्मगुण न हो तो सूक्ष्मगुण की पर्याय कहाँ से हो सकती है ? इसीप्रकार सभी गुणों के विषय में जानना चाहिए। 'गुणपरिणति' गुणमय होती है।

शंका :– परिणति गुण के द्वारा उत्पन्न होती है, वह गुण की है या द्रव्य की ? यदि गुण की है तो गुण अनन्त हैं, अतः परिणति भी अनन्त होनी चाहिए और यदि द्रव्य की है तो उसे 'गुणपरिणति' क्यों कहते हैं ?

समाधान :– परिणमनशक्ति द्रव्य में है और द्रव्य गुण का पुञ्ज है, वह अपने गुणरूप स्वयमेव परिणमन करता है; अतः गुणमय परिणमते हुए द्रव्य को 'गुण-पर्याय' कहते हैं, इसलिए यह तो कहा जा सकता है कि जो द्रव्य की परिणति है, वही गुण की भी परिणति है; परन्तु यह परिणमनशक्ति द्रव्य से उत्पन्न होती है, गुण से नहीं। इसका प्रमाण तत्त्वार्थसूत्र में दिया है – "**द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः**" द्रव्य के आश्रय से गुण हैं, गुण के आश्रय से गुण नहीं।

'**गुणपर्ययवद् द्रव्यम्**' – यह भी कहा है तथा पर्यायवान द्रव्य को ही कहा है गुण को नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शंका :– यहाँ कोई प्रश्न करता है कि सूक्ष्मगुण की पर्याय ज्ञानसूक्ष्म है; इसीप्रकार सभी गुण सूक्ष्म हैं; परन्तु गुणों में यह सूक्ष्मता सूक्ष्मगुण की है अथवा द्रव्य की है ? यदि द्रव्य की है तो सूक्ष्मगुण की अनन्तपर्यायें क्यों कही गई हैं ? और यदि सूक्ष्मगुण की है तो उसे द्रव्य की परिणति क्यों कहा है ?

समाधान :– सूक्ष्मगुण के कारण द्रव्य सूक्ष्म है तथा द्रव्य अनन्तगुणों का पुञ्ज है; अतः द्रव्य सूक्ष्म होने से सभी गुण सूक्ष्म सिद्ध होते हैं; परन्तु यह जो परिणमनशक्ति है, वह द्रव्य में है; जिससे द्रव्य गुणलक्षणरूप परिणमन करता है।

शंका :– यहाँ पुनः प्रश्न है कि द्रव्य का स्वभाव क्रमाक्रमरूप कैसे कहा गया है ?

समाधान :– क्रम के दो भेद किये गये हैं – (१) प्रवाहक्रम और (२) विष्कम्भक्रम।

जैसे अनादि से काल का समयप्रवाह चला आ रहा है, वैसे ही द्रव्य में समय-समय उत्पन्न होनेवाले परिणामों का प्रवाह चला आ रहा है – इसी को 'प्रवाहक्रम' कहते हैं। यह 'प्रवाहक्रम' द्रव्य के परिणाम में है – ऐसा सिद्धान्त[१] प्रवचनसार से जानना चाहिए।

'विष्कम्भक्रम' गुण का है, गुण चौड़ाईरूप हैं और प्रदेश भी चौड़ाईरूप हैं। प्रदेशों को क्रमशः गिनने पर वे असंख्य हैं। प्रदेशों का यह विस्तारक्रम गुण में है; अतः इसी को 'विष्कम्भक्रम' कहते हैं अथवा गुणों को क्रम से कहा जाए तो दर्शन, ज्ञान इत्यादि विस्तार को धारण करते हैं; अतः इसकारण भी 'विष्कम्भक्रम' कहते हैं।

१. प्रवचनसार गाथा ९९ की अमृतचन्द्राचार्यकृत टीका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ प्रवाहक्रम द्रव्य के परिणाम में है, वह (प्रवाहक्रम) गुण में नहीं; अतएव वह गुणपरिणति का प्रवाह नहीं है। गुण से तो विस्तारक्रम ही कहा गया है।

द्रव्य की जो परिणति है, वह सब गुण में है। आत्मा ज्ञानरूप परिणमन करता है और ज्ञान जाननेरूप परिणमन करता है – इसप्रकार लक्ष्य-लक्षण के भेद से परिणामभेद है; परन्तु यह तो नहीं माना जा सकता कि ज्ञान की परिणति पृथक् है और आत्मा की परिणति पृथक् है; क्योंकि ऐसा मानने से तो सत्त्व पृथक् हो जाएगा। सत्त्व के पृथक् हो जाने से वस्तु पृथक्-पृथक् अनेक अवस्था धारण करके प्रवर्तन करने लगेगी; जिससे विपर्यय होगा, वस्तु का अभाव हो जाएगा।

शंका :– द्रव्य और गुण की परिणति पृथक्-पृथक् मानने में क्या दोष है ? आत्मा और गुण की अभेदपरिणति है – ऐसा मानने पर यह कहना व्यर्थ होगा कि 'ज्ञान' जाननेरूप परिणमन करता है और 'दर्शन' देखनेरूप परिणमन करता है; क्योंकि अभेद में भेद उत्पन्न नहीं होता ?

समाधान :– द्रव्य में परिणामों की वृत्ति उत्पन्न होती है। द्रव्य अनन्त गुणों का पुञ्ज है; अतः यह कह सकते हैं कि परिणामों की वृत्ति गुण से भी उत्पन्न होती है, क्योंकि द्रव्य और गुण के सत्त्व पृथक्-पृथक् नहीं; बल्कि एक हैं। गुण द्रव्यमय परिणमित होने से गुणमय परिणाम है। इसप्रकार वस्तु का परिणाम निर्विकल्प है। आत्मा ज्ञानरूप परिणमन करता है तो परिणाम जाननेरूप होता है; अतः ऐसी विवक्षा जाननी चाहिए कि ज्ञान जाननेरूप परिणमन करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शंका :– 'परिणाम' को वस्तु का सर्वस्व क्यों कहा गया है?

समाधान :– परिणाम से वस्तु का अन्वय स्वभाव पाया जाता है। यदि न हो तो द्रव्य अन्वयी न हो। अनन्तगुणों के परिणमन बिना द्रव्य नहीं हो सकता; इसलिए वस्तु का सर्वस्वरूप जो परिणाम है, उससे वस्तु का वेदन करना वेदकता है।[१]

गुण के परिणाम से गुण के आस्वाद का लाभ होता है; द्रव्य के परिणाम से द्रव्य के आस्वाद का लाभ होता है।

शंका :– पहले जो लक्ष्य और लक्षण का भेद बताया गया है, उसका कारण क्या है ?

समाधान :– 'लक्षण' के बिना 'लक्ष्य', यह नाम प्राप्त नहीं होता – ऐसा तो है; परन्तु परमार्थ से अभेदनिश्चय में–निर्विकल्प वस्तु में द्वैत की कल्पना का विकल्प कैसे संभव है ? एक अभेदवस्तु में सब (गुणों) की सिद्धि है। जैसे चन्द्र और चन्द्रिका (प्रकाश) एक ही हैं। सामान्यरूप से वस्तु निर्विकल्प है, विशेषरूप से जब शिष्य को समझाते हैं, तब ज्यों–ज्यों शिष्य गुरु द्वारा समझाये जाने पर गुण का स्वरूप जान–जानकर विशेषभेदी (भेदविज्ञानी) होता जाता है, त्यों–त्यों उस शिष्य को आनन्द की तरंगें उठती हैं और वह उसीसमय वस्तु का निर्विकल्प आस्वाद करता है। इसकारण से गुण–गुणी का विचार करना योग्य है।

इसप्रकार गुण का विशेष कथन किया – इस गुण के परिणामरूप उत्पाद–व्यय के द्वारा ही वस्तु की सिद्धि होती है।

---

१. वह वाक्य मूलग्रन्थ में इसप्रकार है – 'यातैं वस्तुवेदक में सर्वस्व परिणाम, सो वेदकता है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारण-कार्य संबंध

प्रथम ही सब सिद्धान्तों का मूल यही है कि वस्तु का कारण-कार्य जान लिया जाय। जितने भी जीव संसार से पार हुए हैं, वे सभी परमात्मा का कारण-कार्य जान-जानकर ही पार हुए हैं।

तीनों कालों में जीव जिस परमात्मा का ध्यान करके मुक्त हुए हैं, उस परमात्मदशा का कारण-कार्य जिस जीव ने नहीं जाना तो उसने क्या जाना ? अर्थात् कुछ नहीं जाना; अतः कारण-कार्य जानना ही चाहिए।

कारण-कार्य का स्वरूप क्या है, वह कहते हैं -

''पुव्वपरिणामजुत्तं कारणभावेण वट्टदे दव्वं।
उत्तरपरिणामजुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा॥[१]''

इस गाथा में यह बताया गया है कि 'पूर्वपरिणामयुक्त द्रव्य' कारणभावरूप परिणमित हुआ है और 'उत्तरपरिणामयुक्त द्रव्य' कार्यभावरूप परिणमित हुआ है, क्योंकि उत्तर-परिणाम का कारण पूर्व-परिणाम है अर्थात् पूर्व-परिणाम का व्यय उत्तर-परिणाम के उत्पाद का कारण है। जैसे मिट्टी के पिण्ड का व्यय घटरूप कार्य का कारण है।

शंका :- उत्तरपरिणाम के उत्पाद में क्या कार्य होता है ?

समाधान :- स्वरूपलाभ लक्षणसहित उत्पाद है, स्वभाव-प्रच्यवन लक्षणसहित व्यय है; अतः यह निःसंदेह जानो कि स्वरूप-लाभरूप कार्य है। यह स्वरूपलाभरूप कार्य प्रत्येक समय परमात्मा में हो रहा है; अतः सन्त पुरुष ऐसे कारण-कार्य को परिणाम के द्वारा जानें; क्योंकि कारण-कार्य 'परिणाम' से ही होते हैं।

१. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा २२२

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तु के उपादान के दो भेद हैं, अष्टसहस्त्री में भी कहा है –

"त्यक्तात्यक्तात्मरूपं यत् पूर्वापूर्वेण वर्तते।
कालत्रयेऽपि तद्द्रव्यमुपादानमिति स्मृतम्॥१॥
यत्स्वरूपं त्यजत्येव यन्न त्यजति सर्वथा।
तन्नोपादानमर्थस्य क्षणिकं शाश्वतं यथा॥२॥[१]"

अर्थ :– द्रव्य का जो त्यक्तस्वभाव (पर्यायरूप) है, वह परिणामरूप है और वह व्यतिरेकस्वभाव है तथा जो अत्यक्तस्वभाव है, वह गुणरूप है और वह अन्वयस्वभाव है। द्रव्य में गुण तो पहले से ही विद्यमान हैं, वे ही कायम रहते हैं और परिणाम अपूर्व-अपूर्व होते रहते हैं। ये गुण और परिणाम द्रव्य के उपादान हैं।

द्रव्य परिणाम को त्यागता है; परन्तु गुण को सर्वथा नहीं त्यागता; अतः परिणाम 'क्षणिक-उपादान' है और गुण 'शाश्वत उपादान' है। इसप्रकार वस्तु उपादान से सिद्ध है।

शंका :– उत्पाद आदि जीवादि द्रव्यों से भेदस्वरूप सिद्ध होते हैं या अभेदस्वरूप ? यदि अभेदस्वरूप सिद्ध होते हैं तो जीवादि को त्रिलक्षणपना (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना) न बन सकेगा और यदि भेदस्वरूप सिद्ध होते हैं तो सत्ताभेद होने से अनेक सत्ताओं का प्रसंग प्राप्त होगा, तब विपरीतता होगी ?

समाधान :– लक्षण की अपेक्षा से तो उत्पाद आदि और जीवादि द्रव्यों में भेद है, परन्तु सत्ता की अपेक्षा भेद नहीं; अतः सत्ता में 'अभेद' और संज्ञा आदि की अपेक्षा 'भेद' समझना चाहिए।

१. अष्टसहस्त्री, श्लोक ५८ की टीका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तु की सिद्धि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य – इन तीनों से होती है। आप्तमीमांसा में भी कहा है –

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थं जनो याति सहेतुकम्।।५९।।
पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात् तत्त्वं त्रयात्मकम्।।६२।।

सामान्यार्थ :-- सोने का घट, सोने का मुकुट और केवल सोने का इच्छुक मनुष्य क्रमशः घट का नाश होने पर शोक को, मुकुट का उत्पाद होने पर हर्ष को तथा दोनों अवस्थाओं में सोने की स्थिति बराबर बनी रहने से माध्यस्थभाव को प्राप्त होता है तथा यह सब सहेतुक है।

जैसे किसी पुरुष ने दूध का व्रत लिया हो कि 'मैं दूध ही पिऊँगा', वह दही का भोजन नहीं करता। जिसने दही का व्रत लिया हो कि 'मैं दही का भोजन ही करूँगा', वह दूध का भोजन नहीं करता और जिसने अगोरस का व्रत लिया हो कि 'मैं गोरस नहीं लूँगा', वह गोरस (दूध, दही आदि) का भोजन नहीं करता है। इसप्रकार तत्त्व तीनों को धारण किये हैं।

दूध गोरस की पर्याय है और दही भी उसी की पर्याय है। एक पर्यायमात्र के ग्रहण करने से ही गोरस की सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें सभी गोरस का ग्रहण नहीं हो सकता। वैसे ही केवल 'उत्पाद' से अथवा केवल 'व्यय' से अथवा केवल 'ध्रौव्य' से वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती, उसकी सिद्धि तो तीनों से ही होती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे कोई पाँच वर्णों वाला चित्र है, उसके एक ही वर्ण के ग्रहण (ज्ञान) से समूचे चित्र का ग्रहण नहीं हो सकता। वैसे ही वस्तु तीनों (उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य) मयी है, उनमें से किसी एक के ही ग्रहण से वस्तु का ग्रहण नहीं हो सकता।

यदि वस्तु को केवल ध्रुव ही माना जाए तो दो दोष आते हैं। एक दोष यह है कि ध्रौव्य का ही नाश हो जाएगा, क्योंकि उत्पाद और व्यय के बिना वह अर्थक्रियाकारी नहीं हो सकेगा और अर्थक्रिया के बिना वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकेगी तथा षड्गुणी वृद्धि-हानि नहीं हो सकेगी, तब वस्तु अगुरुलघुरूप न हो सकेगी; जिससे वस्तु कभी हल्की होने लगेगी और कभी भारी; तब वह जड़ हो जाएगी; अतः उसमें (जीवद्रव्य या वस्तु में) चिद्ध्रुवता नहीं रह सकेगी। दूसरा दोष यह है कि पर्याय क्षणवर्ती होकर भी नित्य होने लगेगी, तब अध्रुव पर्याय भी ध्रुव होगी।

यदि वस्तु में केवल उत्पाद ही माना जाए तो भी दो दोष लगेंगे। एक दोष तो यह है कि उत्पाद के कारणरूप व्यय का अभाव हो जाएगा एवं व्यय का अभाव होने से उत्पाद का भी अभाव हो जाएगा तथा दूसरा दोष यह है कि असत् का भी उत्पाद होने लगेगा, तब आकाश के फूल की भी उत्पत्ति देखी जायेगी; परन्तु यह कल्पना असत्य है।

इसीतरह वस्तु में केवल व्यय ही माना जाए तो भी दो दोष होंगे। एक तो यह है कि विनाश (व्यय) जिसका कारण है - ऐसे उत्पाद का भी अभाव हो जाएगा, तब उत्पाद का अभाव होने से विनाश भी नहीं हो सकेगा; क्योंकि कारण बिना कार्य नहीं हो सकता तथा दूसरा दोष यह है कि सत् का उच्छेद (विनाश)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो जाएगा। तब सत् का उच्छेद होने से ज्ञान आदि चेतना का भी नाश हो जाएगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि वस्तु त्रिलक्षण ही है।

'सत्-उत्पाद' और 'असत्-उत्पाद' –

अब द्रव्य के 'सत्-उत्पाद' और 'असत्-उत्पाद' को दिखाते हैं–

द्रव्य का यह सत्स्वभाव अनादिनिधन है। द्रव्य और गुण अन्वयशक्ति सहित हैं; अतः वे क्रमवर्ती पर्याय में व्याप्त होकर भी द्रव्यार्थिकनय से अपने वस्तु के सत्पने से जैसे हैं, वैसे ही उत्पन्न होते हैं। पर्याय की अपेक्षा से नया उत्पन्न होने का विधान है; परन्तु अन्वयशक्ति में (द्रव्य) जैसा है, वैसा ही रहता है तो भी दो नयों के द्वारा दो प्रकार के उत्पाद का कथन किया है।

पर्यायशक्ति में 'असत्-उत्पाद' बताया है; क्योंकि पर्यायें नयी-नयी उत्पन्न होती रहती हैं, इसलिए अन्वयशक्ति से व्याप्त होने पर भी पर्यायार्थिकनय से पर्याय में 'असत्-उत्पाद' बताया है।

शंका :– क्या ज्ञेय का ज्ञान में विनाश या उत्पाद होता है? यदि उत्पाद होता है तो वह 'असत्-उत्पाद' है, क्योंकि पहले ज्ञेय ज्ञान में नहीं आया था, अतः ज्ञेय के ज्ञान में उत्पन्न होने से उत्पाद कहा गया है या नयी ज्ञानपर्याय की अपेक्षा उत्पाद कहा गया है?

समाधान :– द्रव्य की अपेक्षा से 'सत्-उत्पाद' है और पर्याय की अपेक्षा 'असत्-उत्पाद' है। ज्ञेय-ज्ञायक संबंध उपचार से है। उपचार से ज्ञेय ज्ञान में और ज्ञान ज्ञेय में है; अतः वस्तुत्व (द्रव्य) की दृष्टि से 'सत्-उत्पाद' है और पर्याय की दृष्टि से 'असत्-उत्पाद' है।

शंका :– पर्याय के बिना द्रव्य नहीं होता; अतः पर्याय से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य की सिद्धि होती है। जबकि पर्याय से 'असत्-उत्पाद' है, इसलिए 'असत्-उत्पाद' से 'सत्-उत्पाद' सिद्ध हुआ तथा क्योंकि द्रव्य से पर्याय (उत्पन्न) होती है; अतः 'सत्-उत्पाद' से 'असत्-उत्पाद' हुआ। फिर यह क्यों कहा जाता है कि पर्याय की अपेक्षा 'असत्-उत्पाद' और द्रव्य की अपेक्षा 'सत्-उत्पाद' होता है ?

समाधान :– पर्याय द्रव्य की कारण है और द्रव्य पर्याय का कारण है – यह तो कारण की बात हुई; परन्तु पर्याय का कार्य पर्याय से ही होता है और द्रव्य का कार्य द्रव्य से ही होता है; अतः पर्याय की अपेक्षा 'असत्-उत्पाद' कार्य होता है और द्रव्य की अपेक्षा 'सत्-उत्पाद' कार्य होता है। यह जो कारण-कार्य का भेद है, उसे विवेकी ही जानता है।

जब पर्यायरूपी तरंग द्रव्यरूपी समुद्र से उठती है, तब विवेकी जीव आनन्द की केलि (क्रीड़ा) में मग्न हुआ वर्तता है। परिणाम की प्रवृत्ति से ही द्रव्य-गुण की प्रवृत्ति है, वस्तु की स्थिरता है, विश्राम है, आचरण है, वेदकता है, सुख का आस्वाद है, उत्पाद-व्यय है और षड्गुणी वृद्धि-हानि है। वस्तु के गुणों का प्रकाश प्रगट परिणाम ही करता है। विवेकी जीव को गुण-गुणी का विलास-रस निर्विकल्पदशा में आया है।

प्रत्येक वस्तु अनन्तगुण का पुञ्ज है, वस्तु में गुण रहते हैं; अतः जब परिणाम निजवस्तु का वेदन करता है; तब वस्तु के अनन्तगुणों का भी वेदन होता है। इसप्रकार वह गुण और गुणी दोनों का वेदन करता है। ●

१. प्रवचनसार गाथा १११

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सामान्य-विशेषात्मक वस्तु और स्याद्वाद

अब सामान्य-विशेष का स्वरूप लिखते हैं –

सामान्य में विशेष है और विशेष में सामान्य है।

कहा भी है –

''निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत् खरविषाणवत्।
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषं तद्वदेव हि॥

सामान्यार्थ : – वास्तव में विशेष रहित सामान्य और सामान्य रहित विशेष गधे के सींग के समान है।''

'वस्तु' – ऐसा कहना वस्तु का सामान्यकथन है और **'सामान्य-विशेषात्मकं वस्तु'** – यह वस्तु का विशेष कथन है। **'अस्ति इति सत्'** – यह सामान्यसत् का कथन है, और **'नास्ति इति असत्'** अर्थात् पर की अपेक्षा अभावरूप सत् – यह विशेषसत् है।

देखनामात्र दर्शन है – यह 'सामान्यदर्शन' है और जो स्व-पर सकलज्ञेय को देखे – वह 'विशेषदर्शन' है। जाननामात्र ज्ञान है – यह 'सामान्यज्ञान' है और जो स्व-पर सकलज्ञेय को जाने – वह 'विशेषज्ञान' है। इसीप्रकार सभी गुणों में सामान्य और विशेष हैं।

सामान्य और विशेष के द्वारा वस्तु प्रगट होती है। वही कहते हैं – यदि वस्तु में सिर्फ सामान्य ही कहा जाए तो विशेष के बिना वस्तु का गुण नहीं कहा जा सकता और गुण के बिना वस्तु नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जानी जा सकती। अतः सामान्य को विशेष प्रकट करता है और यदि सामान्य न हो तो विशेष कैसे उत्पन्न हो ? अतः विशेष को सामान्य प्रकट करता है। इसप्रकार वस्तु सामान्य-विशेषमय सिद्ध होती है।

शंका :– सामान्य अन्वयशक्ति को कहते हैं और विशेष व्यतिरेकशक्ति को कहते हैं – यह कैसे सिद्ध होता है ?

समाधान :– अन्वयशक्ति युगपत् सदा अपने स्वभावरूप रहती है, इसमें कोई विशेष नहीं। अपने स्वभाव के भाव में जो दशा है; वह वही है, निर्विकल्प है, अबाधित है। व्यतिरेक पर्याय नये-नये रूप धारण करती है, अतः वह विशेष है।

इसप्रकार ये वस्तु की लक्षणशक्ति के 'सामान्य-विशेष' हैं। सभी गुणों के सामान्य और विशेष इसमें अन्तर्गर्भित होते हैं, यही वस्तु का सर्वस्व है। संज्ञा आदि के भेद से इसके बहुत भेद हैं।

इसप्रकार अर्थ का विचार करने पर अन्वय-व्यतिरेक में सब आ जाते हैं। अनन्तगुण और द्रव्य 'अन्वय' में आ जाते हैं और पर्यायें 'व्यतिरेक' में आ जाती हैं। इसप्रकार अन्वय और व्यतिरेक में जब द्रव्य, गुण और पर्याय आ जाते हैं, तो उसमें सब आ जाते हैं।

अतः स्याद्वाद की सिद्धि सामान्य-विशेष के बिना नहीं हो सकती है।

यदि वस्तु को अभेदस्वरूप ही माना जाए तो भेद के बिना गुण की सिद्धि नहीं हो सकेगी और गुण के बिना गुणी की सिद्धि कौन कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं कर सकता; अतएव भेद और अभेद दोनों को मानने से ही वस्तु की सिद्धि होती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तु की 'अवक्तव्यता' में उसका कुछ भी कथन नहीं किया जा सकता, वह वचन से अगोचर है। वह ज्ञानगम्य होकर प्रकट होती है। ऐसी सामान्य–विशेषरूप वस्तु में अनन्तनय सिद्ध होते हैं।

नयविवरण

यहाँ अनन्तनयों का संक्षेप में वर्णन करते हैं –

ज्ञानसामान्य के ग्राहक नय से ज्ञान को सामान्यरूप कहा जाता है और ज्ञानविशेष के ग्राहक नय से ज्ञान को विशेषरूप कहा जाता है। इसीप्रकार अनन्तगुणों में अनन्त सामान्य–विशेष नयों के द्वारा भी सामान्य और विशेष दोनों भेद सिद्ध करना चाहिए। पर्यायसामान्य के ग्राहक नय से गुणपर्याय, द्रव्यपर्याय, अर्थपर्याय, व्यञ्जनपर्याय तथा एक गुण की अनंत विशेष पर्यायें सभी को ग्रहण करना चाहिए।

संग्रहनय –

सामान्य संग्रहनय से सब द्रव्य परस्पर अविरुद्ध कहे जाते हैं और विशेष संग्रहनय से सब जीवद्रव्य परस्पर अविरुद्ध कहे जाते हैं।

नैगमनय –

नैगमनय तीन प्रकार का है – भूतनैगम, भाविनैगम और वर्तमाननैगम। आज दीपमालिका के दिन भगवान महावीर का मोक्ष हुआ – यह भूतनैगमनय का उदाहरण है। भावि तीर्थंकर को वर्तमान के रूप में मानना, भाविनैगम का उदाहरण है तथा 'ओदनं पच्यते' अर्थात् भात पक रहा है – ऐसा कहना वर्तमाननैगम का उदाहरण है।

नैगमनय दो प्रकार का भी होता है – द्रव्यनैगम और पर्यायनैगम।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्यनैगम के दो भेद हैं – शुद्धद्रव्यनैगम और अशुद्धद्रव्यनैगम।

शुद्धद्रव्यनैगम के चार भेद हैं – शुद्धद्रव्य–ऋजुसूत्र, शुद्धद्रव्य–शब्द, शुद्धद्रव्य–समभिरूढ़ और शुद्धद्रव्य–एवंभूत तथा अशुद्धद्रव्य–नैगम के भी चार भेद हैं – अशुद्धद्रव्य–ऋजुसूत्र, अशुद्धद्रव्य–शब्द, अशुद्धद्रव्य–समभिरूढ़ और अशुद्धद्रव्य–एवंभूत – इसप्रकार द्रव्यनैगम के आठ भेद हैं।

पर्यायनैगम के तीन भेद हैं – अर्थपर्याय–नैगम, व्यञ्जनपर्याय–नैगम और अर्थ–व्यञ्जनपर्याय–नैगम।

अर्थपर्याय–नैगम के तीन भेद हैं – ज्ञानार्थपर्याय–नैगम, ज्ञेयार्थ पर्याय–नैगम और ज्ञानज्ञेयार्थपर्याय–नैगम। व्यञ्जनपर्याय–नैगम के छह भेद हैं – शब्दव्यञ्जनपर्याय–नैगम, समभिरूढ़–व्यञ्जनपर्याय–नैगम, एवंभूत–व्यञ्जनपर्याय–नैगम, शब्द–समभिरूढ़व्यञ्जनपर्याय–नैगम, शब्द–एवंभूत–व्यञ्जनपर्याय–नैगम और समभिरूढ़–एवंभूत–व्यञ्जनपर्याय–नैगम। अर्थ–व्यञ्जनपर्याय–नैगम तीन प्रकार का है – शब्द–अर्थ–व्यञ्जनपर्याय–नैगम, समभिरूढ़–अर्थ–व्यञ्जन–पर्याय–नैगम और एवंभूत–अर्थ–व्यञ्जनपर्याय–नैगम।

द्रव्यार्थिकनय[१] –

१. द्व्यणुक आदि निरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिकनय से पुद्गल के एक स्कन्ध में जितने भी परमाणु हैं, वे सभी अविभागी परमाणु की भाँति शुद्ध हैं।

२. उत्पाद–व्यय की गौणता करके सत्ताग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनय से स्कंध में जितने भी परमाणु हैं, सभी नित्य हैं।

१. यहाँ द्रव्यार्थिकनय को पुद्गलद्रव्य पर घटित किया है, जबकि अन्यत्र शास्त्रों में जीव पर घटाया गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

३. भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिकनय से स्कंध के सभी परमाणु अपने-अपने गुण-पर्याय से अभेद हैं।

४. द्व्यणुक आदि सापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय से स्कंध आदि को अशुद्धपुद्गलद्रव्य कहते हैं।

५. सत्ता को गौण करके उत्पाद-व्ययग्राहक अशुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से स्कंध के सभी परमाणु अनित्य हैं।

६. भेदकल्पना सापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय से गुणी से गुण का भेद करते हैं।

७. स्वद्रव्यादिचतुष्टयग्राहक द्रव्यार्थिकनय से पुद्गलद्रव्य अस्तिरूप है।

८. परद्रव्यादिचतुष्टयग्राहक द्रव्यार्थिकनय से पुद्गलद्रव्य नास्तिरूप है।

९. अन्वयद्रव्यार्थिकनय से पुद्गलद्रव्य गुणपर्यायस्वभाव सहित है।

१०. परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय से पुद्गलद्रव्य मूर्तिक एवं जड़स्वभाववाला है।

व्यवहारनय[१] –

पर्यायार्थिकनय के अनेक भेदों तथा गुण के भेदों से व्यवहारनय का वर्णन करते हैं –

१. आत्मावलोकन में भी इसका वर्णन किया गया है, उसमें निम्न गाथा से इसका प्रारंभ किया गया है –

पज्जाय भावना सव्वे, सव्वे भेय करणा च जोग खिरणाहि।
ससहाव दोणकधणा तं व्यवहारं जिणभणिदं ॥१०॥

जितने भी पर्याय के भाव होते हैं, वे सर्व व्यवहार नाम पाते हैं। जितने भी एक के अनेक भेद किये जाते हैं, वे सर्व व्यवहार नाम पाते हैं। बंध और मोक्ष भी व्यवहार नाम पाता है। संक्षेप में जितने भी स्वभाव से अन्य भाव हैं, वे सर्व व्यवहार नाम पाते हैं – ऐसा व्यवहार का कथन जिनेन्द्र भगवान ने किया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहारनय से द्रव्य के जीव और अजीव भेद किये जाते हैं। विशेषसंग्रहभेदक व्यवहारनय से जीव (द्रव्य) के संसारी और मुक्त – ऐसे भेद होते हैं। शुद्धसद्भूत व्यवहारनय से शुद्धगुण और शुद्धगुणी का भेद किया जाता है और अशुद्धसद्भूत व्यवहारनय से मति आदि गुणों को जीव का कहा जाता है। इसप्रकार व्यवहार के अनेक भेद हैं।

व्यवहार के द्वारा पर-परिणतिरूप जो राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि सब अवलम्बन हैं; वे सभी हेय अर्थात् त्यागने-योग्य हैं। संसारी जीवों को एक चैतन्य आत्मस्वरूप में अवलम्बन करना चाहिए। स्वरूप सर्वथा उपादेय अर्थात् ग्रहण करने-योग्य है तथा वैराग्यतारूप संवर एकदेश उपादेय है। इसप्रकार जो उपदेश व्यवहार है; उसे हेय-उपादेयरूप जानना चाहिए।

पर्यायभेद करने को व्यवहार कहते हैं। स्व (अपने) में स्वभाव-स्वभावी भेद कहना शुद्धव्यवहार है और स्वभाव से अन्यथा कहना अशुद्धव्यवहार है।

व्यवहारनय के सूचक कुछ उदाहरण –

आकाश में समस्त द्रव्य रहते हैं। जीव और पुद्गल की गति में धर्मास्तिकाय का सहकार होता है और स्थिति में अधर्मास्तिकाय का सहकार होता है। सभी द्रव्यों के परिणामों के परिणमन में काल की वर्तना का सहकार होता है। पुद्गलादि की गति के द्वारा कालद्रव्य का परिमाण उत्पन्न होता है (माप ज्ञात होता है)।

ज्ञान में ज्ञेय और ज्ञेय में ज्ञान होता है। ज्ञान-दर्शन की एक-एक शक्ति एक-एक स्व-पर ज्ञेयभेद को जानती है। इसीप्रकार सम्पूर्ण भावों और द्रव्यों का परस्पर मिलाप होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसीप्रकार पर्याय के भाव और विकार उत्पन्न हुए, स्वभाव का नाश हुआ। पुनः स्वभाव उत्पन्न होकर विकार नष्ट हुआ। जीव उत्पन्न हुआ, जीव मरा। पुद्गल स्कंधरूप हुआ या कर्मरूप हुआ या अविभागी परमाणु हुआ। संसारपरिणति नष्ट हुई, सिद्धपरिणति उत्पन्न हुई। आवरण (ज्ञानावरण और दर्शनावरण), मोह (मोहनीय) और अन्तराय कर्म की रुकावट नष्ट हुई तथा अनन्तज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्तचारित्र (सुख) और अनन्तवीर्य प्रगट हुआ।

मिथ्यात्व गया और सम्यक्त्व हुआ। अशुद्धता गई, शुद्धता हुई। पुद्गल के द्वारा जीव बँधा, जीव का निमित्त पाकर पुद्गल कर्मरूप हुए। जीव ने कर्मों का नाश किया।

यह विनष्ट हुआ, यह उत्पन्न हुआ – इसप्रकार उत्पन्न होनेवाले और विनष्ट होनेवाले भाव पर्याय ही के होने से सभी व्यवहार नाम पाते हैं।

एक आकाश के लोक और अलोक – ऐसे भेद करना। काल की वर्तना के अतीत, अनागत और वर्तमान एवं अन्य भेद करना। एक ही वस्तु के द्रव्य, गुण और पर्याय के द्वारा भेद करना। एक जीववस्तु के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा – ऐसे भेद करना। एक द्रव्यसमूह को असंख्यात भेदों के द्वारा तथा अनन्त प्रदेशों के द्वारा भेद करना। एक द्रव्य की एक पर्याय को अनन्त परिणामों की अपेक्षा से भेद करना। एक द्रव्यसमूह को असंख्यातवें भाग अनन्य-प्रदेशों के द्वारा ही भेद करना। एक द्रव्य या एक वस्तु की विधि की अपेक्षा अस्ति तथा अविधि की अपेक्षा नास्ति करना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक ही वस्तु के द्रव्य, सत्त्व, पर्यायी, अन्वयी, अर्थ, नित्य इत्यादि नाम भेद करना। एक ही जीव के आत्मा, परमात्मा, ज्ञानी, सम्यक्त्वी, चारित्री, सुख, वीर्यधारी, दर्शनी, चिदानन्द, चैतन्य, सिद्ध, चित्, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी आदि के द्वारा भेद करना।

ज्ञान के बोधक ज्ञप्ति आदि नामभेद करना। सम्यक्त्व के आस्तिक्य, श्रद्धान, नियत, प्रतीति, तत्, एतत् आदि नामभेद करना। चारित्र के आचरण, विश्राम, समाधि, संयम, समय, एकान्तमग्न, स्थगित, अनुभवन, प्रवर्तन आदि नामभेद करना। सुख के आनन्द, रसस्वाद, भोगतृप्ति, संतोष आदि नामभेद करना। वीर्य के बल, शक्ति, उपादान, तेज और ओज आदि नामभेद करना। अशुद्ध के विकार, विभाव, अशुद्ध, समल, परभाव, संसार, आस्रव, रंजकभाव, क्षणभंग और भ्रम आदि नामभेद करना। इसीप्रकार अन्य एक-एक के नाममात्र से भेद करना।

एक ज्ञान के मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान पर्याय के द्वारा भेद करना। इसीतरह ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि प्रत्येक के कुछ जघन्य-उत्कृष्ट परिणति के द्वारा भेद करना। एक ही वस्तु के निश्चय और व्यवहार की परिणति से भेद करना। इन सभी भेदभावों से व्यवहार परिणति के भेद करना।

इसीप्रकार प्रत्येक के भी भेद किये जा सकते हैं और ये सभी भेदभाव व्यवहार नाम पाते हैं।

गुण बँधा, गुण मुक्त हुआ, द्रव्य बँधा, द्रव्य मुक्त हुआ – इसप्रकार सम्पूर्ण भावों को भी व्यवहार कहा जाता है। चिरकालीन विभावों के वश स्वभाव को छोड़ कर द्रव्य, गुण और पर्याय सभी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को अन्यभावरूप कहना। जैसे ज्ञानी को अज्ञानी, सम्यक्त्वी को मिथ्यात्वी, स्वसमयी को परसमयी और सुखी को दुखी कहना। इसीप्रकार अनन्तज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख और वीर्य को भी अन्य भावरूप कहा जा सकता है। ज्ञान को अज्ञान, सम्यक्त्व को मिथ्यात्व, स्थिर को चपल, सुख को दुःख, उपादेय को हेय, अमूर्तिक को मूर्तिक, परमशुद्ध को अशुद्ध, एकप्रदेशी पुद्गल को बहुप्रदेशी, पुद्गल को कर्मत्व, एक चेतनरूप जीव को मार्गणा और गुणस्थान आदि जितनी भी परिणतियाँ हैं, उन सबके द्वारा निरूपित करना व्यवहार है।

तथा एक ही जीव को पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष की परिणतियों के द्वारा निरूपित करना व्यवहार है।

जितने भी वचनपिंड द्वारा कथन हैं, वे सब व्यवहार नाम को प्राप्त होते हैं। ऐसे-ऐसे आत्मा से जो अन्य हैं, वे सर्व व्यवहार नाम को प्राप्त होते हैं। एक सामान्य से संक्षेप में व्यवहार का इतना अर्थ जानना।

इतना ही व्यवहार जानना कि जिस भाव का वस्तु से अव्यापकरूप संबंध है, वस्तु के साथ व्याप्य-व्यापक एकमेक संबंध नहीं है; वह व्यवहार नाम को प्राप्त होता है – ऐसा व्यवहार भाव का कथन द्वादशांग में प्रचलित है; अतः जानना चाहिए।

इसप्रकार व्यवहार का स्वरूप कहा।

निश्चयनय –

''जेसिं गुणाणं पचयं णियसहावं च अभेयभावं च।
दव्वपरिणमणाधीणं, तं णिच्छयं भणियं ववहारेण॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

येषां गुणानां प्रचयं, निजस्वभावं च अभेदभावं च।
द्रव्यपरिणमनाधीनं तन्निश्चयं भणितं व्यवहारेण॥

येषां गुणानां प्रचयम् एकसमूहं तं निश्चयम्। पुनः येषां द्रव्य-गुण-पर्यायाणां निजस्वभावं निजजातिस्वरूपं तं निश्चयम्। पुनः येषां द्रव्यगुणानां गुणशक्तिपर्यायाणां यं अभेदभावं एकप्रकाशं तन्निश्चयम्। पुनः येषां द्रव्याणां, ये द्रव्यपरिणामाधीनं तस्य द्रव्यस्य परिणामं आश्रयं भावं, तं निश्चयम्। एतादृशा निश्चयं व्यवहारेण वचनद्वारेण भणितं वर्णितम्।''

जिन निज अनन्तगुणों का जो परस्पर एक ही समूहपुञ्ज है, उसे निश्चय का स्वरूप जानना चाहिए। एक निजद्रव्य के अनन्त गुण-पर्याय ही का जो केवल निजजातिस्वरूप है, उसे भी निश्चय का रूप जानना चाहिए। एक निजद्रव्य के अनन्तगुणों को ही एक कहना। गुणों की अनन्तशक्ति-पर्यायों का एक ही स्वरूप के द्वारा जो भाव प्रगट होता है, उसे भी निश्चय जानना चाहिए और जिस द्रव्य के परिणामों के परिणमन के आधीन द्रव्य के भाव का उस ही द्रव्य के परिणामरूप परिणमना अन्य परिणाम रूप न परिणमना, उसे भी निश्चय जानना चाहिए। इसप्रकार ऐसे-ऐसे भावों की वचनों के द्वारा व्यवहार से निश्चयसंज्ञा कही है।

भावार्थ :- (१) हे संत! वह जो निज-निज अनन्तगुणों के मिलने से एक पिण्डभाव है, एक संबंध है; उसे ही गुणों का पुञ्ज कहते हैं, उसी गुणपुञ्ज को 'वस्तु' ऐसा नाम कहा है। यह जो वस्तुत्व है, वह गुणों के पुञ्ज के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? अर्थात् इस गुणपुञ्ज को ही वस्तु कहते हैं; अतः इस वस्तु की निश्चयसंज्ञा जाननी चाहिए।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(२) जिस-जिस स्वरूप को धारण करके जो-जो गुण उत्पन्न हुए हैं, वे सब अपने-अपने रूप को धारण करते हैं। गुण का अन्य गुण से जुदा रूप अपने में अनादि-अनंत रहता है। ऐसे पृथक्रूप को ही 'निजजाति' कहते हैं। जो स्वयमेव अनादिनिधन है, वह रूप किसी अन्यरूप से नहीं मिलता और जो रूप है, वही गुण है और जो गुण है, वही स्वरूप है - ऐसा तादात्म्यलक्षण संबंध है। यदि कोई उस रूप की नास्ति (निषेध) का चिन्तवन करे तो गुण की ही नास्ति का चिन्तवन करेगा; अतः जो आप ही आपरूप है, उस रूप को निजजाति स्वभावरूप कहते हैं; इसप्रकार निजरूप की निश्चयसंज्ञा कही है।

(३) पुनः अनन्त-गुणों का एक पुञ्जभाव देखना चाहिए और पृथक्-पृथक् नहीं देखना चाहिए। पुनः अनन्त शक्तिवान जो एक गुण है, उस एक गुण को ही देखना चाहिए; उन पृथक्-पृथक् शक्तियों को नहीं देखना चाहिए, जघन्य-उत्कृष्ट भेदों को भी नहीं देखना चाहिए। उस एक शक्ति को ही देखना चाहिए - ऐसा जो अभेददर्शन या एक ही रूप का दर्शन है, उस अभेददर्शन की भी निश्चयसंज्ञा है।

(४) हे सन्त! गुणों के पुञ्ज में कोई गुण तो नहीं है - यह तो निःसन्देह इसीप्रकार है; परन्तु उस भाव के तीन गुण (अंश) हैं - द्रव्य, गुण और पर्याय। वह भाव गुणों का परिणाम धारण कर परिणमता है, वह भाव इन गुण के परिणाम से पृथक् नहीं है। वह उसी भावरूप परिणमन करता है; अतः अन्यत्र वह कहाँ प्राप्त होगा ?

जैसे पुद्गल वस्तु में स्कंध-कर्म-विकार किसी गुण से तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं हैं, परन्तु उस पुद्‌गल वस्तु के परिणाम उस स्कंध-कर्म-विकारभाव के रूप में परिणमन करते हैं। अन्य द्रव्य के परिणाम इस कर्म-विकार भाव को धारण करके परिणमन नहीं करते। एक पुद्‌गल ही स्वांग धारण करके प्रवर्तन करता है, इसमें सन्देह नहीं।

पुनः इस जीववस्तु के रंजक परिणाम संकोच, विस्तार, अज्ञान, मिथ्यादर्शन, अविरति आदि चेतनविकाररूप होकर परिणमन करते हैं।

इसप्रकार यह चेतन का विकारभाव उस चेतनद्रव्य के परिणाम में ही प्राप्त होता है, कभी अचेतन द्रव्य के परिणाम में दिखाई नहीं देता, यह निःसंदेह है।

अतः विकारभाव अपने-अपने ही द्रव्य के परिणाम में होता है, अपने-अपने द्रव्य के परिणाम के आश्रय से ही वह विकार पाया जाता है; अतः इसे भी निश्चय नाम प्राप्त होता है।

मूल गाथा में आये 'च' शब्द से दूसरे भी निश्चयभाव जानने चाहिए -

(५) जितनी निजवस्तु की परिमिति (क्षेत्र की मर्यादा) होती है, उतनी परिमिति में ही द्रव्य, गुण और पर्याय व्याप्य-व्यापक होकर अपनी-अपनी सत्ता में अनादि-अनन्त ही रहते हैं - यह भी निश्चय कहा जाता है।

(६) जो भाव जिस भाव का प्रतिपक्षी या बैरी है, वह उसी से बैर करता है; अन्यभाव से नहीं करता - यह भी निश्चय है।

(७) जिस काल में जैसी होनहार होती है, उस काल में वैसा ही होता है - यह भी निश्चय है।

(८) जिस-जिस भाव की जैसी-जैसी रीति के द्वारा प्रवर्तना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होनेवाली हो, वे वैसी-वैसी रीति प्राप्त करके ही परिणमते हैं – यह भी निश्चय है।

(९) एकमात्र स्वयं का जो स्वद्रव्य है, उसका नाम भी निश्चय है।

(१०) जो एक होने से एक है। जब एकरूप गुण की मुख्यता होती है, तब अन्य सभी जो अनन्त निजगुणरूप हैं, वे सब एक गुणरूप के भाव होते हैं। भावार्थ इसप्रकार है कि वर्णन करने के लिए तो एक पृथक् गुणरूप लेकर कथन करते हैं; परन्तु उस एक गुणरूप ही सबका रस है। जो यह मानते हैं कि वह एकरूप ही है, अन्यरूप नहीं तो अनर्थ उत्पन्न होगा।

जैसे एक ज्ञानगुण है, उस ज्ञान में अन्य गुण नहीं – ऐसा जिस पुरुष ने माना, उसने ज्ञान को चेतनरहित एवं अस्तित्व, वस्तुत्व, जीवत्व और अमूर्तत्व आदि सब गुणों से रहित माना, यह तो माना ही है; परन्तु ऐसी हालत में वह ज्ञानगुण भी कैसे रहेगा, क्यों कर रहेगा ? अर्थात् वह ज्ञानरूप भी नहीं रह सकता। इससे यहाँ यह बात सिद्ध हुई कि जो एक-एक गुण का रूप है, वह सर्वस्वरस है। इसप्रकार सर्वस्वरस को भी निश्चय कहा जाता है।

(११) कोई द्रव्य किसी द्रव्य से नहीं मिलता, कोई गुण किसी गुण से नहीं मिलता, कोई पर्यायशक्ति किसी पर्यायशक्ति से नहीं मिलती – ऐसा जो अमिलभाव है, उसे भी निश्चय कहा जाता है।

निश्चय का सामान्य अर्थ संक्षेप में इतना ही जानना चाहिए कि निजवस्तु का जो भाव व्याप्य-व्यापक एकमेक सम्बन्धरूप होता है, वही निश्चय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(१२) कर्ताभेद, कर्मभेद और क्रियाभेद – इन तीन भेदों में एक ही स्वभाव देखने में आता है। ये तीनों भेद एक ही भाव से उत्पन्न हुए हैं; अतः ऐसा एक भाव भी निश्चय कहा जाता है।

(१३) स्वभाव गुप्त है तथा प्रगट परिणमन करता है, उसकी नास्ति नहीं है – ऐसा जो अस्तित्वभाव है, वह भी निश्चय है।

इसप्रकार ऐसे-ऐसे भावों की ही निश्चयसंज्ञा जाननी चाहिए – ऐसा जिनागम में कहा गया है।

ऋजुसूत्रनय –

प्रत्येक समय में जो परिणति हो रही है, उसे 'सूक्ष्म ऋजुसूत्र' कहते हैं तथा जो बहुत काल की मर्यादा सहित परिणति होती है अर्थात् जो स्थूल पर्याय है, उसे 'स्थूल ऋजुसूत्र' कहते हैं।

शब्दनय –

जो दोषरहित शब्द का शुद्ध कथन किया जाता है, उसे 'शब्दनय' कहते हैं। जितने शब्द हैं, उतने ही नय हैं।

समभिरूढ़नय –

अनेक अर्थों में जो एक अर्थ मुख्यता को प्राप्त होता है, उसे 'समभिरूढ़' कहते हैं। जैसे 'गो' शब्द के अनेक अर्थ हैं, फिर भी वह 'गाय' के अर्थ में ही समभिरूढ़ है।[१]

उस समभिरूढ़ के अनेक भेद हैं। जैसे सादिरूढ़, अनादिरूढ़,

---

१. भैया भगवतीदास कृत 'अनेकार्थ नाममाला' में निम्न दोहे द्वारा गो शब्द के अनेक अर्थ बताये हैं –

गो घर गो तरु गो दिसा, गो किरना आकास।
गो इन्द्री जल छन्द पुनि, गो वानी जन भास॥५॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सार्थिकरूढ़, आर्थिकरूढ़, भेदरूढ़, अभेदरूढ़, विधिरूढ़, प्रतिषेधरूढ़ इत्यादि।

एवंभूतनय –

जैसा पदार्थ हो, वैसा ही उसका निरूपण करना 'एवंभूतनय' है। जैसे – इन्दतीति इन्द्रः, न शक्रः। (अर्थात् देवराज जब परमैश्वर्य में मग्न होगा, तब उसे इन्द्र ही कहा जावेगा, शक्र नहीं।)

पर्यायार्थिकनय –

१. अनादिनित्यपर्यायार्थिक, जैसे नित्य मेरु आदि।

२. सादिनित्यपर्यायार्थिक, जैसे सिद्धपर्याय।

३. सत्ता को गौण करके उत्पाद और व्यय को ग्रहण करनेवाले स्वभाव से उत्पन्न होनेवाला शुद्धपर्यायार्थिक, जैसे प्रत्येक समय में पर्यायें विनष्ट होती हैं।

४. सत्तासापेक्ष स्वभाव अनित्य अशुद्धपर्यायार्थिकनय, जैसे एक ही समय में पर्याय त्रयात्मक है।

५. कर्मों की उपाधि से निरपेक्ष स्वभाववाला नित्य शुद्धद्रव्य-पर्यायार्थिक, जैसे सिद्धों की पर्यायों के समान संसारियों की पर्यायें भी शुद्ध हैं।

६. कर्मों की उपाधि से सापेक्ष है स्वभाव जिसका – ऐसा नित्य अशुद्धपर्यायार्थिक, जैसे संसारियों की उत्पत्ति और मरण होते हैं।

इसप्रकार पर्यायार्थिक के ६ भेद हैं।

उपसंहार –

ये नय पूर्व-पूर्व, विरुद्ध, महाविषयवाले और उत्तर-उत्तर सूक्ष्म, अल्प, अनुकूल विषयवाले होते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा की अनन्त शक्तियाँ[१]

नयों और प्रमाणों के द्वारा युक्तिपूर्वक मोक्ष का साधन होता है; जिससे अनन्तगुण शुद्ध होते हैं।

सुख या आनन्द –

अनन्तगुणों की उस शुद्धता का फल सुख है। जिसका वर्णन करते हैं –

वस्तु के देखने-जाननेरूप परिणमन से जो सुख या आनन्द होता है; वह अनुपम, अबाधित, अखण्डित, अनाकुल और स्वाधीन होता है। यह द्रव्य-गुण-पर्याय सभी का सर्वस्व है। जैसे सब उद्यम फल के बिना व्यर्थ होता है और फल के साथ कार्यकारी होता है, वैसे ही सुख कार्यकारी वस्तु है।

इसप्रकार सुख का वर्णन पूरा हुआ।

जीवनशक्ति या जीवत्वशक्ति –

यह आत्मा अनादिनिधन है और अनन्तगुणयुक्त है, उसके एक-एक गुण में अनन्तशक्ति है।

---

१. समयसार के परिशिष्ट में आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने ४७ शक्तियों का निरूपण किया है। यहाँ उनके आधार पर सभी का तो नहीं, लेकिन कुछ शक्तियों का विस्तार से निरूपण किया गया है। आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी ने उन ४७ शक्तियों पर अध्यात्मरस से ओत-प्रोत प्रवचन भी किए हैं, जो टेप प्रवचन में उपलब्ध हैं तथा उन टेप प्रवचनों के आधार पर लिखित 'प्रवचन रत्नाकर' के नाम से प्रकाशित श्रृंखलाओं में भी शीघ्र ही उपलब्ध हो सकेंगे। – **सम्पादक**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथम जीवनशक्ति है। आत्मा को कारणभूत चैतन्यमात्र भाव को धारण करनेवाली **जीवनशक्ति** है। उस जीवनशक्ति के द्वारा जो जीवित रहता आया है, जीवित रह रहा है और जीवित रहेगा – उसे जीव कहते हैं। यह जीवनशक्ति चित्प्रकाशमण्डित द्रव्य में है, गुण में है और पर्याय में भी है; इसीकारण ये सब जीव हैं, फिर भी जीव एक है। यदि जीव तीन भेदों में रहने लगे तो वह तीन प्रकार का हो जायेगा, लेकिन ऐसा है नहीं।

द्रव्य, गुण और पर्याय – जीव की अवस्थाएँ हैं और जीव तीनों रूप एक वस्तु है। जैसे गुण में अनन्त भेद हैं, वैसे जीव में नहीं हैं, जीव का स्वरूप अभेद है।

शंका :– यदि जीव अभेदरूप है तो भेद के बिना अभेद कैसे हुआ ? अनन्तगुण नहीं होते तो द्रव्य भी नहीं होता। इसीप्रकार पर्याय नहीं होती तो जीववस्तु भी नहीं होता; अतः द्रव्य, गुण और पर्याय का भेद कहने पर अभेद सिद्ध होता है।

समाधान :– हे शिष्य! भेद के बिना अभेद तो नहीं होता, परन्तु भेद वस्तु का अंग है। अनेक अंगों से बनी हुई एक वस्तु होती है।

जैसे एक नगर है, उसमें बहुत से मोहल्ले हैं और प्रत्येक मोहल्ले में बहुत से घर हैं; अतः पृथक्-पृथक् अंगों द्वारा नगर नहीं हो सकता, सबकी एकतारूप ही नगर है। जैसे एक मनुष्य के अनेक अंग होते हैं, एक अंगरूप मनुष्य नहीं होता, सब अंगरूप मनुष्य होता है।

उसीप्रकार केवल द्रव्यरूप या केवल गुणरूप या केवल पर्यायरूप ही जीव नहीं है, जीववस्तु तो द्रव्य-गुण-पर्याय का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एकत्व है। यदि एक ही अंग में जीव होने लगे तो ज्ञानजीव, दर्शनजीव – इसप्रकार अनन्तगुणों में अनन्त जीव होने लगेंगे। अतः अनन्तगुणों की पुञ्जरूप जीववस्तु है।

शंका :– जब यहाँ चेतनाभाव को जीव का लक्षण कहा है, फिर चैतन्यशक्ति (चितिशक्ति) का कथन पृथक् क्यों किया गया है ?[१]

समाधान :– जो चैतन्यशक्ति (चितिशक्ति) है, वह जड़ के अभावस्वरूप है और ज्ञानचेतना आदि अनन्त चेतनाओं को धारण किए है; अतः यदि अनन्त चेतनाओं की प्रकाशरूप चित्शक्ति हो तो जीवनशक्ति रहती है। चेतना के अभाव में जीव का अभाव है। चेतना प्रकाशरूप है। अनन्तगुण-पर्यायरूप चैतन्यप्राणों को धारण करके जीवनशक्ति सदा जीवित रहती है। विशेषतः गुणतत्त्व, पर्यायतत्त्व और द्रव्यतत्त्व – इन तीनोंमय जीवतत्त्व को जीवनशक्ति प्रकाशित करती है; अतः जब चेतनालक्षण का प्रकाश सदा प्रकाशित रहता है, तब जीवत्व नाम प्राप्त होता है; क्योंकि जीववस्तु का लक्षण चेतना है।

तथा चितिशक्ति को पृथक् कहने का कारण यह है कि चेतनशक्ति अपनी अनन्त प्रकाशरूप महिमा को धारण करती है – यही दिखाने के लिए उसे पृथक् कहा है। वास्तव में देखा जाए

१. समयसार परिशिष्ट की ४७ शक्तियों में पहली जीवनशक्ति और दूसरी चितिशक्ति है। जीवत्वशक्ति के स्वरूप में 'चैतन्यमात्रभाव का धारण करना जिसका लक्षण है' – ऐसा कहा है। अर्थात् चितिशक्ति का अन्तर्भाव जीवत्वशक्ति में ही हो जाता है, फिर भी चितिशक्ति का पृथक् कथन किया गया है – इस संदर्भ में ही यहाँ शंकाकार की शंका है। पण्डित दीपचन्दजी ने भी इसका समाधान आचार्य अमृतचन्द्र के द्वारा लिखित उन शक्तियों के विवेचन के माध्यम से बड़े ही सुन्दर ढंग से दिया है। – **सम्पादक**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो यह लक्षण जीवनशक्ति का ही है। जैसे सामान्यचेतना चेतनाओं की पुञ्जरूप है और विशेषचेतना ज्ञानचेतना, दर्शनचेतना आदि अनन्तरूप है। सामान्यचेतना से विशेषचेतना पृथक् नहीं है। विशेषचेतना के बिना चेतना का स्वरूप जाना नहीं जा सकता। इसीप्रकार जीवनशक्ति से चेतनाभाव पृथक् नहीं है; परन्तु चेतनाभाव का विशेष कथन किए बिना जीवनशक्ति का स्वरूप जाना नहीं जा सकता।

यह जीवनशक्ति अनादिनिधन अनन्त महिमा को धारण करती है, सब शक्तियों में सार है और सबका जीव (बीजरूप) है। ऐसी जीवनशक्ति को जानने से यह जीव जगतपूज्य पद को प्राप्त करता है; अतः जीवनशक्ति को अवश्य जानना चाहिए।

प्रभुत्वशक्ति –

जो अखण्डित प्रतापवाली और स्वतंत्रता से शोभित है, उसे **प्रभुत्वशक्ति** कहते हैं। सामान्यदृष्टि से एकरूप वस्तु का प्रभुत्व शोभित होता है और विशेषदृष्टि से द्रव्य का प्रभुत्व पृथक् है, गुण का प्रभुत्व पृथक् है और पर्याय का प्रभुत्व पृथक् है।

शंका :– द्रव्य के प्रभुत्व से गुण और पर्याय का प्रभुत्व है तथा गुण और पर्याय के प्रभुत्व से द्रव्य का प्रभुत्व है – ऐसा क्यों है ?

समाधान :– द्रव्य से गुण और पर्याय हैं तथा गुण और पर्याय से द्रव्य है। द्रव्य, गुणी है और गुण, गुण है। गुणी से गुण की सिद्धि है और गुण से गुणी की सिद्धि है।

अब विशेष प्रभुत्व का कथन करते हैं –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य का प्रभुत्व – द्रव्य में जो प्रभुत्व है, वह गुण और पर्याय के अनन्त प्रभुत्व सहित है, अखण्डित प्रताप सहित है। वह गुण और पर्याय को द्रवित करता है; अतः गुण और पर्याय के स्वभाव को धारण करके द्रव्य की अनन्त महिमारूप प्रभुत्व उसमें प्रकट करता है। इससे एक अचल द्रव्य का प्रभुत्व अनेक स्वभाववाले प्रभुत्व का कर्ता बनता है। इसप्रकार सब प्रभुत्वों का पुञ्ज द्रव्यप्रभुत्व है।

गुण का प्रभुत्व – यहाँ गुण के प्रभुत्व का कथन सत्तागुण के प्रभुत्व द्वारा करते हैं –

द्रव्य का लक्षण सत्ता है। यह सत्तारूप लक्षण अखण्डित प्रतापवाला है और स्वतंत्रता से शोभित है। वह सामान्य-विशेष प्रभुत्व को धारण करता है। वहाँ सत्ता का सामान्यप्रभुत्व कहते हैं। सत्ता अखण्डित प्रताप को धारण करती है, स्वतंत्र शोभा को धारण करती है; स्वरूपरूप विराजमान रहती है। इसमें द्रव्यसत्त्व, गुणसत्त्व और पर्यायसत्त्व का विशेष कथन नहीं किया जाता। यही सत्ता का सामान्य प्रभुत्व है।

द्रव्यसत्त्व का प्रभुत्व – द्रव्यसत्त्व के प्रभुत्व को ऊपर विशेष प्रभुत्व के अन्तर्गत द्रव्य का प्रभुत्व कहते समय कहा जा चुका है, वहीं से जान लेना चाहिए।

सर्व गुणसत्त्व का प्रभुत्व – गुण अनन्त हैं, उनमें एक प्रदेशत्वगुण है, उसका जो सत्त्व है, उसे '**प्रदेशसत्त्व**' कहते हैं।

अनन्तगुण अपनी महिमा को धारण करके विराजमान हैं और प्रत्येक गुण में अनन्तशक्ति-प्रतिशक्ति है। अनन्तमहिमा को धारण करनेवाली प्रत्येक शक्ति की अनन्त पर्यायें हैं और वे सब प्रत्येक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रदेश में हैं और ऐसे असंख्यातप्रदेश अपने अखण्डित प्रभुत्व को धारण करके अपनी प्रदेशसत्ता के आधार से हैं; अतः **प्रदेशसत्त्व का प्रभुत्व** सभी गुणों के प्रभुत्व का कारण है।

सूक्ष्मसत्ता का प्रभुत्व भी अनन्तगुणों से प्रभुत्व का कारण है। यदि सूक्ष्मगुण न हो तो सभी द्रव्य स्थूल होकर इन्द्रियग्राह्य हो जाएंगे और तब वे अपनी अनन्तमहिमा को धारण न कर सकेंगे; अतः सब गुण अपनी महिमा सहित सूक्ष्मसत्ता के प्रभुत्व से हैं। ज्ञान का सत् सूक्ष्म है; अतः इन्द्रियग्राह्य नहीं है – ऐसे ही अनन्तगुणों का सत् सूक्ष्म है; अतः अनन्तमहिमा को धारण किए हैं; क्योंकि अनन्तगुणों की सत्ता का प्रभुत्व एक सूक्ष्मसत्ता की प्रभुता से है।

इसीप्रकार सभी गुणों का प्रभुत्व पृथक्-पृथक् जानना चाहिए। बहुत विस्तार के भय से यहाँ नहीं लिखा है।

पर्याय का प्रभुत्व – पर्याय के परिणमनरूप वेदकभाव के द्वारा स्वरूपलाभ, विश्राम या स्थिरता होती है, वह वस्तु के सर्वस्व को वेदन करके प्रकट करती है। ऐसे अखण्डित प्रभुत्व को जो धारण करता है, उसे पर्याय का प्रभुत्व कहते हैं।

इसप्रकार प्रभुत्वशक्ति को जानकर जीव अपने अनन्त प्रभुत्व को प्राप्त करता है।

वीर्यशक्ति –

अपने स्वरूप को निष्पन्न करनेवाली सामर्थ्यरूप **वीर्यशक्ति** है। उसके सामान्य और विशेष के भेद से दो भेद हैं। वस्तु के स्वरूप को निष्पन्न रखने की सामर्थ्य '**सामान्यवीर्यशक्ति**' है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'**विशेषवीर्यशक्ति**' के सामान्यरूप से तीन भेद हैं – १. द्रव्यवीर्यशक्ति, २. गुणवीर्यशक्ति, ३. पर्यायवीर्यशक्ति। विशेषरूप से ४. क्षेत्रवीर्यशक्ति, ५. कालवीर्यशक्ति, ६. तपवीर्यशक्ति, ७. भाववीर्यशक्ति आदि हैं।

१. द्रव्यवीर्यशक्ति – द्रव्यवीर्य गुण-पर्यायवीर्य का समुदाय है।

शंका :– जो गुण-पर्याय को द्रवित करे अर्थात् उनमें व्यापक हो, वह द्रव्य है और गुण-पर्याय का समुदाय भी द्रव्य है। यहाँ गुण-पर्याय का समुदाय और गुण-पर्याय में व्यापक – क्या इनमें विशेष अन्तर है और क्या द्रव्य में भी अन्तर है ?

समाधान :– व्यापकभाव के दो भेद हैं – १. भिन्नव्यापक और २. अभिन्नव्यापक।

भिन्नव्यापक के दो भेद हैं – १. बन्धव्यापक और २. अबंध-व्यापक। जैसे तिल में तेल बन्धव्यापक है, वैसे ही देह में आत्मा बन्धव्यापक है और धन आदि में अबन्धव्यापक है।

शुद्ध या अशुद्ध अवस्था में अभिन्नव्यापक है। गुण व पर्याय की अपेक्षा से अभिन्नव्यापक के दो भेद हैं – १. युगपत् सर्वदेश-व्यापक और २. क्रमवर्ती एकदेशव्यापक। द्रव्य-गुण युगपत् सर्वदेश-व्यापक है और पर्याय क्रमवर्ती एकदेशव्यापक; क्योंकि सब गुण-पर्याय से एक द्रव्य उत्पन्न हुआ है; अतः युगपत् सर्वदेशव्यापक अभिन्नता तथा क्रमवर्ती एकदेशव्यापक अभिन्नता गुण-पर्याय से हुई। इसप्रकार व्यापकता में गुण-पर्याय का समुदाय प्रकट हुआ; अतः 'गुण-पर्याय में व्यापकता' – ऐसा कहने में कथनमात्र का भेद है। वस्तु का स्वभाव अन्य-अन्य भेदों से और अभेद सत्ता से सिद्ध है। द्रव्य का विशेष स्वरूप पहले कहा जा चुका है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसके रखने की सामर्थ्य '**द्रव्यवीर्यशक्ति**' है।

शंका :– यह द्रव्यवीर्य भेद है या अभेद ? अस्ति है या नास्ति ? नित्य है या अनित्य ? एक है या अनेक ? कारण है या कार्य ? सामान्य है या विशेष ?

समाधान :– द्रव्यवीर्य का सामान्यदृष्टि से कथन किया जाए, तब अभेद है और जब गुणसमुदाय की विवक्षा से कथन किया जाए, तब भेद है। यहाँ गुण का भेद अलग है; अतः इस विवक्षा में भेद आया; परन्तु अभेद को सिद्ध करने के लिए यह भेद है, भेद के बिना अभेद नहीं होता; अतः 'भेदाभेद' – ऐसा कहा जाता है।

द्रव्यवीर्य अपने चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति है और परचतुष्टय की अपेक्षा नास्ति है।

द्रव्यवीर्य अपनी अपेक्षा नित्य है और पर्यायवीर्य भी इस द्रव्यवीर्य में अन्तर्गर्भित होता है; अतः उसकी अपेक्षा अनित्य है। द्रव्यवीर्य नित्य है, उसे पर्यायवीर्य भी सिद्ध करता है; अतः नित्य का साधन अनित्य है। द्रव्य का स्वभाव नित्यानित्यात्मक है, अनेक धर्मात्मक है।

नयचक्र (आलापपद्धति) में कहा भी है -

नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः।[१]

सामान्यार्थ :– प्रमाण की अपेक्षा द्रव्य को नानास्वभाव से युक्त जानना चाहिए।

१. यह पंक्ति आलापपद्धति के श्लोक क्रमांक ९ में दी गई है, साथ ही द्रव्यस्वभाव-प्रकाशक नयचक्र में भी यह श्लोक प्राकृत में दिया गया है, अतः नयचक्र के साथ ऊपर कोष्ठक में आलापपद्धति भी लिख दिया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शंका :– यदि पर्याय स्वभाव से अनित्य है तो पर्याय को अनित्य कहो, द्रव्य को अनित्य क्यों कहते हो ?

समाधान :– उपचार से द्रव्य को अनित्य कहते हैं। लक्षण की अपेक्षा पर्याय को अनित्य कहते हैं।

शंका :– उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत्ता का लक्षण है और सत्ता द्रव्य का लक्षण है; अतः उसे पर्याय का लक्षण नहीं कहना चाहिए।

समाधान :– उत्पाद-व्यय भी पर्यायसत्ता का ही लक्षण है, जिसे उपचार से द्रव्य में कहा है। नयचक्र (आलापपद्धति) में कहा भी है – "**द्रव्ये पर्यायोपचारः, पर्याये द्रव्योपचारः।**" द्रव्य में पर्याय का उपचार और पर्याय में द्रव्य का उपचार किया जाता है; अतः उपचार से ही कथन किया गया है। अनित्य द्रव्य मूलभूत वस्तु नहीं है – ऐसा जानना चाहिए।

द्रव्य की अपेक्षा एक है और गुण-पर्यायस्वभाव की अपेक्षा अनेक है। स्वभाव से एक है; अतः उपचार से अनेक कहा है। एक स्वभाव सिद्ध करने के लिए अनेकपना उपचार से सिद्ध किया है।

कारणरूप द्रव्य पूर्वपरिणाम से युक्त है और कार्यरूप द्रव्य उत्तरपरिणाम से युक्त है। कारण-कार्यरूप स्वभाव द्रव्य ही में है; अतः नय की विवक्षा से द्रव्य में कारण-कार्य सिद्ध करने में दोष नहीं। पूर्वपरिणामग्राहकनय को उत्तरपरिणामग्राहकनय द्वारा सिद्ध करना चाहिए।

सामान्य द्रव्यवीर्य का कथन विशेष गुण-पर्यायवीर्य के द्वारा किया जाता है; अतः सामान्य-विशेषरूप है।

द्रव्यवीर्य के ये सब विशेषण नय के द्वारा कहे हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(२) गुणवीर्यशक्ति :– गुण को धारण करने की सामर्थ्य **गुणवीर्यशक्ति** हैं। यह सामान्य गुणवीर्य का कथन हुआ, अब विशेष गुणवीर्य का कथन करते हैं –

ज्ञानगुण में ज्ञायकता को रखने की, धारण करने की सामर्थ्य ज्ञानगुणवीर्य है। दर्शन में देखने की शक्ति है; अतः उसको रखने की, धारण करने की सामर्थ्य दर्शनवीर्य है। सुख को रखने की, धारण करने की सामर्थ्य सुखवीर्य है। ऐसे ही अन्य गुणों की रखने की सामर्थ्यवाले विशेष गुणवीर्य हैं। प्रत्येक गुण में वीर्यशक्ति के प्रभाव से ऐसी सामर्थ्य है।

एक सत्तागुण है, जो वीर्य के प्रभाव से ऐसी महिमा धारण करता है। द्रव्य-सत्ता-वीर्य के प्रभाव से द्रव्य में 'है' पना (अस्तित्व) की सामर्थ्य है। पर्याय-सत्ता-वीर्य के प्रभाव से पर्याय में 'है' पना (अस्तित्व) की सामर्थ्य है।

एक सूक्ष्म-गुण-सत्ता-वीर्य में ऐसी शक्ति है, जिससे सब गुण सूक्ष्म हैं – ऐसी सामर्थ्य है। ज्ञान सूक्ष्म है – ऐसी इसी से सामर्थ्य है। ऐसे ही सब गुणों में वीर्यसत्ता का प्रभाव फैल रहा है और इसीप्रकार सब गुणों में अपने-अपने गुण का वीर्य अनन्त प्रभाव को धारण करता है, जिसका वर्णन विस्तार के भय से नहीं किया जा रहा है।

ज्ञान असाधारण गुण है और सत्ता साधारण गुण है। इनमें जब सत्ता की मुख्यता ली जाती है, तब कहा जाता है कि ज्ञान सत्ता के आधार से रहता है; अतः सत्ता प्रधान है। वह द्रव्य-गुण-पर्याय के रूप को देखता है, ज्ञान के भी रूप को रखता है; अतः असाधारण होते हुए भी साधारण है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसीप्रकार जब ज्ञान की मुख्यता ली जाती है, तब कहा जाता है कि यदि ज्ञान न होता तो क्या सत्ता अचेतन नहीं हो जाती अथवा यह कहा जाता है कि चेतना ज्ञान से है और चेतना से चेतन की सत्ता है; अतः चेतनसत्ता को धारण करने में ज्ञानचेतना कारण है। सर्वज्ञशक्ति भी ज्ञान से है, जो सबमें प्रधान है; पूज्य है। इसप्रकार जैसा ज्ञान हो, उसीप्रकार सब गुण होते हैं; जैसे निगोदिया के ज्ञान हीन है तो उसके सभी गुण अविकसित या अप्रकट हैं। ज्ञान ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों सभी गुण बढ़ते जाते हैं। जैसे ज्यों-ज्यों स्वसंवेदन ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों सुख आदि सब गुण बढ़ते जाते हैं। यहाँ तक कि बारहवें गुणस्थान में चारित्र के हो जाने पर भी ज्ञान के बिना सुख 'अनन्तसुख' नाम नहीं पाता।

अतः ज्ञानगुण सब चेतना में प्रधान है, उसी के कारण चेतनासत्ता है। साधारणसत्ता ने भी जो चेतनासत्ता नाम प्राप्त किया, वह चेतना से ही प्राप्त किया और चेतना में ज्ञान प्रधान है; अतः साधारणसत्ता अप्रधान थी, उसको असाधारण चेतना के द्वारा ज्ञान की प्रधानता से असाधारण चेतनसत्ता का प्रधान नाम प्राप्त हुआ है। इसप्रकार ऐसी महिमा सत्ताज्ञान में सत्ता-ज्ञान-वीर्य के कारण है, अतः वीर्यगुण प्रधान है।

(३) पर्यायवीर्यशक्ति – जो वस्तुरूप परिणमन करे, उसे पर्याय कहते हैं और उसे निष्पन्न रखने की, धारण करने की सामर्थ्य को '**पर्यायवीर्यशक्ति**' कहते हैं। जब परिणाम द्वारा वस्तु का वेदन किया जाए, गुण का वेदन किया जाए, तब वस्तु प्रकट होती है। वस्तु और गुण का स्वरूप पर्याय द्वारा प्रकट होता है। यदि वस्तुरूप परिणमन न हो तो वस्तु की सत्ता ही नहीं रहेगी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसीप्रकार यदि गुणरूप परिणमन न हो तो गुण का स्वरूप ही न रहे। ज्ञानरूप परिणमन नहीं होने पर ज्ञान ही नहीं रह सकेगा; अतः यदि सब गुण परिणमन न करें तो सब गुण कैसे रह सकेंगे? सबका मूल कारण पर्याय है। पर्याय अनित्य है, जो नित्य का कारण है; अतः वस्तु नित्यानित्य है। पर्यायरूपी चंचल तरंगें द्रव्यरूपी ध्रुवसमुद्र को दर्शाती हैं।

शंका :– पर्याय वस्तु है या अवस्तु ? यदि वस्तु है तो वस्तु को वस्तुसंज्ञा न देकर 'पर्याय ही वस्तु है' – ऐसा कहना चाहिए और यदि अवस्तु है तो इसका कोई स्वरूप नहीं रह सकेगा, इसप्रकार विरोध प्राप्त होता है।

समाधान :– द्रव्य–गुण–पर्यायरूप वस्तु है। पर्याय, परिणाम, द्रव्यवेदना, गुण–उत्पाद आदि रूप पर्याय है; अतः इस विवक्षा से पर्याय को वस्तुसंज्ञा दी जाती है। तीनों की परिणाम–सत्ता अभेद है; अतः परिणामस्वरूप पर्याय को परिणाम की अपेक्षा वस्तुसंज्ञा दी जाती है, द्रव्य की अपेक्षा से परिणाम की वस्तुसंज्ञा नहीं है। यदि परिणाम अपेक्षा से भी परिणाम को 'वस्तु' न कहा जाए तो परिणाम कोई वस्तु ही न रहे, नाशरूप हो जाए; अतः विवक्षा से प्रमाण है। पर्यायवस्तु द्रव्यरूप नहीं है। इसीप्रकार अनन्तगुण भी ध्रुवरूप वस्तु के कारण होने से वस्तु हैं, कार्यरूप नहीं। यह ध्रुवरूप कहने की विवक्षा अलग है तथा कार्य परिणाम ही दिखाता है – यह विवक्षा अलग है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि नाना भेदों से नाना विवक्षायें होती हैं, नयों के ज्ञान से तो विवक्षाओं का ज्ञान होता है; अतः पर्यायवस्तु द्रव्यात्मक नहीं है, पर्यायरूप है – यह कथन सिद्ध हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव क्या हैं ? उसे कहते हैं – पर्याय के उत्पन्न होने का क्षेत्र द्रव्य है। स्वरूप क्षेत्र के प्रत्येक प्रदेश में परिणामशक्ति है और उस शक्ति का स्थान ही क्षेत्र है। समय की मर्यादा काल है अर्थात् निजवर्तना की मर्यादा काल है तथा जो सर्वप्रकट है, परिणमन ही जिसका सर्वस्व है और जो सम्पूर्ण निजलक्षण अवस्थाओं से मण्डित है, वही भाव है।

इसप्रकार जो पर्याय के स्वरूप को सदा निश्चल रखे – ऐसी सामर्थ्य का नाम ही पर्यायवीर्यशक्ति है।

(४) क्षेत्रवीर्यशक्ति – अपने प्रदेशों अर्थात् क्षेत्रों को परिपूर्ण निष्पन्न रखने की धारण करने की सामर्थ्य को '**क्षेत्रवीर्यशक्ति**' कहते हैं। क्षेत्रवीर्य के कारण ही क्षेत्र है। क्षेत्र में अनन्तगुण हैं, अनन्त पर्यायें हैं। प्रत्येक गुण के रूप में सब गुणों का रूप सिद्ध होता है। सत्ता में सब गुण हैं। सत्ता लक्षण सबमें व्यापक है – ज्ञान है, दर्शन है, द्रव्य है, पर्याय है। इसप्रकार द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व आदि सभी गुणों में जानना चाहिए।

क्षेत्र में गुण का विलास है, पर्याय का विलास है तथा द्रव्यरूपी मन्दिर की मूलभूमि को क्षेत्र या प्रदेश कहा जाता है। क्षेत्र या प्रदेश में अनन्तगुण हैं। क्षेत्र से द्रव्य की मर्यादा जानी जाती है। द्रव्य-गुण-पर्याय का विलास, निवास और प्रकाश क्षेत्र के आधार से है। यह क्षेत्र सबका अधिकरण है। जिसप्रकार नरक का क्षेत्र दुःख उत्पन्न करने का अधिकरण है तथा देव आदि भी उन नारकियों का दुःख नहीं मिटा सकते – ऐसा उस क्षेत्र का प्रभाव है तथा स्वर्ग की भूमि में सहज शीत आदि की वेदना नहीं है – ऐसा उस क्षेत्र का प्रभाव है। उसीप्रकार आत्मप्रदेश का जो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्षेत्र है, उसका भी प्रभाव ऐसा है कि वह अनन्तचेतना, द्रव्य, गुण, पर्याय के विलास को प्रकट करता है। इतनी विशेषता है कि नरक आदि के क्षेत्र तो भिन्न वस्तु हैं, लेकिन आत्मप्रदेश के क्षेत्र गुण-पर्याय से अभिन्न हैं।

इस प्रदेश या क्षेत्र में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी सिद्ध होते हैं। उपचार से एक प्रदेश को मुख्य मानकर उसका उत्पाद व दूसरे प्रदेश को गौण मानकर उसका व्यय समझना चाहिए तथा जो ध्रुवरूप अनुस्यूतशक्ति है, वह मुख्य-गौण रहित वस्तुरूप शक्ति है – ऐसा समझना चाहिए।

इसप्रकार प्रदेश या क्षेत्र की अनन्तमहिमा है। यह प्रदेश या क्षेत्र लोकालोक को देखने के लिए दर्पण के समान है। जिस जीव ने इस प्रदेश या प्रदेश-क्षेत्र में निवास किया है, वही अनन्तसुख का भोक्ता हुआ है। ऐसे प्रदेश-क्षेत्र को रखने की, धारण करने की सामर्थ्य का नाम 'क्षेत्रवीर्यशक्ति' है।

(५) कालवीर्यशक्ति – अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की मर्यादा या काल को रखने की, धारण करने की सामर्थ्य का नाम **'कालवीर्यशक्ति'** है। द्रव्य की वर्तना द्रव्यकाल है, गुण की वर्तना गुणकाल है और पर्याय की वर्तना पर्यायकाल है।

शंका :– द्रव्य की वर्तना तो गुण-पर्याय की वर्तना से होती है; अतः गुण और पर्याय की वर्तना भी द्रव्य की वर्तना हुई तथा द्रव्य की वर्तना से गुण-पर्याय की वर्तना है; अतः द्रव्य की वर्तना में गुण-पर्याय की वर्तना कहना चाहिए तथा गुण-पर्याय की वर्तना में द्रव्य की वर्तना कहना चाहिए।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधान :– हे भव्य! तूने जो प्रश्न किया है, वह सत्य है; परन्तु जहाँ जो विवक्षा हो, उसी को कहना चाहिए। गुण और पर्याय के पुञ्ज की वर्तना द्रव्य की वर्तना है, क्योंकि गुण पर्याय का पुञ्ज है और द्रव्य का स्वभाव गुण-पर्याय है; अतः द्रव्य अपने स्वभावरूप वर्तता है। इसप्रकार द्रव्यवर्तना में स्वभाव आया।

इतनी विशेषता है कि गुणवर्तना का अलग से विचार किया जाय तो गुणवर्तना में गुणवर्तना है, ज्ञानवर्तना में ज्ञानवर्तना है और दर्शनवर्तना में दर्शनवर्तना है। इसप्रकार पृथक्-पृथक् गुणों में पृथक्-पृथक् गुणवर्तना है।

पर्याय में पर्यायवर्तना है, परन्तु उसमें इतनी विशेषता है कि जिससमय जो पर्याय है; उस पर्याय की वर्तना उसमें है और दूसरे समय की पर्याय की वर्तना दूसरे समय की पर्याय में है। एक पर्याय में दूसरी पर्याय की वर्तना नहीं है। पर्याय पृथक् है, जिससे द्रव्य की, गुण-पर्याय के पुञ्ज की वर्तना किसी एक गुण में या किसी एक पर्याय में नहीं आती है; क्योंकि एक गुणवस्तु द्रव्यरूप नहीं हो सकती। यदि गुणपुञ्ज (द्रव्य) एक गुण में आए तो गुण अनन्त होने से अनन्तद्रव्य हो जायेंगे। गुणपुञ्जरूप द्रव्य की वर्तना को किसी एक गुण की वर्तना नहीं कहा जा सकता; क्योंकि किसी एक गुणरूप द्रव्य नहीं हो सकता। गुणों का पुञ्ज गुणों के द्वारा गुणपुञ्ज में वर्तता है, उसी में द्रव्यविवक्षा से द्रव्य की वर्तना, गुणविवक्षा से गुण की वर्तना और पर्यायविवक्षा से पर्याय की वर्तना होती है। इसप्रकार विवक्षा से अनेकांत की सिद्धि होती है।

अतः द्रव्य-गुण-पर्याय की जो वर्तना या मर्यादा या स्थिति है, उसको निष्पन्न रखने की सामर्थ्य का नाम 'कालवीर्यशक्ति' है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(६) तपवीर्यशक्ति – निश्चय और व्यवहाररूप दो भेदों को धारण करने की सामर्थ्यरूप **तपवीर्यशक्ति** है।

व्यवहाररूप बारह प्रकार के तथा परिषह सहनेरूप तप है। तप से कर्मों की निर्जरा तब होती है, जब इच्छाओं के निरोधरूप वर्तन होता है; पर–इच्छाएँ मिटती हैं, स्वरस का अनुभव होता है – ऐसे वास्तविक व्यवहार साधन द्वारा सिद्धि होती है, उसे निष्पन्न रखने की सामर्थ्य का नाम 'व्यवहारतपवीर्यशक्ति' है, जिसके प्रभाव से अनेक ऋद्धियाँ उत्पन्न होती हैं।

अब 'निश्चयतपवीर्यशक्ति' का स्वरूप कहते हैं – तप का अर्थ है तेज और तेज का अर्थ है अपनी भासुर (तेजस्वी) अनन्तगुणचेतना की प्रभा का प्रकाश – इसे निष्पन्न रखने की सामर्थ्य का नाम 'निश्चयतपवीर्यशक्ति' है।

ज्ञानचेतना का स्वसंवेदन प्रकाश और स्व–परप्रकाश निजी प्रभाभार के विकास से विराजमान तेज है। इसीप्रकार दर्शन निराकार उपयोग, सर्वदर्शित्व सामान्यचेतना के प्रभाभार के प्रकाश का तेज है। इसीप्रकार अनन्तगुणों के तेजपुञ्ज के प्रभाभार के प्रकाशरूप द्रव्य का तेज है, पर्यायस्वरूप के प्रभाभार के प्रकाशरूप पर्याय का तेज है। ऐसे ही द्रव्य–गुण–पर्याय के प्रभाभार के प्रकाश को तप कहते हैं, उसे निष्पन्न रखने की सामर्थ्य का नाम 'निश्चयतपोवीर्यशक्ति' है।

(७) भाववीर्यशक्ति – जिसके प्रभाव से वस्तु प्रकट होती है, उसे 'भाववीर्यशक्ति' कहते हैं। वस्तु का सर्वस्वरस भाव है। भाव वस्तु का स्वभाव है और भाव से वस्तु का वस्तुत्व जाना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाता है। जैसे भावार्थ से अक्षरार्थ सफल होता है, वैसे ही भाव से वस्तु सफल होती है। वस्तु का उपादान अक्रम-क्रम स्वभावभाव रूप है, उसके तीन भेद हैं - १. द्रव्यभाव, २. गुणभाव और ३. पर्यायभाव।

गुण-पर्याय के समुदायरूप भाव को 'द्रव्यभाव' कहते हैं। गुणभाव के अनन्त भेद हैं। ज्ञान द्रव्य है, जानपनेरूप शक्ति का भाव ज्ञानगुण है। ज्ञेयाकार पर्याय के द्वारा जो ज्ञान होता है, वह पर्याय है। ज्ञान के भाव द्वारा तीनों सिद्ध होते हैं। भावगुण के द्वारा गुणी सिद्ध होता है, वह द्रव्यभाव है; परन्तु 'गुण के द्वारा गुणी' - ऐसा कहने से भाव ही से द्रव्य की सिद्धि हुई है और इस भाव ही से पर्याय की सिद्धि होती है।

गुण का जो शक्तिरूप भाव है तथा गुण का जो पर्यायरूप भाव है, उसे गुणभाव कहते हैं।

पर्याय में परिणमनशक्ति का जो लक्षण है, वह पर्यायभाव है। प्रत्येक गुण का भाव पृथक्-पृथक् है। पर्याय का वर्तमानभाव अतीतभाव से नहीं मिलता, अतीतभाव भविष्यभाव से नहीं मिलता, वर्तमानभाव भविष्य भाव से नहीं मिलता तथा भविष्य भाव वर्तमान व अतीतभाव से नहीं मिलता। जो परिणाम वर्तमान में है, उसका भाव उसी में है। इसप्रकार भाव को निष्पन्न रखने की सामर्थ्य का नाम '**भाववीर्यशक्ति**' है।

गुण की विशेषता - एक गुण में सब गुणों का रूप होता है। वस्तु में अनन्तगुण हैं और प्रत्येक गुण में सब गुणों का रूप होता है; क्योंकि सत्तागुण है तो सब गुण हैं; अतः सत्ता के द्वारा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सब गुणों की सिद्धि हुई। सूक्ष्मगुण है तो सब गुण सूक्ष्म हैं। वस्तुत्वगुण है तो सब गुण सामान्य-विशेषरूप हैं। द्रव्यत्वगुण है तो वह द्रव्य को द्रवित करता है, व्याप्त करता है। अगुरुलघुत्वगुण है तो सब गुण अगुरुलघु हैं। अबाधित गुण है तो सब गुण अबाधित हैं। अमूर्तिकगुण है तो सब गुण अमूर्तिक हैं।

इसप्रकार प्रत्येक गुण सब गुणों में हैं और सबकी सिद्धि का कारण है। प्रत्येक गुण में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों सिद्ध करना चाहिए। जैसे एक ज्ञानगुण है, उसका ज्ञानरूप 'द्रव्य' है, उसका लक्षण 'गुण' है। उसकी परिणति 'पर्याय' है और आकृति 'व्यञ्जन-पर्याय' है।

शंका :– यदि परिणति पर्याय है और ज्ञान पर्याय के द्वारा ज्ञेय में आया है; फिर भी परिणति तो ज्ञेयों में नहीं आई तो ज्ञान पर्याय के द्वारा ज्ञेयों में कैसे आया ?

समाधान :– ज्ञान की परिणति ज्ञेयों में अभेद की अपेक्षा या तादात्म्य की अपेक्षा नहीं आयी। पर्याय की शक्ति ज्ञेयों में उपचारपरिणति से परिणमी है अर्थात् आयी है। उपचार से ही उसे ज्ञेयाकार कहा जाता है। द्रव्य-गुण-पर्याय वस्तु के हैं। जो वस्तु का सत् है, वही ज्ञान का सत् है; क्योंकि जो असंख्यात प्रदेश वस्तु के होते हैं, वे ही ज्ञान के होते हैं; इसलिए अभेदसत्ता की अपेक्षा अभेद गुण-पर्याय की सिद्धि होती है। भेद की अपेक्षा ज्ञान द्रव्य, लक्षण गुण और परिणति पर्याय – ऐसे भेद सिद्ध होते हैं। उपचार से समस्त ज्ञेय के द्रव्य-गुण-पर्याय ज्ञान में आये हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपचार[1] के अनेक भेद हैं – १. स्वजाति उपचार, २. विजाति उपचार और ३. स्वजाति-विजाति उपचार – ये तीन उपचार द्रव्य, गुण और पर्याय में घटित होते हैं; अतः नौ भेद हुए। इसप्रकार स्वजाति, विजाति, स्वजाति-विजाति और सामान्य की अपेक्षा नौ-नौ भेदों को मिलाकर छत्तीस भेद हुए।

ये भेद जब ज्ञान में आते हैं, तब ज्ञान में भी सिद्ध होते हैं। ज्ञान और दर्शनगुण चेतना की अपेक्षा स्वजाति हैं, लक्षण की अपेक्षा उपचार से विजाति हैं और दोनों की अपेक्षा स्वजाति-विजाति हैं। प्रत्येक गुण सामान्यरूप से द्रव्य-गुण-पर्याय सिद्ध करता है तथा विशेष रूप से स्वजाति, विजाति एवं मिश्र को भी

---

१. पण्डित श्री गोपालदासजी बरैया कृत 'जैन-सिद्धान्त दर्पण' में उपचार के संबंध में निम्नप्रकार निरूपण किया गया है –

"एक प्रसिद्ध धर्म का दूसरे में उपचार करना असद्भूतव्यवहारनय का विषय है। उसके तीन भेद हैं –

१. स्वजाति उपचार, २. विजाति उपचार, ३. स्वजाति-विजाति उपचार।

इसमें स्वजाति द्रव्य-गुण-पर्याय का परस्पर आरोप करना स्वजाति उपचार है। जैसे चन्द्र के प्रतिबिम्ब को 'चन्द्र' कहना – यहाँ स्वजाति पर्याय का स्वजाति पर्याय में उपचार है।

विजाति द्रव्य-गुण-पर्याय का परस्पर आरोप करना विजाति उपचार है। जैसे ज्ञान को 'मूर्त' कहना – यहाँ विजाति गुण का विजाति गुण में उपचार है।

स्वजाति-विजाति द्रव्य-गुण-पर्याय में परस्पर आरोप करना स्वजाति-विजाति उपचार है। जैसे जीव-अजीवरूप ज्ञेयों को ज्ञान के विषय होने से ज्ञान कहना – यहाँ स्वजाति-विजाति द्रव्य में, स्वजाति-विजाति गुण का आरोप है।"

इनमें प्रत्येक के नौ-नौ भेद हैं –

१. द्रव्य में द्रव्य का आरोप, २. द्रव्य में गुण का आरोप, ३. द्रव्य में पर्याय का आरोप, ४. गुण में द्रव्य का आरोप, ५. गुण में गुण का आरोप, ६. गुण में पर्याय का आरोप, ७. पर्याय में द्रव्य का आरोप, ८. पर्याय में गुण का आरोप और ९. पर्याय में पर्याय का अरोप।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सिद्ध करता है। इसप्रकार प्रत्येक गुण में छत्तीस भेद होते हैं। इसी-प्रकार अनन्तगुणों में छत्तीस-छत्तीस भेद उपचार से सिद्ध होते हैं।

भेद-अभेद से द्रव्य-गुण-पर्याय सिद्ध होते हैं, यह जानना चाहिए। ज्ञान अपने स्वभाव का 'कर्ता' है। ज्ञान का भाव 'कर्म' है। ज्ञान अपने भाव से स्वयं को सिद्ध करता है; अतः स्वयं 'करण' है। अपना स्वभाव स्वयं को समर्पित करता है; अतः स्वयं 'सम्प्रदान' है। अपने भाव से स्वयं को स्वयं स्थापित करता है, अतः स्वयं 'अपादान' है। स्वयं का आधार स्वयं है, अतः स्वयं 'अधिकरण' है। ये छह कारक प्रत्येक गुण में पृथक्-पृथक् अनन्त गुणपर्यन्त सिद्ध करना चाहिए।

उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य - ये तीनों प्रत्येक गुण में सिद्ध होते हैं। सूक्ष्मगुण की अनन्तपर्यायें हैं। जैसे - ज्ञानसूक्ष्म, दर्शनसूक्ष्म इसीप्रकार अनन्तगुणसूक्ष्म। एक गुण की मुख्यतारूप सूक्ष्मता का उत्पाद, दूसरे गुण की गौणतारूप सूक्ष्मता का व्यय और सूक्ष्मत्व सत्ता की अपेक्षा ध्रौव्य। इसप्रकार सूक्ष्मगुण में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सिद्ध होते हैं। इसीप्रकार सब गुणों में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सिद्ध होते हैं।

परिणामशक्ति -

गुणसमुदाय द्रव्य है, वह द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से आलिंगित है। अपने गुण-पर्यायस्वभाव के कारण गुणरूप सत्ता के दो भेद हैं - १. साधारण और २. असाधारण। द्रव्यत्व आदि साधारण और ज्ञान आदि असाधारण सत्ता है। ज्ञान-दर्शन आदि विशेषगुणों की सत्ता से जब जीव प्रगट होता है, तब जीव के वस्तुत्व आदि सभी गुण जानने में आते हैं; अतः असाधारण से साधारण और साधारण से असाधारण हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ये सभी द्रव्य-गुण-पर्याय जब अपनी यथावस्थितता द्वारा स्वच्छ होते हैं, तब पर के अभाव से अभावशक्तिरूप होते हैं।

निजवस्तु के सकलभाव, पर (वस्तु) के अभाव से चिद्‌विलास मंडित, स्वरसभरित, त्याग-उपादानशून्य, सकलकर्मों के अकर्ता, अभोक्ता, सम्पूर्ण कर्मों से मुक्त आत्मप्रदेश, सहजमग्र, परमूर्तिरहित अमूर्तरूप, षट्कारकरूप, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप, संज्ञा-संख्या-लक्षण-प्रयोजनादिरूप, नित्यादि-स्वभावरूप, साधारणादि गुणरूप, अन्योन्य उपचारादिरूप अनन्तभेदों के अभेदरूप हैं; इनमें सामान्य-विशेष आदि अनन्त नयों और अनन्त विवक्षाओं से अनन्त सप्तभंग सिद्ध करने चाहिए।

अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त, सादि-सान्त और सादि-अनन्त - ये चार भङ्ग गुणों में सिद्ध होते हैं। सर्वप्रथम ज्ञान में सिद्ध करते हैं - १. वस्तु की अपेक्षा ज्ञान अनादि-अनन्त है। २. द्रव्य की अपेक्षा अनादि और पर्याय की अपेक्षा सान्त है; अतः ज्ञान अनादि-सांत है। ३. पर्याय की अपेक्षा ज्ञान सादि-सान्त है तथा ४. पर्याय की अपेक्षा सादि और द्रव्य की अपेक्षा अनन्त है; अतः ज्ञान सादि-अनन्त भी है।

इन भङ्गों को 'दर्शन' में भी इसी रीति से जानना चाहिए।

अब सत्ता में सिद्ध करते हैं - १. द्रव्य की अपेक्षा सत्ता अनादि-अनन्त है। २. द्रव्य की अपेक्षा अनादि और पर्याय की अपेक्षा सांत है; अतः सत्ता अनादि-सांत है, ३. पर्याय की अपेक्षा सत्ता सादि-सान्त है तथा ४. पर्याय की अपेक्षा सादि और द्रव्य एवं गुण की अपेक्षा अनन्त होने से सत्ता सादि-अनन्त है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शंका :– सत्ता का लक्षण 'है' (अस्तिरूप) है, सादि–सान्त में तो सत्ता का अभाव हो जाता है, अतः वहाँ 'है' (अस्तिरूप) लक्षण न रह सकेगा ?

समाधान :– पर्याय समयस्थायी है, उसकी सत्ता भी समयमात्र काल की मर्यादा तक 'है' (अस्तिरूप) लक्षण को धारण करती है। अनादि–अनन्त का काल बहुत है; अतः पर्याय में सम्भव नहीं है। यदि पर्याय समयस्थायी न हो तो उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य एक ही समय में सिद्ध न हो सकेंगे और फिर उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य के बिना सत्ता न हो सकेगी तथा सत्ता का नाश होने पर वस्तु का नाश हो जाएगा; अतः पर्याय की मर्यादा समयमात्र है, जिससे सादि–सान्तपना सिद्ध होता है।

ये सब पारिणामिकशक्ति के भेद हैं, क्योंकि इसी में सब गर्भित है; अतः इसी के भेद हैं।

प्रदेशत्वशक्ति –

अनादि संसार से संसार–अवस्था में जो जीव के प्रदेशों का समूह संकोच–विस्तार को प्राप्त होता है, वह मोक्ष हो जाने पर अन्तिम शरीर से किंचित् ऊन (कम) आकार को धारण करता है। उसके प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुण हैं और ऐसे असंख्यात प्रदेश लोकप्रमाण हैं। वे प्रदेश अभेदविवक्षा में प्रदेशत्वरूप और भेदविवक्षा में असंख्य तथा व्यवहार में देहप्रमाण कहे गए हैं। ये प्रदेश अवस्थान विवक्षा में लोकाग्र में अवस्थानरूप होकर निवास करते हैं। एक–एक प्रदेश की गणना करने पर असंख्य प्रदेश हैं।

शंका :– जिनागम में कहा है – 'लोकप्रमाणप्रदेशो हि निश्चयेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिनागमे'; अतः भेदविवक्षा में असंख्य कहने से निश्चय सिद्ध नहीं होता, क्योंकि निश्चय में भेद सिद्ध नहीं होता ?

समाधान :– भेदविवक्षा से प्रदेशों की संख्या असंख्यप्रमाण होती है, कम–ज्यादा नहीं; इसप्रकार नियमरूप निश्चय जानना चाहिए।

शंका :– एक प्रदेश में जो अनन्तगुण हैं, वे सब प्रदेशों में हैं; अतः उन प्रदेशों में सब आए या कम आए ?

समाधान :– ज्ञान सब प्रदेशों में है। प्रदेशों को पृथक् मानने पर ज्ञान पृथक्–पृथक् सिद्ध होगा और आत्मप्रदेश ज्ञानप्रमाण होने से वह भी पृथक्–पृथक् सिद्ध होगा, इसतरह विपरीत होगा; अतः वस्तु में अंशकल्पना नहीं है, गुण में भी नहीं है; परन्तु परमाणुमात्र में गज (माप) से वस्तु के प्रदेश की जब गणना की जाती है, तब उतना सिद्ध होता है अथवा यह कहा जा सकता है कि प्रदेशों का एकत्व जैसे वस्तु का स्वरूप है, वैसे ही ज्ञान का भी स्वरूप है।

क्रम के दो भेद हैं – १. विष्कम्भक्रम और २. प्रवाहक्रम। विष्कम्भक्रम प्रदेश में है और प्रवाहक्रम परिणाम में है। द्रव्य में क्रमभेद नहीं होता, वस्तु के ही अंग ऐसे भेद धारण करते हैं; परन्तु क्रमभेद अंग में ही है, वस्तु में नहीं। जैसे दर्पण में प्रकाश है; वह जिसप्रकार सम्पूर्ण दर्पण में होता है, उसीप्रकार उसके प्रत्येक प्रदेश में भी होता है। प्रदेश दर्पण से पृथक् तो नहीं होते, परन्तु जब परमाणुमात्र प्रदेश की कल्पना करते हैं, तब प्रदेश में भी जाति और शक्ति तो वैसी ही है, लेकिन सम्पूर्ण वस्तु – यह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नाम तो सब प्रदेशों का एकत्वभाव ही प्राप्त करता है। इसीप्रकार गुण, जाति या शक्तिभेद तो प्रदेश में आते हैं; परन्तु सम्पूर्ण आत्मवस्तु असंख्यप्रदेशमय है। एक प्रदेश लोकालोक को जानता है, उसीप्रकार सब प्रदेश भी जानते हैं; परन्तु सब प्रदेशों का एकत्वभाव वस्तु है।

शंका :– प्रदेश में एक गुण है और एक गुण की अनन्त पर्यायें हैं तो फिर एक प्रदेश में अनन्त पर्यायें कैसे रह सकेंगी ?

समाधान :– जैसे एक प्रदेश में सूक्ष्मगुण है और जो अनन्त गुण हैं, वे सब सूक्ष्म हैं; अतः सूक्ष्मगुण की सब पर्यायें, जातिभेद, शक्तिभेद सब एक हैं, इसलिए एक प्रदेश में सब रह सकेंगी।

जैसे एक गुण वस्तु का है, वह वस्तु में व्यापक और वस्तु सब गुणों में व्यापक है; अतः सूक्ष्मगुण भी अपनी पर्याय के द्वारा सब गुणों में व्यापक है, अखण्डित है। प्रत्येक गुण को खण्ड-खण्ड पर्याय के द्वारा पृथक्-पृथक् व्यापक कहने पर सूक्ष्मगुण अनन्त हो जायेंगे, एक नहीं रहेगा, तब द्रव्य भी अनन्त हो जायेंगे; क्योंकि द्रव्य-गुण एक हैं; अतः सब प्रदेशरूप वस्तु है और वैसा ही गुण भी है।

जिसप्रकार एक गुण सब गुणों में अपना रूप धारण करता है, व्यापक है; उसीप्रकार एक प्रदेश सब प्रदेशों में व्यापक नहीं है। एक प्रदेश का अस्तित्व एक प्रदेश में है और दूसरे का दूसरे में है; परन्तु चेतना की अभिन्नता के कारण सब प्रदेश अभिन्नसत्तारूप हैं। एक वस्तु का प्रकाश परस्पर अनुस्यूतरूप अभेद है। प्रदेश

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के स्वरूप का निर्णय करने में तो भेद कहा है; परन्तु जाति, शक्ति, सत्ता और प्रकाश आदि अभेद हैं।

एक सूक्ष्मगुण सब प्रदेशों में अपना सम्पूर्ण अस्तित्व धारण करता है, उनमें सम्पूर्णता है तथा सब गुण सूक्ष्म हैं; अतः सम्पूर्णता करने पर जितने प्रदेश कहे हैं, उनमें से सूक्ष्मगुण को भी पृथक् नहीं कह सकते; क्योंकि इसतरह पृथक् कहने पर गुण के खण्ड हो जायेंगे; अतः अभेद प्रकाश है, उसमें भेद और अंश कल्पना होने पर भी अभेद है।

प्रदेश अवयवों का पुञ्ज है, यह एक वस्तु की सिद्धि करता है। इन प्रदेशों में सर्वज्ञत्वशक्ति एवं सर्वदर्शित्वशक्ति है। ये प्रदेश अपने यथावत् स्वभावरूप हैं; अतः तत्त्वशक्ति को धारण करते हैं और परप्रदेशरूप नहीं होते; अतः अतत्त्वशक्ति को धारण करते हैं तथा जड़तारहित होते हैं; अतः चैतन्यशक्ति को धारण करते हैं।

इसीप्रकार प्रदेश अनन्त शक्तियों को धारण करते हैं। प्रदेशशक्ति अनन्तमहिमा को धारण करती है।

द्रव्य-गुण-पर्याय का विलास – सत्ता के आधार से सब द्रव्य-गुण-पर्याय हैं; अतः सब द्रव्य-गुण-पर्याय के रूप का विलास सत्ता ही करती है।

शंका :– सत्ता तो 'है' (अस्तिरूप) लक्षण को धारण करती है, वह विलास कैसे कर सकती है ?

समाधान :– द्रव्य का विलास द्रव्य करता है, गुण का विलास गुण करता है और पर्याय का विलास पर्याय करती है एवं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तीनों के विलास का अस्तित्वभाव सत्ता से है; अतः वह विलास सत्ता ही करती है।

द्रव्य, गुण और पर्याय का विलास ज्ञान में आता है अर्थात् ज्ञानरूपवेदन के द्वारा ज्ञान ही तीनों के विलास को करता है। इसीप्रकार दर्शन में घटित होता है अर्थात् दर्शन सब द्रव्य, गुण और पर्याय के रूप का विलास करता है।

परिणाम सबको वेदकर (जानकर) रसास्वाद लेता है; अतः पर्याय सबका विलास करती है। इसीप्रकार जो अनन्त गुण हैं, उनमें प्रत्येक गुण तीनों का अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय का विलास करता है।

भावभावशक्ति –

समस्त पदार्थों के समस्त विशेषों को ज्ञान वर्तमान में जानता है, पूर्व में जानता था और भविष्य में जानेगा। ज्ञान में जो शक्ति पूर्व में थी, वही भविष्य में भी रहती है; अतः ज्ञान में 'भावभावशक्ति' है। इसीप्रकार दर्शन में भी जो भाव पूर्व में था, वही भविष्य में भी रहेगा, अतः दर्शन में भी 'भावभावशक्ति' है। ज्ञान और दर्शन की भाँति अनन्तगुणों में भी 'भावभावशक्ति' है। सब गुणों का भाव प्रत्येक गुण में है; अतः प्रत्येक गुण के अपने भाव से सबका भाव है और सब गुणों के भाव से एक-एक गुण का भाव है, इसलिए 'भावभावशक्ति' सब गुणों में है।

गुण में द्रव्य-पर्याय का भाव है और द्रव्य-पर्याय के भाव में गुण का भाव है; अतः 'भावभावशक्ति' का कथन किया जाता है। प्रत्येक भाव में अनन्तभाव हैं और अनन्तभावों में एक भाव है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तु के सद्भाव का प्रगट होना 'भाव' है। एक भाव में अनन्तरस का विलास है, उस विलास का प्रभाव प्रगटरूप से धारण करनेवाली वस्तु ही के अनेक अंगों का वर्णन जिनदेव ने किया है। वस्तु में अनन्तगुण हैं, प्रत्येक गुण में अनन्तशक्ति-पर्याय हैं, पर्याय में सब गुणों का वेदन है, वेदन में अविनाशी सुखरस है और उस सुखरस का पान करने से जीव चिदानन्द अजर-अमर होकर निवास करता है।

कारण-कार्य के तीन भेद – प्रत्येक समय कारण-कार्य के द्वारा आनन्द का विलास होता है, अतः परिणाम से कारण-कार्य है।

पूर्वपरिणामरूप कारण उत्तरपरिणामरूप कार्य को करता है; अत: उसके तीन भेद एक ही कारण-कार्य में सिद्ध होते हैं। इसका कथन करते हैं – जैसे षड्गुणी वृद्धि-हानि एक ही समय में सिद्ध होती है, वैसे ही एक ही वस्तु के परिणाम में भेदकल्पना के द्वारा तीन भेद सिद्ध किए जाते हैं – (अ) द्रव्यकारणकार्य, (ब) गुणकारणकार्य और (स) पर्यायकारणकार्य।

(अ) द्रव्यकारणकार्य – (१) द्रव्य अपने स्वभाव से स्वयं ही स्वयं का कारण है और स्वयं ही कार्य है अथवा (२) गुण-पर्याय कारण है और द्रव्य कार्य है, क्योंकि 'द्रव्य गुणपर्यायवान् है' – ऐसा सूत्र में वचन है। (३) पूर्वपरिणामयुक्त द्रव्य कारण है और उत्तरपरिणामयुक्त द्रव्य कार्य है अथवा (४) 'सत् द्रव्यलक्षणम्' के अनुसार सत्ता कारण है और द्रव्य कार्य है अथवा (५) 'द्रव्यत्वयोगाद् द्रव्यम्' के अनुसार द्रव्यत्वगुण कारण है और द्रव्य कार्य है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य का कारण-कार्य द्रव्य ही में है, क्योंकि द्रव्य अपने कारणस्वभाव को स्वयं ही परिणमा कर अपने कार्य को स्वयं ही करता है। यदि द्रव्य में कारण-कार्य न हो तो द्रव्यपना कैसे रहे? अतः संसार में जितने पदार्थ हैं, वे सब अपने-अपने कारण-कार्य को करते हैं। जीवद्रव्य के कारण-कार्य से जीव का सर्वस्व प्रगट होता है। जो कुछ है, वह कारण-कार्य ही है।

(ब) गुणकारणकार्य – (१) गुण को द्रव्य-पर्याय कारण है और गुण कार्य है। (२) केवल द्रव्य व पर्याय ही कारण नहीं है, गुण भी गुण का कारण है और गुण ही कार्य है। एक सत्तागुण सब गुणों का कारण है और सब गुण उसके कार्य हैं। एक सूक्ष्म गुण सब गुणों का कारण है और सब गुण उसके कार्य हैं। एक अगुरुलघुत्वगुण सब गुणों का कारण है और सब गुण उसके कार्य हैं। एक प्रदेशत्वगुण सब गुणों का कारण है और सब गुण उसके कार्य हैं।

अब कहते हैं कि उसी गुण का कारण उसी गुण में होता है। सत्ता का निजकारण सत्ता ही में है। द्रव्य-गुण-पर्याय की सत्ता 'है' (सत्) लक्षण को धारण करती है; अतः उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्) जो सत्ता का लक्षण है, वही सत्ता का कारण है और सत्ता उसका कार्य है। इसीप्रकार अगुरुलघुत्वगुण अपने कारण के द्वारा अपने कार्य को करता है। उस अगुरुलघुत्वगुण का विकार षड्गुणी वृद्धि-हानि है, उसी वृद्धि-हानि के द्वारा अगुरुलघुत्वगुण का कार्य उत्पन्न हुआ है; अतः स्वयं अगुरुलघुत्वगुण स्वयं ही का कारण है। ऐसे ही सब गुण स्वयं स्वयं के कारण हैं, स्वयं के कार्य को स्वयं ही करते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अन्य-गुण-निमित्त-कारण-ग्राहक नय से अन्य गुण के कारण से अन्य गुणरूप कार्य होता है और अन्य – गुण-ग्राहक-निरपेक्ष-केवल-निजगुण-ग्राहकनय से अपने कारण-कार्य को निजगुण स्वयं करता है। द्रव्य के बिना गुण नहीं होता; अतः गुणरूप कार्य को द्रव्य कारण है। पर्याय न हो तो गुणरूप कौन परिणमन करता? अतः पर्याय कारण है और गुण कार्य है।

ऐसे अनेक भेद गुणकारणकार्य के हैं।

(स) पर्यायकारणकार्य – (१) 'द्रव्य-गुण' पर्याय का कारण है और 'पर्याय' कार्य है; क्योंकि द्रव्य के बिना पर्याय नहीं होती। जैसे समुद्र के बिना तरंग नहीं होती, वैसे ही पर्याय का आधार द्रव्य है, द्रव्य ही से परिणति (पर्याय) उत्पन्न होती है। आलापपद्धति में कहा भी है –

अनादिनिधने द्रव्य स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले॥१॥

इसप्रकार पर्याय का कारण द्रव्य है।

(२) अब गुण-पर्याय का कारण कहते हैं – गुण का समुदाय द्रव्य है। गुण के बिना द्रव्य नहीं होता और द्रव्य के बिना पर्याय नहीं होती – एक तो यह विशेषण है और दूसरा विशेषण यह है कि गुण के बिना गुणपरिणति नहीं होती; अतः गुण, पर्याय का कारण है। गुण का पर्यायरूप परिणमन होता है, तब गुणपरिणति नाम प्राप्त होता है; अतः गुण कारण है और पर्याय कार्य है।

(३) पर्याय का कारण पर्याय ही है। पर्याय की सत्ता, गुण के बिना ही पर्याय का कारण है, पर्याय का सूक्ष्मत्व पर्याय का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारण है, पर्याय का वीर्य पर्याय का कारण है, पर्याय का प्रदेशत्व पर्याय का कारण है।

(४) उत्पाद-व्यय कारण हैं; क्योंकि उत्पाद-व्यय से पर्याय जानने में आती है।

अत: ये पर्याय के कारण हैं और पर्याय कार्य है।

इसप्रकार कारण-कार्य के भेद हैं; अत: वस्तु का सर्वरस सर्वस्व कारण-कार्य है। जिन्होंने कारण-कार्य को जान लिया, उन्होंने सब जान लिया। इस परमात्मा के अनन्तगुण हैं, अनन्त शक्तियाँ हैं। अनन्तगुण की अनन्तानन्त पर्यायें हैं, अनन्त चेतनाचिह्न में अनन्तानन्त सप्तभंग सिद्ध होते हैं। इसप्रकार से और भी जो वस्तु की अनन्तमहिमा है, उसका वर्णन कहाँ तक किया जाए, अत: जो सन्त हों, वे स्वरूप का अनुभव करके अमृतरस पीकर अमर हों।

●

उद्यम के डारे कहूँ साध्य-सिद्धि कही नाहिं,
होनहार सार जाको उद्यम ही द्वार है।
उद्यम उदार सुख-दोष को हरनहार,
उद्यम में सिद्धि वह उद्यम ही सार है॥
उद्यम बिना न कहूँ भावी भली होनहार,
उद्यम को साधि भव्य गए भवपार हैं।
उद्यम के उद्यमी कहाए भवि जीव तातैं,
उद्यम ही कीजे कियो चाहे जो उद्धार॥

– ज्ञानदर्पण, १४१

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परमात्मस्वरूप की प्राप्ति का उपाय

अब शिष्य प्रश्न करता है कि हे प्रभो! ऐसे परमात्मा का स्वरूप कैसे प्राप्त किया जाए ? अत: उस शिष्य को परमात्मा प्राप्त कराने के निमित्त आगे कथन करते हैं –

जो जीव अन्तरात्मा होकर परमात्मा का ध्यान करते हैं, वे अन्तरात्मा चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक हैं। इनका वर्णन संक्षेप में करते हैं।

चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव श्री सर्वज्ञदेव द्वारा कहे गये वस्तु के स्वरूप का चिन्तन करता है, उसे सम्यक्त्व हुआ है। उस सम्यक्त्व के सड़सठ भेद हैं, उनका वर्णन करते हैं –

प्रथम–श्रद्धान के चार भेद हैं, जिनके नाम हैं – १. परमार्थसंस्तव, २. मुनितपरमार्थ, ३. यतिजनसेवा और ४. कुदृष्टिपरित्याग।

(१) परमार्थसंस्तव – ज्ञाता सात तत्त्वों के स्वरूप का चिन्तन करता है। उपयोग चेतनालक्षण दर्शन–ज्ञानरूप है। ऐसे उपयोग आदि अनन्त शक्तियों को धारण करनेवाला मेरा स्वरूप अनन्त गुणों से मण्डित है, वह अनादिकाल से परसंयोग के साथ मिला है। यद्यपि मेरे स्वरूप में ज्ञेयाकार ज्ञानोपयोग होता है, वह परज्ञेयरूप नहीं होता, अविकाररूप अखण्डित ज्ञानशक्तिरूप रहता है। वह ज्ञेय का अवलम्बन किए हुए है; परन्तु परज्ञेय का निश्चय से स्पर्श भी नहीं करता, उसे देखकर भी नहीं देखता है, पराचरण करता हुआ भी उसका अकर्ता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार जीव उपयोग का प्रतीतिभाव या श्रद्धान करता है। अजीव आदि पदार्थ को हेय जानकर श्रद्धान करता है। बारम्बार भेदज्ञान के द्वारा स्वरूपचिन्तन से जो स्वरूप की श्रद्धा होती है, उसी का नाम 'परमार्थसंस्तव' कहा गया है।

(२) मुनितपरमार्थ :– जिनागम द्रव्यसूत्र से अर्थ जानने पर ज्ञानज्योति का अनुभव हुआ, उसे 'मुनितपरमार्थ' कहा जाता है।

(३) यतिजनसेवा :– वीतरागरूप स्वसंवेदन से शुद्धस्वरूप का रसास्वाद होने पर यतिजनों की प्रीति, भक्ति एवं सेवा की जाती है, उसे 'यतिजनसेवा' कहते हैं।

(४) कुदृष्टिपरित्याग :– परावलम्बी एवं बहिर्मुख मिथ्या-दृष्टिजनों का त्याग 'कुदृष्टिपरित्याग' कहा जाता है।

आगे यहाँ सम्यक्त्व के तीन चिन्ह कहते हैं –

(५) जिनागमशुश्रूषा :– जिनागम में कहे गये ज्ञानमय स्वरूप को अनादि मिथ्यादृष्टिपना छोड़कर प्राप्त करना चाहिए, उसमें उपकारी जिनागम है, उसके प्रति प्रीति करे। ऐसी प्रीति करे कि जैसे किसी दरिद्री को किसी ने चिन्तामणि दिखाया, तब उसके द्वारा चिन्तामणि को प्राप्त किया। उससमय उस दिखानेवाले से वह दरिद्री जिसप्रकार प्रीति करता है, वैसी प्रीति जिनसूत्र में करे – इस चिन्ह को 'जिनागमशुश्रूषा' कहते हैं।

(६) धर्मसाधन में परमानुराग :– जिनधर्मरूप अनन्त गुणों का विचार धर्मसाधन है, उसमें परम अनुराग करे। यह 'धर्मसाधन में परमानुराग' सम्यक्त्व का दूसरा चिन्ह है।

(७) जिनगुरु वैयावृत्त्य :– जिनगुरु से ज्ञान–आनन्द प्राप्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता है; अतः उनकी वैयावृत्त्य, सेवा और स्थिरता करना 'जिनगुरु वैयावृत्त्य' है। यह सम्यक्त्व का तीसरा चिन्ह है।

ये तीनों चिन्ह अनुभवी के हैं –

अब विनयों के दस भेद कहते हैं –

(८) अरहन्त, (९) सिद्ध, (१०) आचार्य, (११) उपाध्याय, (१२) साधु, (१३) प्रतिमा, (१४) श्रुत, (१५) धर्म, (१६) चतुर्विधसंघ और (१७) सम्यक्त्व। इनसे स्वरूप-भावना होती है।

इसके अनन्तर तीन शुद्धियों का कथन करते हैं –

(१८-१९-२०) मन, वचन और काय को शुद्ध करके स्वरूप की भावना भाना तथा जो स्वरूप की भावना करता हो – ऐसे पुरुष में मन, वचन और काय तीनों को लगाए तथा स्वरूप को निःशंक और निःसन्देहतया ग्रहण करे।

इसके बाद पाँच दोषों के त्याग का कथन करते हैं –

(२१) सर्वज्ञवचन को निःसन्देहतया माने।

(२२) मिथ्यामत की अभिलाषा न करे।

(२३) परद्वैत की इच्छा न करे और पवित्र स्वरूप को ग्रहण करे।

(२४) दूसरों के प्रति ग्लानि न करे और मिथ्यात्वी परग्राही द्वैत की मन से प्रशंसा न करे।

(२५) मिथ्यात्वी के गुणों को वचनों से न कहे।

अब सम्यक्त्व के आठ प्रभावना-भेदों का वर्णन करते हैं – १. अष्टप्रवचनी, २. धर्मकथा, ३. वादी, ४. निमित्ती, ५. तपसी, ६. विद्यावान, ७. सिद्ध और ८. कवि।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(२६) अष्टप्रवचनी :– सिद्धान्त के द्वारा स्वरूप को उपादेय कहे।

(२७) धर्मकथा :– निजधर्म का कथन करे।

(२८) वादी :– बलपूर्वक द्वैत का आग्रह छुड़ाए और मिथ्यावाद को मिटाए।

(२९) निमित्ती :– स्वरूप प्राप्त करने में निमित्त जिनवाणी, गुरु, सहधर्मी तथा निज-विचार हैं। निमित्त संबंधी जो धर्मज्ञ हैं, उन सबका हित करे।

(३०) तपसी :– परद्वैत की इच्छा को मिटाकर निजप्रताप प्रगट करे।

(३१) विद्यावान :– विद्या के द्वारा जिनमत का प्रभाव करे और ज्ञान के द्वारा स्वरूप का प्रभाव करे।

(३२) सिद्ध :– वचन के द्वारा स्वरूपानन्दी का हित करे और संघ की स्थिरता करे, क्योंकि इससे स्वरूप की सिद्धि होती है; अतः उसे सिद्ध कहते हैं।

(३३) कवि :– स्वरूप के लिए रचना करके परमार्थ प्राप्त करता है और प्रभावना करता है।

इन आठों के द्वारा जिनधर्म के स्वरूप का प्रभाव जैसे बढ़े, वैसे करे – ये अनुभवी के लक्षण हैं।

अब छह भावनाओं का कथन करते हैं – १. मूलभावना, २. द्वारभावना, ३. प्रतिष्ठाभावना, ४. निधानभावना, ५. आधारभावना और ६. भाजनभावना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(३४) मूलभावना :– सम्यक्त्वस्वरूप अनुभव सकल धर्म तथा मोक्ष का मूल है, जिनधर्मरूपी कल्पवृक्ष का मूल सम्यक्त्व है – इसप्रकार भावना करे।

(३५) द्वारभावना :– धर्मरूपी नगर में प्रवेश करने के लिए सम्यक्त्व ही द्वार है।

(३६) प्रतिष्ठाभावना :– स्वरूप की तथा व्रत-तप की प्रतिष्ठा सम्यक्त्व से है।

(३७) निधानभावना :– सम्यक्त्व अनन्त सुख देने के लिए निधान है।

(३८) आधारभावना :– सम्यक्त्व निज गुणों का आधार है।

(३९) भाजनभावना :– सर्व गुणों का पात्र सम्यक्त्व है।

ये छहों भावनायें स्वरूपरस को प्रगट करती हैं।

इसके अनन्तर सम्यक्त्व के पाँच भूषण लिखते हैं –

१. कुशलता, २. तीर्थसेवा, ३. भक्ति, ४. स्थिरता और ५. प्रभावना।

(४०) कुशलता :– परमात्मभक्ति, पर-परिणाम व पाप के परित्यागस्वरूप, भावसंवर व शुद्धभाव की पोषक क्रिया को कुशलता कहते हैं।

(४१) तीर्थसेवा :– अनुभवी वीतराग पुरुषों का समागम तीर्थसेवा है।

(४२) भक्ति :– जैन साधुओं और साधर्मियों की आदरपूर्वक महिमा बढ़ाना भक्ति है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(४३) स्थिरता :– सम्यक्त्वभाव की दृढ़ता स्थिरता है।

(४४) प्रभावना :– पूजा प्रभाव करना प्रभावना है।

ये सम्यक्त्व के पाँच भूषण हैं।

अब सम्यक्त्व के पाँच लक्षण कहते हैं – १. उपशम, २. संवेग, ३. निर्वेद, ४. अनुकम्पा और ५. आस्तिक्य।

(४५) उपशम :– राग-द्वेष को मिटाकर स्वरूप को प्राप्त करना उपशम है।

(४६) संवेग :– जिनधर्म तथा निजधर्म से राग संवेग है।

(४७) निर्वेद :– वैराग्यभाव निर्वेद है।

(४८) अनुकम्पा :– स्वदया एवं परदया का भाव अनुकम्पा है।

(४९) आस्तिक्य :– स्वरूप और जिनवचन की प्रतीति आस्तिक्य है।

ये अनुभवी के पाँच लक्षण हैं।

इसके पश्चात् छह जैनसार लिखते हैं – १. वन्दना, २. नमस्कार, ३. दान, ४. अनुप्रयाण, ५. आलाप एवं ६. संलाप – इन्हें नहीं करना चाहिए।

(५०) वन्दना :– परतीर्थों, परदेवों और परचैत्यों की वन्दना नहीं करना चाहिए।

(५१) नमस्कार :– उनकी पूजा और नमस्कार नहीं करना चाहिए।

(५२) दान :– उनको दान नहीं देना चाहिए।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(५३) अनुप्रयाण :– उनकी अधिक खान-पान द्वारा खातिरदारी नहीं करना चाहिए।

(५४) आलाप :– उनसे बातचीत नहीं करना चाहिए।

(५५) संलाप :– उनके गुण-दोषों (सुख-दुःख) की बात नहीं पूछना चाहिए और बार-बार भक्ति एवं उनसे बातचीत नहीं करना चाहिए।

अब सम्यक्त्व के अभङ्ग कारण लिखते हैं। समकिति इन भङ्ग (डिगने) के कारण होने पर भी डिगते नहीं, अतः इन्हें अभङ्गकारण कहते हैं। इनके छह भेद हैं –

(५६) राजा, (५७) जनसमुदाय, (५८) बलवान, (५९) देव, (६०) पिता आदि बड़े पुरुष और (६१) माता – इन अभङ्गकारणों के संबंध में छह भयों को जानते रहें और निजधर्म तथा जैनधर्म का त्याग न करें।

इसके अनन्तर सम्यक्त्व के छह स्थानों का वर्णन करते हैं –

१. अस्तिजीव, २. नित्य, ३. कर्ता, ४. भोक्ता, ५. अस्तिध्रुव और ६. उपाय।

(६२) अस्तिजीव :– आत्मा अनुभवसिद्ध है। चेतना में चित्त लीन करें। जीव अस्तिरूप है, केवलज्ञान से प्रत्यक्ष है।

(६३) नित्य :– जीव द्रव्यार्थिकनय से नित्य है।

(६४) कर्ता :– मिथ्यादृष्टि जीव पुण्य-पाप का कर्ता है।

(६५) भोक्ता :– मिथ्यादृष्टि जीव पुण्य-पाप का भोक्ता भी है।

निश्चयनय से जीव न तो कर्ता है और न भोक्ता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(६६) अस्तिध्रुव :– निर्वाण का स्वरूप अस्तिध्रुव है, व्यक्त निर्वाण वह अक्षय मुक्ति है।

(६७) उपाय :– दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्ष के उपाय हैं।

ये सड़सठ भेद (४+३+१०+३+५+८+६+५+५+६+६+६ =६७) सम्यक्त्व के अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति के उपाय हैं।

ज्ञाता के विचार –

ज्ञाता इसप्रकार विचार करता है –

उपयोग जब ज्ञेय का अवलंबन करता है, तब ज्ञेय अवलम्बी होता है, अतः ज्ञेय का अवलंबन लेनेवाली शक्ति ज्ञेय का अवलम्बन लेकर उसे छोड़ देती है; क्योंकि ज्ञेय का संबंध अस्थिर है, ज्ञेयावलम्बी परिणाम भी छूट जाते हैं; अतः ज्ञेय और ज्ञेयावलम्बी परिणाम निजवस्तु नहीं हैं।

जो ज्ञेय का अवलम्बन लेनेवाली शक्ति को धारण करती है, वह चेतनावस्तु है। वह ज्ञेय के साथ मिलने से अशुद्ध तो हो गई है; परन्तु शक्ति की अपेक्षा शुद्ध और गुप्त है। जो वस्तु शुद्ध है, वह नहीं रहती (टिकती) है तथा जो अशुद्ध है, वह नहीं रहती (टिकती); क्योंकि अशुद्धता ऊपरी मल है, जबकि शुद्धता स्वरूप की शक्ति है।

जैसे स्फटिकमणि में लाल रंग दिखता है; परन्तु वह स्फटिक का स्वभाव नहीं है; अतः मिट जाता है; जबकि स्वभाव नहीं मिटता।

जैसे मयूर-मकरन्द में (मयूर के प्रतिबिम्बवाले दर्पण में) मयूर (मोर) दिखाई पड़ता है, पर उसमें वास्तव में मयूर है नहीं;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसीप्रकार कर्मदृष्टि में आत्मा परस्वरूप होकर भासित होता है, परन्तु वास्तव में वह परस्वरूप नहीं होता।

जैसे धतूरे के पीने से दृष्टि में सफेद शंख पीला दिखता है, परन्तु वह केवल दृष्टिविकार है, दृष्टिविनाश नहीं; वैसे ही मोह की गहल से पर को स्व मानते हैं, परन्तु वह अपना नहीं है।

जैसे लकड़हारे ने चिन्तामणि प्राप्त करके भी उसकी परख नहीं जानी, परन्तु इससे चिन्तामणि का प्रभाव नष्ट नहीं हो गया; वैसे ही अज्ञानवश स्वरूप की महिमा नहीं जानी, फिर भी इससे स्वरूप का प्रभाव नष्ट नहीं हुआ।

जैसे बादलों की घटा में सूर्य छिपा है, परन्तु वह छिपा होकर भी प्रकाश को धारण करता है, रात्रि की भाँति अन्धकारयुक्त नहीं है; वैसे ही आत्मा कर्मरूपी घटा में छिपा है, फिर भी ज्ञान-दर्शनरूपी प्रकाश करता ही रहता है, वह नेत्रों तथा इन्द्रियों के द्वारा दर्शनप्रकाश करता है और मन द्वारा जानता है, अचेतन की भाँति जड़ नहीं है।

इसप्रकार स्वरूप परमगुप्त है, तथापि ज्ञाता उसे प्रगट (प्रत्यक्ष) देखता है।

शंका :– जो बन्धन से मुक्त होना चाहता है, वह कैसे शुद्ध हो सकता है ?

समाधान :– जो अपनी चेतना की प्रकाशशक्ति उपयोग द्वारा प्रगट है, उसको प्रतीति में लाना चाहिए। जिसप्रकार पानी की तरंग पानी में गुड़ुप (अन्तर्मग्न) हो जाती है; उसीप्रकार यह जीव यदि दर्शन-ज्ञान परिणाम को गुड़ुप करे तो निज समुद्र को मिले और महिमा प्रगट करे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर में परिणामों को लीन करता है, परन्तु परवस्तु तो पर है; अतः छूट जाती है, तब खेद होता है, परिणाम मलिन होता है; इसलिए उसमें परिणाम गुप्त (तन्मय) नहीं करना चाहिए, बल्कि स्वरूप में ही लगाना चाहिए। ज्ञान के अशुद्ध रहने पर भी उसका जानपना तो नष्ट नहीं होता, इस जानपने की ओर देखने से निज ज्ञानजाति की भावना में निज रसास्वाद आता है। यह बात कुछ कहने में नहीं आती, इसके तो आस्वाद करने में ही स्वाद-आनन्द है; जिसने चखा, आस्वाद लिया; वही जानता है। लक्षण लिखने में नहीं आते हैं।

यह जीव इधर बाह्य को देख-देखकर, उधर (अन्तरंग निज-परमार्थस्वरूप) को भूला हुआ है, इसीकारण यह जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है। जैसे लोटन जड़ी को देखकर बिल्ली लोटती है; अतः बाह्य का देखना छूटने पर ही चौरासी लाख योनियों का लोटना छूटता है; इसीलिए परदर्शन को मिटाकर निज अवलोकन करने पर ही यह मोक्ष पद होता है, यही अनन्त-सुखरूप चिद्विलास का प्रकाश है।

अनन्त संसार कैसे मिटे ? –

कोई कहता है कि संसार तो अनन्त है, वह कैसे मिटे ? उसका उत्तर है कि बन्दर की उलझन इतनी ही है कि वह मुट्ठी नहीं छोड़ता। तोते की उलझन भी इतनी ही है कि वह नलिनी को नहीं छोड़ता। कुत्ते की उलझन भी इतनी है कि वह भोंकता है। त्रिंबक (तीन मोड़ेवाली) रस्सी को साँप मानता है, सो उसे भय भी तभी तक है, जबतक वह ऐसा मानता रहता है। मृग (हिरण) मरीचिका में जल मानकर दौड़ता है और इसी से वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दुःखी है। इसीप्रकार आत्मा पर को आपरूप मानता है, बस इतना ही संसार है और ऐसा न माने तो मुक्त ही है।

जैसे एक नारी ने काठ की पुतली बनवाकर, अलंकार और वस्त्र पहिनाकर, अपने महल में सेज पर सुला दिया और कपड़े से ढांक दिया। वहाँ जब उस नारी का पति आया और उसने समझा कि यह मेरी पत्नी सो रही है, इसलिए वह उसे हिलाने लगा और हवा करने लगा, फिर भी जब वह न बोली तो उसने सारी रात उसकी बहुत खिदमत (सेवा) की और सबेरा होने पर जब उसने समझा कि अरे! यह तो काठ ही है, तब वह पछताया कि मैंने व्यर्थ ही सेवा की है।

इसीप्रकार आत्मा पर-अचेतन की सेवा वृथा कर रहा है; परन्तु ज्ञान होने पर जब वह जानता है कि यह तो जड़ है, तब उससे स्नेह त्याग देता है और स्वरूपानंदी होकर सुख प्राप्त करता है।

उपयोग की उठनि (उत्पत्ति) सदा होती रहती है, वह उसको संभालता है और उपयोग को पर में नहीं जाने देता। आत्मा का उपयोग जिस ओर जुड़े, उसरूप होता है; अतः उपयोग के द्वारा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार तथा स्वरूप में स्थिरता, विश्राम और आचरण करना चाहिए एवं अनन्त गुणों में उपयोग लगाना चाहिए।

मन के द्वारा उपयोग चंचल होता है, उस चंचलता को रोकने से चिदानन्द प्रगट होता है और ज्ञानरूपी नेत्र खुलते हैं; अतः जब अनन्त गुणों में मन लगता है, तब उपयोग अनन्त गुणों में ठहरता है और तभी विशुद्ध होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रतीति के द्वारा रसास्वाद उत्पन्न होता है, उसी में मग्न होकर रहना चाहिए। परिणाम को वस्तु की अनन्त शक्ति में स्थिर करना चाहिए।

इस जीव के परिणाम परभावों का ही अवलम्बन करके, उनकी सेवा कर रहे हैं, वे परिणाम उन भावों की ही सेवा करते हुए उन परभावरूप परिणामभावों को ही निजपरिणाम स्वभावरूप देखते हैं, जानते हैं और उनकी सेवा करते हैं तथा उन पर को निजस्वरूप मान करके रखते हैं।

इसीप्रकार करते हुए अनादि से इस जीव के परिणामों की अवस्था बहुत समय तक व्यतीत हुई, तथापि काललब्धि आने पर भव्यता का परिपाक हुआ, तब श्रीगुरु का उपदेशरूप कारण प्राप्त हुआ।

उन श्रीगुरु ने ऐसा उपदेश दिया – "हे जीवो! तुम परिणामों के द्वारा पर की सेवा कर-करके पर-नीच को उच्च-स्व मानकर देख रहे हो। यह 'पर' नीच है, 'स्व' नहीं है और उसमें स्व-उच्चत्व नहीं है।[१] तुमको ये रंचमात्र भी कुछ नहीं दे सकते, तुम झूठ ही यह मान रहे हो कि ये हमको देते हैं। ये 'पर' नीच हैं और तुम उन नीच को स्व एवं उच्च मानकर बहुत नीच हो गये हो।

हे भव्य! परिणामों में ही जो कोई निजत्व एवं उच्चता है, उसे तुमने न देखा है, न जाना है और न उसकी सेवा की है; अतः उसे तुम कहाँ से याद रख सकते हो ? और यदि अब उस स्वभाव को देखोगे, जानोगे और उसकी सेवा करोगे तो यह स्वयं

१. यद्यपि कोई पदार्थ उच्च या नीच नहीं है, तथापि यहाँ स्वद्रव्य का उपादेयत्व बताने के लिए उसे 'उच्च' कहा है और परद्रव्य का हेयत्व बताने के लिए 'नीच' कहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही तुमको याद भी रहेगा और तुम सुखी भी होओगे; अयाचित (बिना माँगे) महिमा को प्राप्त करोगे और प्रभु बनोगे।

ये जो छह द्रव्य हैं, उनमें चेतन राजा है, पाँच द्रव्यों में तुम मत अटको, तुम्हारी महिमा बहुत उच्च है। नोकर्मों[१] की बस्ती (नगरी) बसी हुई है। वह तुम्हीं से बस्ती के समान दिखती है और इन आठ कर्मों को देखो, ये पुद्गलद्रव्य की जाति के हैं, तुम्हारे अपने अङ्ग नहीं हैं। जो-जो पौद्गलिक जातियों के नाम हैं, उन-उन जातियों के नाम चेतन ने अपने परिणामों से धारण कर लिए हैं; लेकिन वे निजस्वभाव नहीं हैं, बल्कि परकलित भाव हैं; अतः स्पष्ट है कि निज चेतना ने झूठा स्वांग धारण किया है; अतः उस परभावरूप स्वांग को दूर करो, उसको दूर करते ही प्रत्यक्ष साक्षात् स्वभावसन्मुख स्थिर हो जाओगे, विश्राम प्राप्त करोगे तथा वचनातीत महिमा प्राप्त करोगे। यदि फिर भी कभी पर-नीच परिणाम धारण करोगे तो भी क्योंकि चेतन राजा ने उन्हें अच्छी तरह पहचान लिया है, अतः तुम नीच से संबंध करके भी ठगाओगे नहीं, बल्कि बढ़ते-बढ़ते परमपद प्राप्त करोगे, तीनों लोकों में तुम्हारी कीर्ति प्रवर्तेगी।[२]"

गुरु के ऐसे वचन सुनकर ज्ञाता अपनी चेतनशक्ति को ग्रहण करता है और जहाँ-जहाँ देखता है, वहाँ-वहाँ उसे जड़ का नमूना दिखाई देता है, लेकिन अपना पद ज्ञानज्योतिरूप अनुपम है। स्वरूपप्रकाश में अनादि विभाव का नाश होता है। अपने स्वरूप से जो दर्शन-ज्ञानरूपी प्रकाश उत्पन्न होता है, वह परपद को देख-जानकर अशुद्ध होता है। वहाँ इतनी विशेषता है कि जहाँ

१. नोकर्म से तात्पर्य द्रव्यकर्म के फलरूप शरीरादि से है।
२. यह प्रकरण आत्मावलोकन ग्रन्थ में भी बहुत विस्तार से दिया गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रागादि परिणामरूप देखना-जानना है, वहाँ विशेष अशुद्धता है और जहाँ सामान्य पददशा की अपेक्षा (भूमिकानुसार) देखना-जानना है, वहाँ सामान्य अशुद्धता है।

चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव के एकदेश उपयोग की सम्हाल हुई है, अतः वहाँ उसे एकदेश शुद्धता जाननी चाहिए।

पञ्चम गुणस्थान में अप्रत्याख्यान संबंधी रागादि रह गये तो उतने अंश में अशुद्धता गई और स्थिरता बढ़ी, तब एकदेश स्थिरता होने पर एकदेश संयम नाम प्राप्त हुआ।

छठवें गुणस्थान में प्रत्याख्यान का अभाव हुआ, विशेष स्थिरता हुई। सकल आकुलताओं के कारण सकल पाप हैं, उनका अभाव हुआ; परन्तु वहाँ भी अशुभभाव गौणतारूप से हो जाता है, लेकिन वह पापबंध और दुर्गति का कारण नहीं होता। वहाँ शुभभाव मुख्य है और शुद्धभाव गौण है; परन्तु फिर भी वह ऐसी मुख्यता को प्राप्त कराता है कि वह मुख्य जैसा ही कार्य करता है, वहाँ शुद्ध गौण होने पर भी बलिष्ठ (बलवान) है।

छठवें गुणस्थानवर्ती के भेदविज्ञान-विचार के कारण शीघ्रता से शुद्धोपयोगरूप सातवाँ गुणस्थान हो जाता है। शुभोपयोग में गर्भितशुद्धता है; अतः सातवें गुणस्थान का साधक छठवाँ गुणस्थान है। उपदेशादि क्रिया होती है, पर विशेष स्थिरता होने से 'सकलविरति संयम' नाम प्राप्त होता है।

इसके पश्चात् सातवें गुणस्थान से आगे वीतराग निर्विकल्प समाधि बढ़ती जाती है, निष्प्रमाद दशा होती है, अपने स्वभाव का रसास्वाद मुख्य होता है और क्रमशः गुणस्थान के अनुसार बढ़ता जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मन की पाँच भूमिका :– परिणाम मन के द्वारा प्रवर्तित होते हैं – १. क्षिप्त, २. विक्षिप्त, ३. मूढ़, ४. चिन्तानिरोध और ५. एकाग्र – इन भूमिकाओं में मन घूमता रहता है। इनका वर्णन करते हैं–

(१) क्षिप्त :– जहाँ मन विषय-कषायों में व्याप्त होकर रंजरूप (अशुद्ध) भाव में सर्वस्वरूप से लीन रहता है, उसे क्षिप्त मन कहते हैं।

(२) विक्षिप्त :– जहाँ चिन्ता की आकुलता से कोई विचार ही उत्पन्न नहीं होता, उसे विक्षिप्त मन कहते हैं।

(३) मूढ़ :– हित को अहित और अहित को हित माने, देव को कुदेव और कुदेव को देव माने, धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म माने तथा जो पर को स्व और स्व को न जाने, उसे विवेकरहित मूढ़ मन कहते हैं।

(४-५) चिन्तानिरोध एवं एकाग्रता :– एकाग्रता को चिन्तानिरोध कहते हैं। बाह्य में स्थिरता हुई, स्वरूपरूप परिणमन हुआ और एकत्वध्यान हुआ, वह स्वरूपएकाग्रता है।

पर में एकाग्रता तो होती है, परन्तु वह तो आकुलतारूप है, अनेक विकल्पों का मूल है, दुःख और बाधा का हेतु है; अतः उसे एकाग्रता नहीं कहते, एकाग्रता से तात्पर्य यहाँ स्वरूपस्थिति से है – ऐसा जानना। पर में एकाग्रता बन्ध का मूल है।

स्वरूपसाधक तो वह है, जो अपने में एकाग्र चिन्तानिरोध करे। यद्यपि मन जब पर में लगता है, तब भी ऐसा स्थिर हो जाता है कि उसे कोई अन्य चिन्ता नहीं रहती।

सामान्यरूप से ये पाँचों भूमिकायें संसार अवस्था में स्नेह (राग) पूर्वक लगती हैं तो संसार का कारण बन जाती हैं। ●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधि का स्वरूप

विशेषविचारधर्मग्राहकनय में 'चिन्तानिरोध' और 'एकाग्र' – ये दो भूमिकाएँ धर्मध्यान और शुक्लध्यान की कारण हैं तथा समाधि को सिद्ध करती हैं। इसके प्रमाण में यह श्लोक है –

"साम्यं स्वास्थ्यं समाधिश्च योगश्चिन्तानिरोधनम्।
शुद्धोपयोग इत्येते भवन्त्येकार्थवाचकाः॥[१]"

सामान्यार्थ :– साम्य, स्वास्थ्य, समाधि, योग, चिन्तानिरोध और शुद्धोपयोग – ये सब एकार्थवाचक हैं।

चिन्तानिरोध और एकाग्रता से समाधि होती है, राग आदि विकल्पों से रहित, स्वरूप में निर्विघ्न स्थिरता और वस्तुरस के आस्वाद के साथ, स्वसंवेदनज्ञान के द्वारा जो स्वरूप का अनुभव होता है, उसे 'समाधि' कहते हैं।

कुछ लोग समाधि का कथन करते हुए कहते हैं –

श्वास–उच्छ्वास वायु है, उसको अन्तर में भरे अर्थात् पूरे, उसे 'पूरक' कहते हैं तथा जो वायु को कुम्भ (घट) की भाँति भरता है और भरकर स्थिर करता है, उसे 'कुम्भक' कहते हैं। फिर जो धीरे–धीरे वायु का रेचन करता है, उसे 'रेचक' कहते हैं। पाँच घड़ी तक किये जानेवाले कुम्भक को 'धारणा' कहते हैं और साठ घड़ी तक किये जानेवाले कुम्भक को 'ध्यान' कहते

१. पद्मनन्दि–एकत्वसप्तति, श्लोक–६४

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं। उससे आधे समय का किया जानेवाला कुम्भक 'समाधि' कहलाता है।

वास्तव में यह समाधि कारण है, क्योंकि इससे मन की जय होती है और मन की जय करने से राग–द्वेष–मोह मिटते हैं और राग–द्वेष–मोह मिटने से समाधि लगती है। यदि मन स्थिर हो तो निज गुणरत्न प्राप्त किया जा सकता है, अतः समाधि कारण है।

कोई न्यायवादी न्याय के बल पर छहों मतों के अनुसार समाधि का निर्णय करते हैं; परन्तु वहाँ समाधि नहीं, बल्कि केवल विकल्प हेतु है।

जैनमत में तो अरहंतदेव ने जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष – ये सात तत्त्व कहे हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष ये दो प्रमाण कहे हैं। नित्य–अनित्यादि अनेकान्तवाद है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्ग है। संपूर्ण कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है।

नैयायिकमत में उनके जटाधारी ईश्वरदेव ने प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान – ये सोलह तत्त्व बतलाये हैं। प्रत्यक्ष, उपमा, अनुमान और आगम – ये चार प्रमाण कहे हैं। नित्यादि एकान्तवाद है। दुःख, जन्मप्रवृत्ति दोष, मिथ्याज्ञान का उत्तरोत्तर नाश मोक्षमार्ग है। वे छह इन्द्रियाँ, उनके छह विषय, छह बुद्धियाँ, एक शरीर, एक सुख और एक दुःख – इन इक्कीस प्रकार के दुःखों के अत्यन्त उच्छेद (क्षय) को मोक्ष मानते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बौद्धमत में लाल वस्त्र धारण करनेवाले उनके बुद्धदेव ने दु:ख, समुदाय, निरोध और मोक्षमार्ग – ये चार तत्त्व तथा प्रत्यक्ष और अनुमान – ये दो प्रमाण कहे हैं। क्षणिकैकान्तवाद अर्थात् सर्वक्षणिकवाद है तथा सर्वनैरात्म्यवासना मोक्षमार्ग है। वासना का अर्थ है 'क्लेश का नाश' और ज्ञान (बुद्धि) के नाश का 'मोक्ष' अर्थ है।

शैवमत में शिवदेव ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय – ये छह तत्त्व तथा प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम – ये तीन प्रमाणवाद बताए हैं। ये नैयायिकों की भाँति मोक्षमार्ग मानते हैं। बुद्धि, सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार – इन नौ का अत्यन्त नाश ही 'मोक्ष' मानते हैं।

जैमिनीय अर्थात् भाट्टमत में देव नहीं माना गया है। प्रेरणा, लक्षण और धर्म – ये तीन तत्त्व माने गये हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति और अभाव – ये छह प्रमाण हैं। नित्य एकान्तवाद है तथा वेदविहित आचरण को मोक्षमार्ग मानते हैं। नित्य अतिशय को धारण करनेवाले सुख का व्यक्त हो जाना ही 'मोक्ष' मानते हैं।

सांख्यमत के बहुत भेद हैं। कोई ईश्वरदेव को और कोई कपिल को मानते हैं। पच्चीस तत्त्व हैं। राजस, तामस, और सात्त्विक अवस्थाओं का नाम प्रकृति है। प्रकृति से महत् (महत् तत्त्व) महत् से अहङ्कार, अहङ्कार से पाँच तन्मात्रायें और ग्यारह इन्द्रियाँ होती हैं।

उन पाँच तन्मात्राओं में से स्पर्शतन्मात्रा से वायु, शब्दतन्मात्रा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

से आकाश, रूपतन्मात्रा से तेज (अग्नि), गन्धतन्मात्रा से पृथ्वी और रसतन्मात्रा से जल उत्पन्न होता है।[१]

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँच बुद्धीन्द्रियाँ तथा वाणी, हाथ, पैर, गुदा और गुप्तेन्द्रिय – ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा ग्यारहवाँ मन है। पुरुष अमूर्त, चैतन्यस्वरूपी, कर्ता और भोक्ता है। मूल प्रकृति विकृतिरहित है, महान आदि सात तत्त्व तथा सोलह गण प्रकृति की विकृतिरूप हैं और पुरुष न प्रकृतिरूप है और न विकृतिरूप है। अंध पंगुवत प्रकृति और पुरुष का योग होता है। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द – ये तीन प्रमाण हैं। नित्य एकान्तवाद है तथा पच्चीस तत्त्वों का ज्ञान मोक्षमार्ग है। ये प्रकृति और पुरुष का विवेक (भेद) देखने से प्रकृति में स्थित पुरुष का भिन्न होना 'मोक्ष' मानते हैं।

सातवें नास्तिक मत (चार्वाक) में देव, पुण्य-पाप और मोक्ष कुछ नहीं माने गये हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु – ये चार भूत और एक प्रत्यक्ष प्रमाण माना गया है। चारों भूतों के समवाय (संयोग) से चैतन्यशक्ति उत्पन्न होती है। जैसे मादक सामग्री के समवाय से मदशक्ति (नशा) उत्पन्न होती है। इनके मत में अदृश्य सुख का त्याग और दृश्य सुख का भोग ही पुरुषार्थ है।

निर्णय करने पर उपर्युक्त सभी मतों में समाधि सिद्ध नहीं होती।

समाधि के तेरह भेद –

समाधि के तेरह भेद हैं – १. लय, २. प्रसंज्ञात, ३. वितर्कानुगत, ४. विचारानुगत, ५. आनन्दानुगत, ६. अस्मिदानुगत, ७. निर्वितर्कानु-

१. प्रकृतेर्महान्ततोऽहंकारस्तस्माद् गुणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात्पंचेभ्यः पंचभूतानि॥ (सांख्यकारिका)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गत, ८. निर्विचारानुगत, ९. निरानन्दानुगत, १०. निरस्मिदानुगत, ११. विवेकख्याति, १२. धर्ममेघ और १३. असंप्रज्ञात। अन्तिम असंप्रज्ञात के दो भेद हैं – १. प्रकृतिलय और २. पुरुषलय।

(१) लय समाधि :– लय अर्थात् परिणामों की लीनता; निजवस्तु में परिणाम प्रवर्तन करे। राग–द्वेष–मोह मिटाकर दर्शन–ज्ञानमय अपने स्वरूप की प्रतीति में अनुभव करे। जैसे शरीर में आत्मबुद्धि थी, वैसे ही आत्मा में आत्मबुद्धि धारण करे तथा जबतक बुद्धिस्वरूप में से बाहर न निकले, तबतक निज में लीन रहे, इसको समाधि कहते हैं।

लय के तीन भेद हैं – १. शब्द, २. अर्थ और ३. ज्ञान। 'लय' शब्द हुआ, निज में परिणाम लीन होना – यह उसका अर्थ हुआ, शब्द और अर्थ का जानपना – यह ज्ञान हुआ। तीनों भेद लय समाधि के हैं। शब्दागम से अर्थागम, अर्थागम से ज्ञानागम – ऐसा श्री जिनागम में कहा है।

शंका :– लय समाधि के भेदों में शब्द क्यों कहा ?

समाधान :– शुक्लध्यान के भेदों में शब्द से शब्दान्तर कहा गया है – इसी रीति से यहाँ जानना चाहिए। यहाँ द्रव्य–गुण–पर्याय के विचार से परिणाम वस्तु में लीन हो जाते हैं। ज्ञान में परिणाम आया, उसी में लीन हुआ; दर्शन में आया, उसी में लीन हुआ। इसीप्रकार निज में विश्राम, आचरण, स्थिरता और ज्ञायकता द्वारा लय समाधि के विकल्प भेद नष्ट होकर परिणाम निज में वर्तते हैं। जिन–जिन इन्द्रियविषयक परिणामों ने इन्द्रियोपयोग नाम धारण किया था और संकल्प–विकल्परूप जिस मन ने उपयोग नाम पाया था, उन दोनों प्रकार के उपयोगों के छूटने पर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बुद्धि द्वारा ज्ञानोपयोग उत्पन्न होता है। वह जानपना बुद्धि से पृथक् है। ज्ञान, ज्ञानरूप परिणति द्वारा ज्ञान का वेदन करता है, आनन्द प्राप्त करता है और स्वरूप में लीन होकर तादात्म्यरूप हो जाता है। जहाँ–जहाँ परिणाम विचरण करते हैं, वहाँ–वहाँ श्रद्धा करके लीन होते हैं; अतः द्रव्य–गुण में परिणामों के विचरण करते समय जब वहाँ श्रद्धा हो, वहीं लीनता हो जाए; तब 'लय समाधि' होती है।

(२) प्रसंज्ञात समाधि :– सम्यक्त्व को जाने और उपयोग में ऐसे भाव की भावना करे कि चेतना का प्रकाश अनन्त है; परन्तु उसमें दर्शन–ज्ञान–चारित्र मुख्य है। मेरी दृशिशक्ति निर्विकल्प उत्पन्न होती है। ज्ञानशक्ति विशेषरूप से (सविकल्परूप से) जानती है। चारित्र परिणामों के द्वारा वस्तु का अवलम्बन करके वेदन होता है तथा उसमें विश्राम द्वारा आचरण की स्थिरता होती है।

स्वयं अपने स्वभावरूप कर्म को करके **कर्ता** होता है। तब स्वभाव **कर्म** होता है। निजपरिणति के द्वारा स्वयं को साधता है; अतः स्वयं ही **करण** होता है। स्वयं की परिणति स्वयं को सौंपता है; अतः स्वयं ही **सम्प्रदान** होता है। स्वयं में से स्वयं को स्थापित करता है; अतः स्वयं ही **अपादान** होता है। स्वयं के भाव का स्वयं ही आधार है; अतः स्वयं **अधिकरण** होता है।

स्वयं के द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव पर भलीभाँति विचार करके स्थिरता से राग आदि विकारों को नहीं आने देना चाहिए। इसप्रकार जैसे–जैसे उपयोग की जानकारी प्रवर्तित होती है, वैसे–वैसे ध्यान की स्थिरता में आनन्द बढ़ता है और समाधि का सुख प्राप्त होता है। वीतराग परमानन्द समरसीभाव स्वसंवेदन सुख को समाधि कहते हैं। द्रव्य का द्रव्यीभाव, गुण का लक्षणभाव, पर्याय का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमन के लक्षण द्वारा वेदना का भाव अर्थात् वस्तुरस का सर्वस्व बतलानेवाला भाव – इनको सम्यक्प्रकार से जानकर जो समाधि सिद्ध की जाती है, उसे 'प्रसंज्ञात समाधि' कहते हैं।

प्रसंज्ञात समाधि के भी तीन भेद हैं – शब्द, अर्थ और ज्ञान। प्रसंज्ञातशब्द शब्द है। प्रसंज्ञात शब्द का सम्यग्ज्ञानरूप भाव अर्थ है और शब्द और अर्थ का जानपना ज्ञान है।

जाननहारे (आत्मा) को जानकर, मानकर तथा महातद्रूप होकर जो उत्कट समाधि धारण की जाती है, उसे **'प्रसंज्ञात समाधि'** कहते हैं।

(३) वितर्कानुगत समाधि – द्रव्यश्रुत से विचार करना वितर्कश्रुत है। अर्थ में मन लगाना भावश्रुत है अर्थात् वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन समरसीभाव से उत्पन्न आनन्द 'भावश्रुत' है।

वही कहते हैं – भावश्रुत का अर्थ भाव है। वहाँ द्रव्यश्रुत का तात्पर्य यह है कि द्रव्यश्रुत में जहाँ उपादेय वस्तु का वर्णन है, वहाँ अनुपम आनदंघन चिदानन्द के अनन्त चैतन्यचिन्ह का अनुभव रसास्वाद बताया है। मन और इन्द्रियों के द्वारा चेतना विकार अनादि से प्रवृत्ति कर रहा था, उस शुभाशुभ विकार से छूटकर श्रुतविचार द्वारा ज्ञानादि उपयोगों की प्रवृत्ति से अपना स्वरूप पहिचाना।

जैसे किसी दीपक के ऊपर चार परदे थे। उनमें से तीन परदे तो दूर हुए। प्रकाश के कारण पहचाना कि दीपक है, अवश्य है; क्योंकि प्रकाश का अनुभव हो रहा है। लेकिन जब चौथा परदा दूर होगा, तब ही यह जीव कृतकृत्य परमात्मा होकर निर्वृत्त होगा अर्थात् सिद्धपद को प्राप्त करेगा। उसके पूर्व भी अनुभव के प्रकाश की जाति तो वही है, अन्य नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसीप्रकार जब कषाय की तीन चौकड़ी नष्ट हुईं, तब निजवेदन से चेतनाप्रकाश स्वजाति ज्योति का अनुभव हुआ। उससमय चेतनाप्रकाश का अनुभव ऐसा होता है कि मानो इस भावश्रुत आनन्द में प्रतीतिरूप से संपूर्ण परमात्मभाव का आनन्द प्राप्त हुआ हो।

शंका :– ज्ञान का विशेष लक्षण अवयवों को जानना है और सामान्य–विशेषरूप पदार्थ का निर्विकल्प सत्तामात्र अवलोकनरूप दर्शन है; अत: जब ज्ञान, दर्शन को जानता है; तब ज्ञान में सामान्य अवलोकन कैसे हो सकता है ? तथा दर्शन, ज्ञान को भी देखता है और ज्ञान, दर्शन को भी जानता है, परन्तु दर्शन तो सामान्य है। वह विशेषरूप ज्ञान को कैसे देख सकता है। इसीप्रकार सामान्य को जानने से तो सामान्य का ज्ञान हुआ, वहाँ विशेष का जानना कैसे हुआ ?

समाधान :– चित्प्रकाश में इसप्रकार सिद्ध होता है – दर्शन के सब प्रदेशों को ज्ञान जानता है। दर्शन का स्व–पर देखना सर्व ज्ञान जानता है, दर्शन के लक्षण, संज्ञा आदि भेद और द्रव्य–क्षेत्र आदि सब भेद ज्ञान जानता है; अत: ज्ञान, दर्शन के विशेषों को जानता है।

तथा ज्ञान को दर्शन कैसे देखता है – इस प्रश्न का समाधान यह है कि 'जानना' – यह ज्ञान का सामान्य लक्षण है तथा स्व–पर को जानना – यह ज्ञान का विशेष लक्षण है। इन दोनों लक्षणमय ज्ञान है, अत: संज्ञा आदि भेदों के धारक ज्ञान को दर्शन निर्विकल्परूप देखता है। इसप्रकार दर्शन सामान्य अवलोकन लक्षणवाला ही है। एक चेतन सत्ता से दोनों का प्रकाश हुआ है, दोनों की सत्ता एक है। ऐसा तर्क (ज्ञान) समाधान करनेवाले से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भावश्रुत में होता है। इस भावश्रुत का नाम 'वितर्क' है। इसके अनुगत अर्थात् साथ-साथ जो सुख होता है, वह समाधि है। वह समाधि भावश्रुत के विलास से, चित्प्रकाश को जानने से, वेदन करने से, अवलोकन करने से और अनुभव करने से छद्मस्थ को होती है।

ज्ञाता को अपने आनन्दरूप समाधि उत्पन्न होती है, उसके तीन भेद हैं – प्रथम तो वितर्क शब्द, दूसरा उसका अर्थ अर्थात् वितर्क का अर्थ श्रुत और तीसरा अर्थ का ज्ञान।

शब्द से अर्थ, अर्थ से ज्ञान और ज्ञान से होनेवाले आनन्दरूप समाधि है। इसतरह 'वितर्क समाधि' का स्वरूप जानना चाहिए।

(४) विचारानुगत समाधि :– 'विचार' का अर्थ है – श्रुत का पृथक्-पृथक् अर्थ विचार करना। श्रुत के अर्थ द्वारा स्वरूप के विचार में वस्तु की स्थिरता, विश्राम, आचरण, ज्ञायकता, आनन्द, वेदना, अनुभव और निर्विकल्प समाधि होती है, वही कहते हैं। अर्थ कहने से तात्पर्य ध्येयरूप वस्तु से है। वह द्रव्य या गुण या पर्याय है। द्रव्य का विचार – गुण-पर्यायरूप अथवा सत्तारूप अथवा चेतनापुञ्जरूप इत्यादि अनेकप्रकार से हो सकता है।

इसप्रकार द्रव्य का विचार करके उसकी प्रतीति में लीन होने से समाधि होती है।

वह जीव आत्मा का अनुभव करता है, केवल विचार ही नहीं करता। ज्ञानगुण के प्रकाश को विचार कहते हैं। जब वह प्राप्त होता है, तब ही ध्यान होता है। पर्याय को स्वरूप में लीन करे, द्रव्य से गुण में मन लगाए, गुण से पर्याय में लगाए अथवा और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकार से ध्येय का ध्यान करना अर्थान्तर कहलाता है अथवा सामान्य-विशेष या भेद-प्रभेद से वस्तु में ध्यान धारण करके सिद्धि करना, अर्थ से अर्थान्तर कहलाता है।

शब्द का अर्थ वचन है, वह दो प्रकार का है – १. द्रव्यवचन और २. भाववचन; लेकिन यहाँ भाववचन से तात्पर्य है।

भावश्रुत का अर्थ है – वस्तु के गुण में लीनता। भाववचन में गुणविचार के द्वारा विचार हो जाने पर और अधिक गुणविचार न करके स्थिरता द्वारा आनन्द होता है। शब्द के माध्यम से अन्तरंग में वस्तु को प्राप्त करने के लिए जो विचार होते हैं, उन्हें शब्दान्तर कहते हैं।

मैं द्रव्य हूँ, ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, वीर्य हूँ – ऐसा उपयोग में जान करके 'अहं' अर्थात् स्वयं अपने पद में द्रव्य-गुण के द्वारा 'अहं' शब्द की कल्पना करके प्रतीत्यस्वपद के स्थान पर स्वरूपाचरण द्वारा आनन्दकन्द में सुख उत्पन्न होता है – ऐसी समाधि वचनयोग के भाव से गुणस्मरण कहलाती है।

विचार तक ही वचन था, वह विचार छूट गया और मन लीनता में ही रह गया। इसप्रकार वचनयोग से छूटकर मनोयोग पर आने से योग से योगान्तर कहलाता है

विचारानुगतसमाधि के तीन भेद हैं – विचारशब्द, विचार का ध्येयवस्तुरूप अर्थ तथा ध्येय वस्तु को विचार से जाननेवाला ज्ञान अथवा जो उपयोग विचार में आए, उस उपयोग में परिणामों की स्थिरता ही ध्यान है। उससे उत्पन्न हुआ आनन्द और उसमें लीनता वीतराग निर्विकल्पसमाधि है। इसी का नाम 'विचारानुगत समाधि' है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(५) आनन्दानुगत समाधि :– ज्ञान के द्वारा निजस्वरूप को जानना और जानते समय आनन्द होना ज्ञानानन्द है। दर्शन के द्वारा निजपद को देखते समय आनन्द होना दर्शनानन्द है। निजस्वरूप में परिणमते हुए होनेवाला आनन्द चारित्रानन्द है।

आनन्द का वेदन करनेवाले की सहज अपने आप ही अपने-अपने दर्शन-ज्ञान में परिणति रहती है, तभी आनन्द जानना चाहिए। जब ज्ञान का ज्ञान होता है, दर्शन का दर्शन होता है और वेदन करनेवाले का वेदन होता है; तब चेतना प्रकाश का आनन्द होता है। स्वयं का स्वयं के द्वारा वेदन करने से अनुभव में जो सहज चिदानन्द का स्वरूप का आनन्द होता है, उस आनन्द के सुख में समाधि का स्वरूप है।

वस्तु का वेदन कर-करके ध्यान में आनन्द होता है। उस आनन्द की धारणा धारण करके जब स्थिर रहा जाता है, तब 'आनन्दानुगत समाधि' कही जाती है।

जीव और कर्म का अनादि संबंध है। बंधन के कारण उनकी दशा एकत्वसी हो रही है। वह परस्पर अव्यापक होने पर भी व्यापक के समान हो रही है। जब यह जीव भेदज्ञानबुद्धि से जीव और पुद्गल को पृथक्-पृथक् करके जानता है। नोकर्म तथा द्रव्यकर्म की वर्गणायें जड़ एवं मूर्तिक हैं और मेरा जाननरूप ज्ञान उपयोगलक्षण के द्वारा पृथक्-पृथक् प्रतीति में जाने जाते हैं - ऐसा निर्मल ज्ञान होने पर जहाँ स्वरूप में मग्नता होती है तो स्वरूप मग्नता के होते ही आनन्द होता है।

आनन्दानुगत समाधि के भी तीन भेद जानना चाहिए - आनन्दशब्द, आनन्दशब्द का आनन्द अर्थ तथा आनन्दशब्द और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्द अर्थ को जाननेवाला ज्ञान। जहाँ आनन्दानुगत समाधि है, वहाँ सुख का समूह है।

(६) अस्मिदानुगतसमाधि :– परपद को अपना मानकर अनादि से जन्म आदि दुख सहे, परन्तु एक अस्मिदानुगत समाधि नहीं प्राप्त हुई। उस (दुःख) को दूर करने के लिए श्री गुरुदेव इस समाधि का कथन करते हैं। 'अहं ब्रम्होऽस्मि' – मैं ब्रम्ह हूँ अर्थात् मैं शुद्ध चैतन्यमय परमज्योति हूँ, जीव का प्रकाश-दर्शन-ज्ञान है, उससे जीव सदा प्रकाशित होता है।

लोक में शुद्ध परमात्मा के शुद्ध दर्शन-ज्ञान और अन्तरात्मा के एकदेश शुद्ध दर्शन-ज्ञान हैं। दर्शन-ज्ञान का प्रकाश ज्ञेय को देखता-जानता है। शक्ति शुद्ध है – इसकारण ऐसे भाव करता है। यह दर्शन-ज्ञान आत्मा के बिना नहीं होते, ये मेरे स्वभाव हैं – इसप्रकार ज्ञान-दर्शन को प्रतीति में मानना चाहिए। 'अहं अस्मि' अर्थात् 'मैं हूँ' के रूप में दर्शन-ज्ञान में स्वयं की स्थापना करना चाहिए और ध्यान में 'अहं अस्मि, अहं अस्मि' – ऐसा मानना चाहिए।

जैसे शरीर में अहंबुद्धि धारण करके उसे आत्मा मानता है, वैसे दर्शन-ज्ञान में अहं मानकर उसमें अहंबुद्धि धारण करना चाहिए। दर्शन-ज्ञान एवं ध्यान में अहंपना माने, तब अनादि दुःख का मूल देहाभिमान छूटता है। स्वरूप में अपनापन जानने पर 'ज्ञानस्वरूप उपयोग मैं हूँ' – ऐसी अहंब्रम्ह बुद्धि आती है; तब ब्रम्ह में अहंबुद्धि आने पर ऐसा सुख प्राप्त होता है कि मानो दुःखलोक को छोड़कर अविनाशी आनन्दलोक प्राप्त हुआ हो।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'अहं ब्रम्ह, अहं ब्रम्ह, अहं ब्रम्होऽस्मि' – ऐसी बार-बार बुद्धि द्वारा प्रतीति करना चाहिए, तब कुछ समय तक ध्यान में ऐसा प्रतीतिभाव दृढ़ रहता है। इसके पश्चात् क्रमशः अहंपना छूट जाता है और केवल 'अस्मि' रह जाता है अर्थात् 'चैतन्य हूँ' – यह भाव रह जाता है।

इसप्रकार जब 'मैं चैतन्य हूँ' तथा 'हूँ' 'हूँ' – ऐसा भाव रह जाय; तब परमानन्द बढ़ता है, वचनातीत महिमा का लाभ होता है, स्वपद की प्रतीतिरूप स्थिति रहती है, इसी को 'अस्मिदानुगत समाधि' कहते हैं। इससे अपूर्व आनन्द की वृद्धि होती है। अस्मिदानुगतसमाधि में भी तीन भेद जानने चाहिए – स्वरूप में 'अहं अस्मि' – यह शब्द, 'अहं अस्मि' का भाव – यह अर्थ तथा उसका जानपना – यह ज्ञान। इसप्रकार तीन भेद हैं।

(७) निर्वितर्कानुगत समाधि :– अभेद निश्चल स्वरूपभाव द्रव्य या गुण में, जहाँ वितर्कणा नहीं है, निश्चलता में निर्विकल्प निर्भेद भावना है तथा एकाग्र स्वस्थिर स्वपद में लीनता है – वहाँ 'निर्वितर्क समाधि' कही जाती है।

निर्वितर्क – ऐसा शब्द, निर्वितर्क अर्थात् तर्क रहित स्वाद में लीनता – ऐसा अर्थ एवं इनका जानपना – ऐसा ज्ञान – ये तीन भेद इसमें भी जानना चाहिए।

(८) निर्विचारानुगत समाधि :– अभेद स्वाद में एकत्व अवस्था जानो; उसमें विचार नहीं करता, स्वरूप भावना की निश्चलवृत्ति होती है। वह द्रव्य में हो तो भी निश्चल, गुणभावना हो तो निश्चल तथा पर्यायवृत्ति की भी निश्चलता होने से राग आदि विकार तो मूल से नष्ट हो जाते हैं। सहजानन्द समाधि प्रकट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होती है, निज विश्राम प्राप्त होता है, परिणाम विशुद्ध से विशुद्धतर होते चले जाते हैं, स्थिरता प्राप्त होती है, निर्विकल्पदशा होती है।

अर्थ से अर्थान्तर, शब्द से शब्दान्तर और योग से योगान्तर का विचार (पलटना) नष्ट हो जाता हैं। भेदविचार या विकल्पनय छूट जाते हैं। परमात्मदशा के नजदीक आ जाता है – इसे 'निर्विचार समाधि' कहते हैं।

निर्विचार – ऐसा शब्द, विचाररहित – ऐसा अर्थ और उनका जानपना – ऐसा ज्ञान; इसप्रकार ये तीनों भेद यहाँ भी जानना चाहिए।

(९) निरानन्दानुगत समाधि :– सम्पूर्ण सांसारिक आनन्द छूट जाता है। इन्द्रियजनित विषय–वल्लभदशा दूर हो जाती है। विकल्प विचार से होनेवाला आनन्द मिथ्या जाना। परमिश्रित आनन्द जो आता था; सो समाप्त हो गया। सहजानन्द प्रकट हुआ। परम–पदवी की नजदीक भूमिका पर आरूढ़ हुआ।

जहाँ विभाव मिटा, वहाँ ऐसा जाना कि मुक्ति के द्वार का प्रवेश समीप है, मुक्तिरूपी वधू से निर्विघ्न संबंध समीप है तथा अतीन्द्रिय भोग होनेवाला है। यही 'निरानन्दानुगत समाधि' है। 'निरानन्द' – ऐसा शब्द, पर के आनन्द रहित – ऐसा अर्थ और उनको जाननेरूप ज्ञान, ये तीन भेद इसमें भी समझना चाहिए।

(१०) निरस्मिदानुगत समाधि :– पहले 'अहं ब्रम्ह अस्मि' – ऐसा 'अस्मिभाव' था, परन्तु अब वह भाव भी दूर हुआ। विकार अत्यधिकरूप से मिटा। 'अस्मि' में अहंपने की मान्यता थी, वह भी मिटी। निजपद ही का विलास या खेल है, पर के कारण नहीं हुआ। परम साधक की परम साध्य से भेंट हुई और ऐसी हुई कि मन गल गया, स्वरूप में स्वसंवेदन द्वारा स्वयं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा ने आत्मा को जाना और परमात्मा की दशा समीप से समीपतर हुई। यह परम विवेक प्राप्त करने का सोपान है।

मानरूप विकार गया, विमल चारित्र का खेल या विलास हुआ। मन की मलता मिटी, स्वरूप में तदाकार होकर एकमेकरूप हुआ, जिससे ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ कि वह केवलीगम्य ही है। जिस समाधि में सुख की कल्लोल उठती है, दुःखरूप उपाधि मिट चुकी है, आनन्दरूपी गृह को जा पहुँचा है, वहाँ अब तो केवल राज्य ही करना रहा है, समीप ही राज्य का कलशाभिषेक होगा, केवलज्ञानरूपी राजमुकुट किनारे रखा है, समय नजदीक है, सिर पर जल्दी ही केवलज्ञानरूपी मुकुट धारण किया जायेगा। यह 'निरस्मिदानुगत समाधि' है। शब्द, अर्थ और ज्ञान – ऐसे तीनों भेद इसमें भी जानना चाहिए।

(११) विवेकख्याति समाधि :– विवेक का अर्थ है प्रकृति और पुरुष का विवेचन अर्थात् उनका पृथक-पृथक् भेद जानना, अन्य भेद मिट गए हैं। चैतन्यपुरुष के शुद्ध परिणतिरूप ज्ञान में दोनों का विवेक अर्थात् प्रतीति हुई है। चैतन्यपरिणतिरूप वस्तु, वस्तु के अनन्तगुणों का वेदन करनेवाली है, उत्पाद-व्यय करनेवाली है, षड्गुणी वृद्धि-हानि उसका लक्षण है और वह वस्तु का वेदन करके आनन्द उत्पन्न करती है।

जैसे समुद्र में तरंग उत्पन्न होती है, वह तरंग समुद्रभाव को जनाती है; वैसे ही यह चैतन्यपरिणति स्वरूप का ज्ञान कराती है। सकल सर्वस्व परिणति का अर्थ है प्रकृति तथा पुरुष का अर्थ है परमात्मा, उससे प्रकृति उसीप्रकार उत्पन्न होती है – जैसे समुद्र से तरंग उत्पन्न होती है। पुरुष अनन्त गुणधाम चिदानन्द परमेश्वर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। उन दोनों का ज्ञान में जानपना हुआ, परन्तु प्रत्यक्ष नहीं हुआ, क्योंकि वेद्य-वेदक में प्रत्यक्ष होता है, केवलज्ञान में सम्पूर्ण प्रत्यक्ष नहीं होता है। लेकिन अभी तो साधक है, थोड़े ही समय में परमात्मा होगा। इसी को 'विवेकख्याति समाधि' कहते हैं। इसके भी शब्द, अर्थ और ज्ञानरूप तीन भेद जानना चाहिए।

(१२) धर्ममेघ समाधि :- धर्म का अर्थ है – अनन्तगुण अथवा निजधर्मरूप उपयोग, जिसकी विशुद्धता मेघ की भाँति बढ़ती है। जैसे मेघ वर्षा करते हैं, वैसे ही उपयोग में आनन्द बढ़ता है; विशुद्धता बढ़ती है। चारित्ररूप उपयोग में अनन्तगुणों की शुद्ध प्रतीति का वेदन हुआ और यदि केवलज्ञान की अपेक्षा से कहा जाए, तब तो अनन्तगुण व्यक्त हुए। ज्ञानोपयोग में चारित्र तो शुद्ध होता है, पर तब केवलज्ञान नहीं भी हो सकता है; क्योंकि बारहवें गुणस्थान में यथाख्यातचारित्र है, तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान में परम यथाख्यातचारित्र है; अतः चारित्र की अपेक्षा धर्ममेघ समाधि बारहवें गुणस्थान में हुई। केवलज्ञान में परमात्मदशा व्यक्त है; अतः वहाँ साधक-समाधि नहीं की जा सकती। बारहवें गुणस्थान में अंतरात्मा साधक है, उसको 'धर्ममेघ समाधि' है।

शब्द, अर्थ और ज्ञान – ये तीन भेद इसमें भी समझना चाहिए।

(१३) असंप्रज्ञात समाधि :- 'असंप्रज्ञात' का अर्थ है – पर का वेदन नहीं होना, निज ही का वेदन करना और जानना। जिसके पर का विस्मरण है और निज का अवलोकन है – ऐसे बारहवें गुणस्थानवर्ती के अन्तिम समय तक तो चारित्र के द्वारा पर की वेदना मिटी थी, क्योंकि मोह का अभाव हुआ था। तेरहवें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुणस्थान में ज्ञान केवल अद्वैत हुआ, वहाँ ज्ञान में निश्चय से पर का जानपना नहीं, व्यवहार से लोकालोक प्रतिबिम्बित होते हैं; अतः ऐसा कहा जाता है। अतः यह समाधि चारित्र की विवक्षा से बारहवें गुणस्थान के अन्त में है और केवलज्ञान में व्यक्त है; अतः वहाँ साधक अवस्था नहीं, परन्तु प्रगट परमात्मा है यही 'असंप्रज्ञात समाधि' का स्वरूप जानना।

शब्द, अर्थ और ज्ञान आदि भेद साधक अवस्था में यहाँ भी समझना चाहिए।

उक्त तेरह भेद समाधि के हैं, जो परमात्मा को प्राप्त करने के साधन हैं। **अतः इस ग्रन्थ में परमात्मा का वर्णन किया और तत्पश्चात् उसे प्राप्त करने का उपाय बताया। जो परमात्मा का अनुभव करना चाहें, वे इस ग्रन्थ पर बारम्बार विचार करें।**

अन्तिम प्रशस्ति

यह ग्रंथ दीपचन्द्र साधर्मी ने रचा है, उनका जन्मस्थान सांगानेर था। जब वे आमेर आये, तब उन्होंने यह ग्रंथ रचा था। उन्होंने विक्रम संवत् सत्रह सौ उन्यासी (१७७९), मिती फाल्गुन बदी पञ्चमी को यह ग्रन्थ पूर्ण किया। संत पुरुष इसका अभ्यास करें।

(दोहा)

देव परम मंगल करौ, परम महा सुखदाय।
सेवत शिवपद पाइये, हे त्रिभुवन के राय॥

(सम्पूर्ण)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

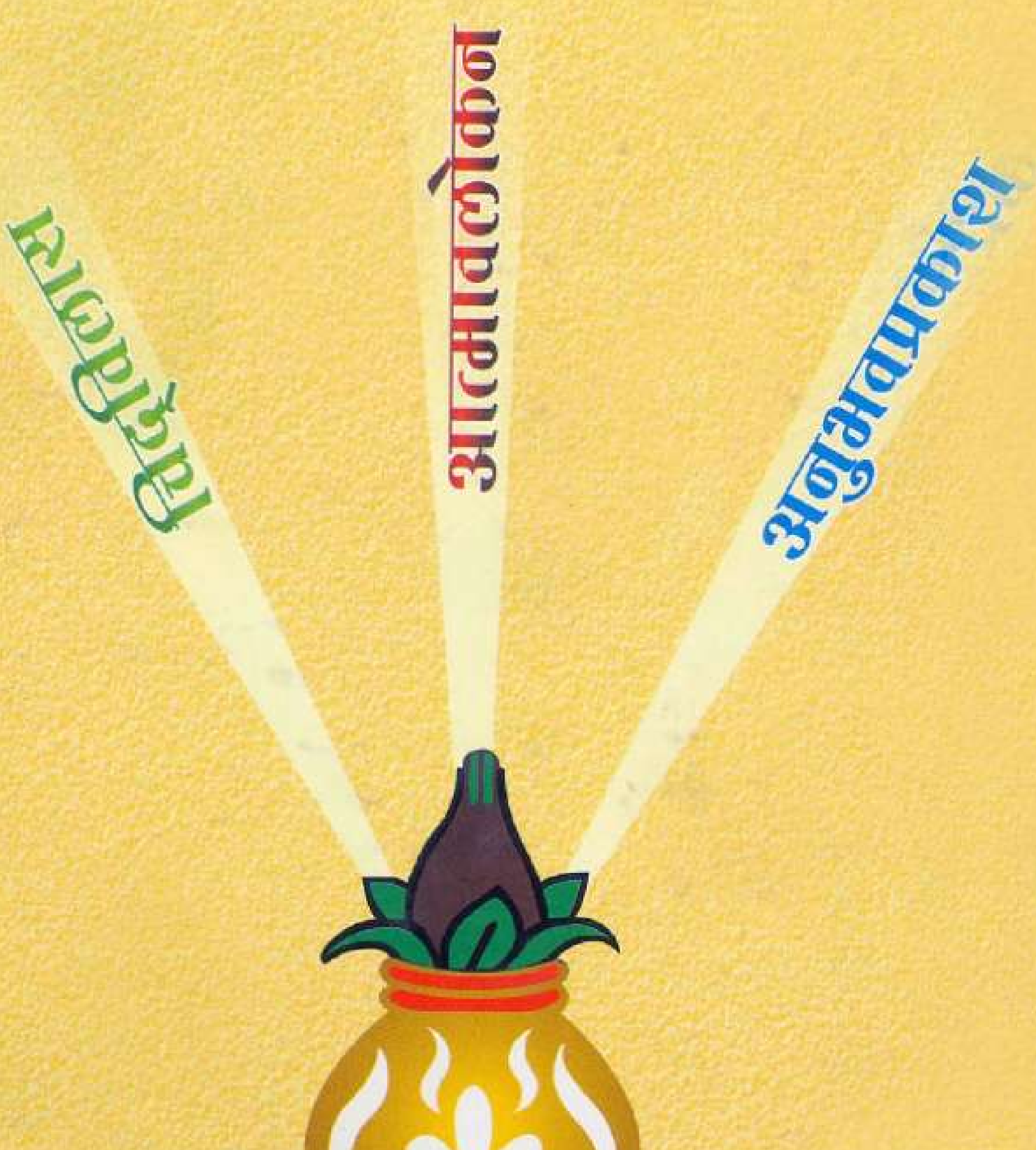

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट

173/175 मुम्बादेवी रोड, मुम्बई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com